शान्ति, संघर्ष और प्रेरणा

श्री सत्यप्रसाद पाण्डेय लेखक के रूप में अभी ही प्रकट हो रहे हैं, पर भावों की जो तरलता और विचार-मन्थन इनकी रचनाओं में मिलता है, उससे कुछ ऐसा-सा प्रतीत होता है कि न जाने कबसे इनकी साहित्य-साधना चल रही है। प्रस्तुत उपन्यास इनकी एक ऐसी ही रचना है जो वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की अनेकानेक रंगीन दृश्यावलियों को लेकर जीवन के विभिन्न पहलुओं पर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए सभी वर्ग और रुचि के पाठकों की साहित्यिक पिपासा को शान्त करती है। स्त्री के तीन रूप --एक परिष्कृत और नवजाकीत, दूसरा मर्यादित एवं आस्था से पूर्ण और तीसरा पतित तथा करुण---मूर्तिमान हो, स्त्री के व्यापक चरित्र का दिग्दर्शन कराते हैं। कथोपकथन और भाव विवेचन उपन्यास में जान डाले हुये हैं।

शान्ति, संघर्ष और प्रेरणा

शान्ति, संघर्ष और प्रेरणा

लेखक
सत्यप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
दरीबा कलाँ, दिल्ली ।

अपनी ओर से

महाकवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायानी' का पहला पृष्ठ 'प्रलय' के चित्र को लेकर खुलता है। मनु जी हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे हुए प्रलय के उस विराट रूप को देख रहे होते हैं जिसमें नीचे पृथ्वी पर जल ही जल होता है और ऊपर 'सघन हिम'।

न जाने शिशु माँ के गर्भ से अवतरित होने पर दुनियाँ में पहले-पहले क्या देखता है—कोई नहीं बता सकता कि उसकी पहली अनुभूति क्या होती होगी? हाँ, जब वह शैशव का परित्याग कर क्रमशः किशोर और तरुण अवस्था में पग रखता है, तो निःसन्देह ही उसकी भावनायें भी मुखरित हो उठती हैं। वह न मालूम क्या-क्या उमंगें, क्या-क्या कल्पनायें लेकर जीवन की अगली सीढ़ियों पर पग रखता बढ़ता जाता है। शैशव में माँ के प्यार और दुलार की जो बौछार उस पर होती रही और फिर किशोरावस्था में मित्र और सखाओं की जिन अठखेलियों के मध्य उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता चला जाता है, वे न मालूम जीवन की कौनसी रूपरेखा उसके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। कुछ भी हो, एक तरुण के दीप्त मुखमण्डल पर प्रच्छन्न भाव बिना कहे ही बता देते हैं कि भावी जीवन की कल्पना उसकी ठीक उसी वाटिका के समान होती है जहाँ व्यापक अविच्छिन्न हरितिमा अपने सुन्दर परिधान में विराज रही होती है—शान्त-स्निग्ध वातावरण, यत्र-तत्र भव्य जलाशय और उनमें कोमल पंखुड़ियाँ लिये डोलते हुए शत-कमल-दल। प्रश्न उठता है कि जीवन का ऐसा सुन्दर रूप कौनसा है? किशोर और तरुण इस प्रश्न का यही उत्तर देंगे कि जीवन का वह रूप, जिसमें आह्लाद है, विजय है, जवानी की तरंगें हैं और केवल सुखद कल्पनाओं के संगम हैं। चिन्ता, विषाद, हार और बुढ़ापा—इनकी जहाँ परछाईं भी नहीं पड़ती। पर व्यावहारिक जीवन की यह सच्ची रूपरेखा नहीं है। जीवन का यह स्वरूप भले ही कुछ काल तक देखने को मिलता हो, वह नित्य नहीं रहता। 'परिस्थिति' या 'संघर्ष' नाम की एक प्रचण्ड आग भी इस रूपरेखा का अविच्छिन्न अंग है, जो जीवन की हरितिमा को भस्मीभूत कर

रख देती है। जीवन से उसकी शान्ति छीन लेती है। माँ की ममता, भगिनी का प्यार, भाइयों और सम्बन्धियों का स्नेह, भाभी और साली का मजाक, मित्रों का सखा-भाव, जवानी की तरंगें और भविष्य का सुखद स्वप्न—सब इस संघर्ष रूपी ज्वाला में खाक हो जाते हैं। सिद्धान्त व्यवहार में परिणित होकर दूसरा ही रूप ले लेते हैं। यही स्टेज है, जहाँ पर जीवन की इस रूपरेखा का पूर्ण-सृजन होता है और वह पूर्णरूप है—संघर्ष से परास्त होना नहीं, अपितु उस पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रेरणा का अवलम्बन लेना। यदि संघर्ष एक ज्वाला है तो प्रेरणा अतुल जलराशि को धारण किये हुए एक मेघ-माला है, जो जलवृष्टि कर इस ज्वाला को शान्त कर जीवन के समक्ष पुनः हरियाली प्रस्तुत करती है। यह हरियाली उस मूल शान्ति का साक्षात् स्वरूप तो नहीं पर उसकी प्रतिमूर्ति अवश्य है जो जीवन में आस्था उत्पन्न कर उसे आगे मार्ग प्रशस्त करने को प्रेरित करती रहती है। दुख में सुख और इसी प्रकार मृत्यु में जीवन की आशा को अक्षुण्ण बनाये रखती है।

प्रस्तुत पुस्तक में जीवन की इसी रूपरेखा को चित्रित करने का प्रयास सा बन पड़ा है। यह प्रयास कहाँ तक सफल रहा, यह तो पाठक ही बता सकेंगे।

पुस्तक लिखने में जिन स्रोतों से मुझे प्रेरणा मिली, उनका उल्लेख कर देना भी अनावश्यक न होगा। पहला स्रोत है—पिता-तुल्य वैद्यरत्न परमानन्द जी की झिड़कियाँ जिन्होंने 'कुछ लिख भी मारो' का मंत्र देकर मेरी कुण्ठित चिन्तनशीलता को प्राण दिये। दूसरा स्रोत है—जीवन रूपी सरिता के दूसरे तट पर समानान्तर पग बढ़ाते हुए एक 'पथिक' का मधुर संगीत जिसकी स्वर-लहरी वर्षों से मेरे कानों में गूँजती रही है—वह 'पथिक' जिसे शायद है, मैं कभी देख भी लूँ, पर जो निश्चय ही कभी इस ओर न आने पायेगा।

पुस्तक के प्रूफ और संशोधन में श्री रामानन्द जोशी श्री रेवाधर शास्त्री 'बुजुर्ग' और डा० ज्ञान भास्कर पाण्डेय ने जो सहायता दी उसके लिये उनका आभार प्रदर्शन करता हूँ।

कान्तिनिवास
जवाहर नगर, दिल्ली। —सत्यप्रसाद पाण्डेय

सम्मति

..........श्री सत्यप्रसाद पाण्डेय को हिन्दी पाठकों से परिचित कराते हुए मुझे एक प्रकार का उल्लास प्राप्त हो रहा है। श्री पाण्डेय जी के उपन्यास 'शान्ति, संघर्ष और प्रेरणा' को मैं मनोनिवेसपूर्वक आद्योपान्त पढ़ गया। इसकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसके पढ़ते समय कहीं अरोचकता नहीं आने पाई।............

..........इस कथानक से आध्यात्मिक अर्थ भी प्रतिध्वनित होता है। यह इस उपन्यास की बड़ी विशेषता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण मार्मिकता के साथ किया गया है। कथा का उद्देश्य जीवन को विकासोन्मुख बनाना प्रतीत होता है। घटना-क्रम में कहीं भी असंगति नहीं प्रतीत होती। उपन्यास की भाषा बड़ी सरस और रोचक है। प्रथम कृति में पाण्डेय जी की कलागत सफलता को देख कर विश्वास होता है कि ये किसी दिन बड़े ही सफल उपन्यासकार बन सकते हैं। मैं आपको इस रचना के लिये हृदय से बधाई देता हूँ।

डा० दशरथ ओझा
एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
हिन्दू कॉलेज, दिल्ली।

दिनांक १६-६-५८

१

ठीक प्रातः साढे नौ बजे गाड़ी लखनऊ पहुँच गई । जीवन ने अपनी अटैची और बिस्तरबन्द कुली को सँभलवाया और प्लेटफार्म से बाहर आ गया । उसकी उनींदी आंखो में सफर की थकान मौजूद थी फिर भी चेहरे पर एक असीम उल्लास और व्यग्रता थी । वह अपने बड़े भय्या भुवन से मुलाकात करने दिल्ली से आ रहा था । आज करीब सात साल बाद उसकी भुवन से मुलाकात होने जा रही थी । सात साल पूर्व, जबकि देश का विभाजन नहीं हुआ था, दोनों साथ-साथ लाहौर के एक कालेज में इन्टर में पढ़ते थे । इन्टर की परीक्षा समाप्त होने पर भुवन तो गाँव चला आया था पर जीवन का लाहौर से कहीं बाहर जाना सम्भव न हुआ क्योंकि उसकी दो ट्यूशनें लगी हुई थीं । बस वही समय था जब कि जीवन भुवन से अलग हुआ था । उसके दो-एक महीने पश्चात् परीक्षा-फल निकला तो दोनों भाई अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हुये थे । बी० ए० का दाखिला आरम्भ हो चुका था । जीवन बड़ी उत्सुकता से भय्या के आने की प्रतीक्षा कर रहा था । जब प्रवेश प्राप्त करने की अन्तिम तिथि को केवल दो दिन रह गए और भय्या न आये तो जीवन अधीर हो उठा । मन में कई शंकायें उत्पन्न हो गईं—न मालूम क्या बात है । उसने डाकखाने जाकर एक ऐक्सप्रेस जवाबी तार भेज दिया । उसे आशा थी कि दूसरे दिन सुबह तक तार का उत्तर प्राप्त हो जायेगा । पर जब डाकखाने से घर पहुँचा

तो देखा कि भय्या का लिखा हुआ पत्र उसी की प्रतीक्षा कर रहा था । एक साँस में वह पत्र पढ़ गया और तुरन्त उस के बाद विभ्रान्त मुख लेकर वह प्रवेश प्राप्त करने कालेज की ओर चल दिया । भय्या ने लिखा था कि आगे की पढ़ाई के लिए उसका लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करना निश्चित हो गया था क्योंकि उनके श्वसुर के परामर्श पर घर वालों की यही राय थी । यह सन् ४५ की बात थी और तब से अब तक सात साल व्यतीत हो चुके थे । इसके मध्य कई असाधारण परिवर्तन हुए । देश के विभाजन के परिणामस्वरूप कई भीषण विपत्तियाँ आईं जिन्होंने जीवन के ही नहीं अपितु समस्त राष्ट्र के इतिहास में कुछ और पन्ने जोड़ दिये । पर इसी दौरान में न तो जीवन को अन्य किसी सम्बन्धी के विषय में कुछ पता था और न किसी को जीवन के सम्बन्ध में । फिर स्वाभाविक था कि बड़े-बड़े परिवर्तन और विविध घटनाओं को अपने गर्भ में लिए सात साल के इस एकाकीपन के अन्त पर जीवन का भावुक मन कुछ उद्वेलित-सा हो उठा ।

प्लेटफार्म से बाहर आकर जीवन अभी इसी द्विविधा में था कि ताँगा किया जाए या कुली कि किसी की आवाज़ ने उसे चौंका दिया ।

"जिब्बी ! मैं तो प्लेटफार्म के अन्दर दो चक्कर लगा चुका"—भय्या की आवाज़ थी यह । जीवन ने भय्या की ओर देखा । मुख पर अगाध स्नेह और अधरों पर पुलकित मुस्कान लिए उसने भय्या के चरण छुए और कुछ क्षणों तक विभ्रान्त हो उन्हें एक टक देखता रहा । दोनों की आँखों से मिलन की तरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी । सात साल बाद का मिलन साक्षात् होकर भी उन्हें विश्वसनीय प्रतीत नहीं हो रहा था । दोनों के हृदयों में भावनाओं का असंयमित सागर किलोलें कर रहा था । मौन को भंग करते हुए आखिर भुवन बोला—

"मुरादाबाद एक्सप्रेस से नहीं आये ? मैं तो उसी से तुम्हारे आने की आशा में सुबह भी आया था पर लौट जाना पड़ा । तुम्हारी भाभी को तो बड़ी निराशा हुई है ।"

जीवन चुप रहा ।

"घर पर तो आज त्यौहार मनाया जा रहा है ।" फिर भुवन बोला ।

"त्यौहार ?"

"और नहीं तो ? तुम्हारी भाभी के अतिरिक्त शान्ति, संघर्ष एवं और भी कई सुबह से प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह तो मानोगे ही कि तुम्हारी भाभी के लिए मैं पुराना हूँ पर अभी तुम पुराने नहीं हुए। पहली बार ही तो देखेगी तुम्हें। मेरे ब्याह के समय तुम रुके ही कितने थे ?"

जीवन के अन्दर एक सिहरन सी उठी। दोनों भाई ताँगे पर बैठ गये और ताँगा लखनऊ की चौड़ी सड़क पर चलने लगा। खोया हुआ सा जीवन मन ही मन सोच रहा था कि देखें क्या मिलता है उसे देखने और सुनने को। संघर्ष और शान्ति उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तो क्या संघर्ष भी लखनऊ आ गया है ? अब तो बड़ा हो गया होगा। दाढ़ी-मूछें उग आई होंगी। छः महीने ही तो बड़ा था उससे संघर्ष। पर शान्ति कौन है ? क्या शान्ति संघर्ष की······

"जिब्बी ?"

"जी !"

"सिगरेट तो पीते हो न ?" भय्या ने गोल्ड फ्लैक का पैकेट बढ़ाते हुए कहा।

जीवन ने हँसते हुए सिगरेट निकाली। धुआँ छोड़ते हुए बोला, "संघर्ष यहाँ कब आया भय्या ?"

"तकरीबन दो साल हो गए हैं। मैट्रिक करने के बाद २-३ साल तो घर पर ही रहा। कामताप्रसाद जी ने नौकरी की व्यवस्था कर दी, इसीलिये यहाँ आ गया। अब तो वह सेक्रेटेरियेट में है।"

"क्या वेतन है ?"

"अरे वेतन क्या होना है, जूनियर क्लर्क है।" लापरवाही से भुवन बोला। जीवन चुप हो गया। पूछना चाहता था कि संघर्ष की शादी हो गई है पर यकायक पूछना ठीक न समझा। लेकिन शान्ति के प्रति उसके मन में जिज्ञासा थी; उसको उसने दबाना ठीक न समझा, बोला—"शान्ति कौन है भैया ?"

तुम नहीं जानते क्योंकि मेरी स्वसुराल से तुम्हारा विशेष परिचय नहीं

है। तुम्हारी भाभी के रिश्ते के ताऊ जी थे न माताप्रसाद, उन्हीं की लड़की है; अपने चाचा के साथ रहती है। इस साल हाई स्कूल की परीक्षा देगी।"

भुवन का निवास आ गया था। ताँगे की खटपट सुनकर भुवन की पत्नी, शान्ति और संघर्ष छज्जे पर आकर खड़े हो गए थे। और भी २-३ पड़ौस की स्त्रियाँ, जो भुवन के पास वाले फ्लैट में रहती थीं, छज्जे पर आकर खड़ी हो गई थीं। पूछने पर उनको पता चला कि भुवन के छोटे भय्या आये हैं। भुवन और जीवन ने कमरे में प्रवेश किया और सबकी दृष्टि जीवन पर केन्द्रित हो गई। सबके अधरों पर आन्तरिक स्वागत के मौन संकेत के रूप में तरल हास्य प्रस्फुटित हो रहा था और उस हास्य में वे भावनायें भी कुछ-कुछ पुंजीभूत थीं जिनसे मालूम पड़ता था कि वे उसके व्यक्तित्व का माप ले रहे थे। भुवन के परिचय देने पर जीवन ने भाभी के चरण छुए जो थोड़ा-सा आँचल किये कोने पर खड़ी थी। चरण छुए जाने पर एक नवीन अनुभूति से उसका अन्तर-स्थल स्नेह की अज्ञात गरिमा से विलोड़ित हो उठा। जीवन ने संकोच के साथ उपस्थित महिलाओं के अभिवादन का हाथ जोड़कर उत्तर दिया पर वह कुछ कट-सा गया जब मुँह में साड़ी का पल्ला ठूँसे हुए सामने खड़ी एक खूबसूरत युवती को उसने दबी हुई हँसी में यह कहते हुए सुना—

"मैं आपसे रिश्ते में और अवस्था में छोटी हूँ जीजा जी! मुझे आप हाथ न जोड़िये।"

जीवन ने झेंप अनुभव की; बोला, "फिर भी कुछ अनुचित नहीं हुआ।"

"तो फिर जीजी के समान ही मेरे पाँव छू लीजिए।" युवती ने और अल्हड़ता से कहा और जीवन को लगा कि वह बुरी तरह लज्जित हो गया है। यद्यपि वह हँस रहा था पर वह बेमतलब की हँसी थी जिससे केवल झेंप मिटाने का व्यर्थ प्रयास किया जा रहा था। युवती तनिक और खुलकर हँसने लगी और समस्त उपस्थित व्यक्ति उसका साथ देने लगे। संघर्ष ने जीवन के चेहरे पर नजर डाली और फिर उस युवती को झिड़कते हुये बोला, "चुप रहो शान्ति। व्यर्थ ही बेचारे को परेशान कर रही हो······"

"इसमें परेशानी की क्या बात है? ठीक ही तो कह रही हूँ। क्यों छोटे जीजा जी?" शान्ति बोली।

जीवन से कुछ न बोला गया। संघर्ष हँसता हुआ बोला, "जीवन ! तुम तो लड़कियों से भी अधिक शर्मीले निकले। छोड़ दो न कोई चुटकला ऐसा कि मात खा कर चली जाये।"

शान्ति बोली, "चुटकलों से तो मेरा मनोरंजन ही होगा। मात देने के लिये तो छोटे जीजा जी को कोई छड़ी उठानी पड़ेगी हाथ में। तभी निर्बल स्त्री परास्त होती आई है बर्बर पुरुष से।"

हँसी का फुवारा छूट गया। जीवन ने भी हँसी में स्वाभाविक रूप से योग दिया। भुवन हँसी के कार्यक्रम को जारी रखते हुये शान्ति को सम्बोधित करते हुये बोला, "स्त्रित्व के प्रति यदि तुम इतनी ही सजग हो तो पुरुषों के प्रति सेवा-भाव का जो स्त्रियों का स्वभाव है, उसकी भी शीघ्र परेड होनी चाहिये।"

"परेड करने के लिये तो जीजी को दे रखा है, जीजा जी ! सुबह से शाम तक परेड ही तो करती रहती हैं बेचारी। हाँ, यदि तुम चतुरपुर वालों को एक स्त्री की सेवा से सन्तुष्टि न हो तो फिर······"

"तो फिर दो-चार युवती बहनों को और सौंप दोगी, यही कह रही हो ना ?" संघर्ष ने ठहाका लगाया।

शान्ति के कपोलों पर एक हलकी-सी लालिमा दौड़ गई। अपने को सँभालते हुये बोली, "जी नहीं, मैं कह रही हूँ कि एक स्त्री की सेवा से पुरुष के सन्तुष्ट न होने पर स्त्री की सेवा-भावनाओं पर कहीं चोट नहीं आती अपितु अधिक सेवा की भूख पुरुष के गौरव को ही कम करती है। चतुरपुर के पुरुष यदि ऐसी ही अधिक सेवा के भूखे हैं तो उस भूख के उपचार के लिये उन्हें फेरे मारने चाहियें अपनी गली-कूचों के। भूखे कुत्तों को हमने ऐसे ही करते देखा है।" मन्द हास्य छोड़ती हुई फिर शान्ति जीवन को सम्बोधित करती हुई बोली, "छोटे जीजा जी ! मैं ठीक बोल रही हूँ ना ?"

जीवन अब बहुत कुछ अपने को सँभाल चुका था; बोला, "कह तो ठीक रही हो पर मेरे विचार से अभी तुम चतुरपुर नहीं गई। ठीक है न ?"

"जी हाँ, अभी नहीं गई।"

"और क्योंकि अभी तुम अविवाहिता हो, अतः ऐसी भी कल्पना नहीं की जा सकती कि तुम अन्य दूसरे स्थान पर भी गई होगी जिसे सुसराल कहते हैं।"

"जी, कहते जाइये।"

"फिर स्पष्ट है कि जो तुमने भूखे कुत्ते देखे हैं वे अपनी ही गली के देखे होंगे। यकीन करो कि हमारे यहाँ ऐसे कुत्ते नहीं होते।"

शान्ति बुरी तरह झेंप गई। साड़ी का पल्ला मुँह में देकर वह पास खड़ी भुवन की बहू को लेकर चौके में खिसक गई। भुवन, जीवन और संघर्ष खूब जोरों से हँसने लगे।

२

जीवन को लखनऊ आये हुए अब करीब एक माह हो चुका था। लाहौर वह तब रहता था जब वह छात्र था। बी० ए० तक उसने अध्ययन वहीं किया था। पाकिस्तान बन जाने पर वह दिल्ली आ गया था जहाँ उसे जीवन यापन करने १०० रुपये प्रति मास एक मासिक पत्र में काम करने के मिल जाते थे। यद्यपि वेतन बहुत थोड़ा था पर उसको यह लाभ प्राप्त था कि आगे पढ़ सके। १९४९ में उसने पंजाब विश्वविद्यालय के दिल्ली स्थित कैम्प कालेज से एम० ए० की परीक्षा दी और १९५१ में दिल्ली विश्व-विद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त कर ली। यद्यपि कार्यक्रम उसका पर्याप्त

व्यस्त था तो भी दिल्ली में उसे वह सुख प्राप्त नहीं था जो अपने-परायों के मध्य रहकर अनुभव होता है। दिल्ली उसे एक ऐसी विशाल क्रीड़ास्थली प्रतीत होती थी जहाँ खिलाड़ी अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हैं और जहाँ एक-एक हिट्ट पर नभ-गर्जन जैसी तालियों की गड़गड़ाहट होती है, पर खेल के समाप्त होने पर ताली पीटने वाले यह भी नहीं जानते कि उन्होंने ताली किसके सम्मान में पीटी थी और खिलाड़ी यह नहीं जानते कि ताली पीटने वाला वह विशाल जनसमुदाय कहाँ लुप्त हो जाता है। वहाँ आकर्षण का एक विशेष केन्द्रबिन्दु होता है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। लेकिन लखनऊ में यह बात नहीं थी। वहाँ स्थानीय भावनायें सुरक्षित थीं। दिल्ली में फलतः जहाँ जीवन की बृहत्तर भावनायें विकसित होती गईं वहाँ साथ-साथ उसके एकाकी-पन में भी वृद्धि होती गई। आदर्शों के अति उच्च वितान के नीचे जीवन की अकर्मण्यता उसके लिये अभिशाप बनती चली गई और वह वस्तुतः एक ऐसा व्यक्ति बन गया जो हंसी-खुशी, क्षोभ, मोह, क्रोध और अहंकार आदि भावनाओं से ऊपर रहता है; इसलिये नहीं कि ज्ञानोपार्जन पर वह मन की ऐसी सम स्थिति पर पहुँच जाता है, अपितु इसलिये कि ऐसी कोई परिस्थिति या अवसर ही नहीं आता कि उसके अन्दर इन भावनाओं का मन्थन हो सके। विशाल दिल्ली में यदि बस में किसी से झड़प हो गई तो झड़प से उत्पन्न मनोमालिन्य बस से उतरने के बाद स्वतः समाप्त हो जाता है क्योंकि विशाल नगरी में सब मिलते हैं पर ठीक वैसे ही जैसे महासागर में कई धारायें आकर मिलती हैं पर एक धारा दूसरी धारा का उद्गम स्थान नहीं जानती अथवा एक का गन्दा पानी दूसरे को मैला नहीं बना पाता। जैसे महासागर में विलीन होकर गंगा गंगा नहीं रहती, वह समुद्र का खारा पानी बन जाती है वैसे ही दिल्ली में वह भी उस बड़ी जन-संख्या का एक अंश बन गया था जो १५ अगस्त को नेहरू जी का भाषण सुनने के लिये लाल किले के सामने के प्रांगण में लाखों की जन-संख्या में एकत्रित हो जाती है, नवरात्रों के अवसर पर लम्बी झाँकियों में सम्मिलित होते हैं, काले झण्डे लेकर संसद भवन के सामने प्रदर्शन करते हैं और जब ऐसा कोई अवसर नहीं होता तो दिन में अपने-अपने कार्यों में व्यग्र रहकर सुबह समीप के उद्यानों में हवाखोरी और शाम को कॅनॉट प्लेस की

सैर कर आते हैं। सब कुछ होता है पर महाकाल द्वारा संचालित यंत्र जैसा। उससे किसी का व्यक्तित्व प्रखर रूप से सामने नहीं आता, कोई स्थानीय भावनायें विकसित नहीं हो पातीं। जीवन पत्रकार था पर दिल्ली में समाज में उसका कोई स्थान नहीं था। उन मित्रों में भी जिनकी गोष्ठी में वह कभी-कभी हो जाया करता था, वह अपने को कुछ हीन ही समझता आया था। लखनऊ का वातावरण उसे कुछ भिन्न प्रतीत हुआ। यहाँ उसकी रचनाओं की सम्बन्धियों एवं उसके मित्र और पड़ौसियों ने प्रशंसा की। संघर्ष के साथ जब वह घूमने निकलता तो उसके एकाकीपन पर व्यंग भी कसे जाते पर साथ उसके आदर्शों की भी चर्चा होती। एक माह में ही बीसों घर ऐसे बन गये जहाँ वह जा सकता था और जहाँ उसका आदान-प्रदान चलने लग गया था। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के वह मनुष्य होते हुए भी पशु-समान रहता है। जीवन को लखनऊ आकर कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई। उसकी कुण्ठित भावनायें भी अब बरसात के स्रोतों की तरह फूटने लग गई थीं। बड़े भय्या का सरल चित्त, भाभी का स्नेहयुक्त व्यवहार, शान्ति की आत्मीयता और संघर्ष की दोस्ती उसे नये संसार में ले आये थे।

उसके दिन मज़े में गुजरने लग गये। घर के अन्दर भाभी और शान्ति की चुहलबाजियाँ होतीं और घर के बाहर संघर्ष की धींगा-मस्ती। हँसी-मजाक में दिन गुज़रते पता ही न चलता। संघर्ष और उसकी तो दिनचर्या ही बन गई थी कि ज्योंही संघर्ष की छुट्टी हुई, त्योंही दोनों निकल पड़ते थे बाजार की सैर को और फिर ९-१० बजे जाकर कहीं घर आते थे।

ऐसे ही एक दिन की बात है। शनिवार था। पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार जीवन संघर्ष की प्रतीक्षा कर रहा था। ठीक ३ बजे संघर्ष पहुँच गया और आते ही बोला, "तुमने तो अभी कपड़े भी नहीं पहने ?"

"ये जो कुछ देख रहे हो, इन्हें क्या कपड़े नहीं कहते ?" जीवन चप्पल पहिनते हुए बोला।

संघर्ष ने गम्भीर मुख बनाकर कहा, "जीवन ! दूसरे कपड़े पहिनो। मुझे मजाक अच्छा नहीं लगता।"

जीवन चप्पल पहिन कर पास पड़े हुये तौलिये से हाथ साफ करते हुए बोला, "चलो! ठीक है यही, मामूली आदमी हूँ भाई।"

"क्या कहा ?"

"हाँ हाँ चलो ।"

"कपड़े नहीं बदलोगे ?"

"चलो भी यार"—जीवन ने संघर्ष की बाँह पकड़ कर उसे धक्का दिया।

संघर्ष पहले तो एक मिनट उसे घूरता रहा पर फिर सीढ़ियाँ उतरने लगा और नीचे आ गया। गली में आकर उसने घुड़की दी, "मनहूस ही रहे यार तुम। पहिनने की भी तमीज नहीं। तुम क्या सोसाइटीज में फिर सकते हो ? थोड़ा-बहुत तो टीम-टाम होनी ही चाहिये। आखिर ये लखनऊ है चतुरपुर तो नहीं।" थोड़ी देर रुक के फिर बोला, "मैं तुम्हें एक महीने से देख रहा हूँ और मुझे आश्चर्य होता है कि कौन तुम्हें एम० ए०, एल-एल० बी० कहेगा। न जाने तुम लाहौर और फिर उसके बाद दिल्ली में क्या करते रहे ? कहीं तुम ढावा खाकर तो नहीं पढ़े ? ढावा खाकर भी जो पढ़ते हैं उन्हें भी थोड़ा कल्चर आ जाता है।" संघर्ष के चेहरे पर घृणा के भाव थे।

"तो तुम क्या चाहते हो ?" जीवन ने हँसते हुए कहा।

"यही कि इंसान बनो।" संघर्ष ने जोर देकर कहा।

"अच्छा यार बनूंगा। अब तो तुम्हारे पास आ गया हूँ, बना लो।"

"खाक बनोगे" संघर्ष बोला और जीवन को हँसते देख स्वयं भी हँस पड़ा।

दोनों अमीनाबाद पार्क के एक होटल के सामने आ गये थे। संघर्ष रुका और बोला, "कुछ जेब पल्ले है ?"

जीवन पहले तो सकुचाया फिर जेब टटोल कर बोला, "दो रुपये के करीब हैं।"

"अच्छा तुम जाओ घर, मैं आ जाऊँगा" कहते हुये संघर्ष आगे बढ़ा। जीवन ने उसे आवाज दी कि बाजार में उसका यह अभिनय उसे क़तई पसन्द नहीं पर संघर्ष न रुका और आखिर जीवन ने आगे बढ़कर जब उसका हाथ पकड़ा तो संघर्ष बोला, "भय्या घर जाओ, लखनऊ में दो रुपयों से चने भी चाबने को नहीं मिलते।"

"और यदि अधिक रुपये हों तो ?"

"तो फिर सब कुछ ।"

"इस सब कुछ में क्या-क्या आ जाता है ?"

"ये तो पता चल जायेगा ।"

"तो चलो, रुपये हैं ।"

संघर्ष ने एक पैनी नज़र जीवन के मुख पर डाली और मुस्कराता हुआ जीवन का हाथ पकड़ कर तीन मंजली इमारत की सीढ़ियों पर चढ़ गया । होटल में न मालूम दोनों चने चाबते रहे अथवा जिस 'सब कुछ' का संघर्ष ने विश्वास दिलाया था वह उन्हें प्राप्त हुआ या नहीं यह ईश्वर ही जानता था । इतना स्पष्ट था कि होटल से वे बाहर तब निकले जब रात के १० बजे थे ।

जब जीवन घर पर पहुँचा तो भय्या और भाभी घर पर नहीं थे । बच्चों की देखभाल करने के लिये शान्ति आई हुई थी । बच्चे सो गये थे और शान्ति बैठक के कमरे में जीवन की रचनाओं को पढ़ रही थी । जीवन को देखकर बोली, "छोटे जीजा जी ! दिल्ली में शायद घूमना नसीब नहीं होता था ।"

"भाभी कहां हैं ?" जीवन ने पूछा ।

"बड़े जीजा जी के साथ पिक्चर देखने गई हुई हैं ।" बड़े जीजा जी से शान्ति का तात्पर्य भुवन से था ।

जीवन के मुख पर कुछ सन्तोष के भाव निखर गये । फिर भी वह कुछ सोच रहा था । उसे चुप खड़ा देख शान्ति बोली, "चलिये चौके में, खाना ठण्डा हो रहा है ।"

"मैंने खाना खा लिया है शान्ति !"

"कहाँ खा लिया है ?"

"होटल में ।"

"तो क्या आपको मालूम था कि आज का खाना शान्ति ने तैयार किया है ?"

"यदि ये मालूम होता तो होटल की अपेक्षा किसी वैद्य की दुकान से चूर्ण खाकर आता ।"

"अब क्या वैद्य जी की दुकान बन्द हो गई होगी ?"

"लेकिन अब वैद्य जी के पास जाने से कुछ मधुर घड़ियाँ नष्ट हो जाएँगी।"

जीवन के शब्दों में शरारत थी, शान्ति ने उसे लक्ष्य किया। कृत्रिम उल्हाना देती हुई बोली, "अब आप उच्छृंखल भी होते जा रहे हैं। चौके में चलिये।"

"शान्ति, सचमुच भूख नहीं है।"

शान्ति जाते हुये बोली, "सचमुच न सही तो झूठी भूख लेके ही चलिये!"

"झूठा अभिनय मुझे नहीं आता शान्ति, मैं अब आराम करूँगा" कहते हुये जीवन सोने वाले कामरे में चला गया। उसने कपड़े बदले और गुसलखाने से हाथ-मुँह धोने के बाद आकर पलंग पर पड़ गया। जीवन के सिर में दर्द हो रहा था और देह भी थकान अनुभव कर रही थी। थोड़ी देर बाद शान्ति कमरे में आई और कृत्रिम गुस्सा करते हुये बोली, "छोटे जीजाजी! यदि आप यह सोच रहे हैं कि शान्ति आपकी मिन्नतें करेगी तो आप भारी भूल कर रहे हैं, समझे?"

"समझता हूँ शान्ति, अब जाकर खाना खाओ और सोओ।"

"तो आप समझे बैठे हैं कि मैं खाली पेट आपकी प्रतीक्षा करती रही हूँ? नहीं जीजा जी! मैंने कभी का खा लिया है और यदि आपको भोजन की इच्छा नहीं है तो फिर मैं भी जाकर लेटती हूँ।"

जीवन ने कोई उत्तर नहीं दिया। करवट बदलकर उसने आँखें मूँद लीं और सोने की चेष्टा करने लग गया। तभी उसने एक कोमल स्पर्श अनुभव किया। आँखें खोलने पर उसने देखा कि शान्ति का हाथ उसके तप्त मस्तिष्क पर पड़ा हुआ था। वह उसके माथे को दबाती हुई झुक कर उसको देख रही थी। जब जीवन ने बोलने के लिये मुँह खोला तो अकस्मात् शान्ति तड़प कर दूर जा खड़ी हुई। उसने देखा शान्ति की आँखों में आश्चर्य, घृणा और क्षोभ तीनों का सम्मिश्रण था। जीवन इस आकस्मिक परिवर्तन पर चकित हो उठा। उसे कोई कारण नहीं दिखाई दिया कि क्यों शान्ति भयभीत हिरणी के समान इस प्रकार चौंक पड़ी थी। वह खोखली आँखों से शान्ति को देखता रहा

पर शान्ति उसे पूर्ववत् बड़े विस्मय से अपलक नेत्रों से देखती जा रही थी। कुछ क्षणों के बाद जीवन की गर्दन क्षोभ और लज्जा से स्वयं नीचे को झुक गई। वह कुछ बोला नहीं। ५-७ मिनट बाद शान्ति कमरे से बाहर निकल आई और जीवन की दृष्टि ऊपर चक्कर लगाते हुये पंखे पर केन्द्रित हो गई। मन ही मन वह तीन बजे से अब तक की दिनचर्या का सिंहावलोकन कर सो गया। उसे पता नहीं चला कि भय्या आदि कब पिक्चर देखकर घर वापस आये।

दूसरे दिन सुबह जब भुवन और जीवन बैठक में नेशनल हैरेल्ड के पन्ने उलट रहे थे तो ट्रे में चाय का सामान लेकर शान्ति आई। वह और दिनों से आज अधिक गम्भीर दिखाई दे रही थी। चाय का सामान रखकर वह क्षण भर भी न रुकी। दोपहर को भोजन के समय भी जब दोनों भाई भोजन करने चौके में बैठे तो जीवन ने शान्ति को अपेक्षाकृत मौन पाया। शान्ति के स्वभाव में इस आकस्मिक परिवर्तन को भुवन ने भी लक्ष्य किया पर उसने इस परिवतन को विशेष महत्व नहीं दिया। जीवन को जब और पानी की आवश्यकता हुई तो उसने तत्काल ही अपने गिलास में शान्ति को जग से पानी उड़ेलता हुआ पाया। उसे आशा थी कि शान्ति उसे पूछेगी नहीं तो कम से कम उसकी तरफ देखेगी अवश्य, पर आशा के विपरीत उसने शान्ति को केवल काम में जुटा हुआ पाया या यूँ कहिये कि वह जान-बूझकर कोई ऐसा अवसर ही नहीं देना चाहती थी कि जीवन को उससे कुछ पूछने-परखने का अवसर ही मिले। जीवन ने किसी तरह भोजन समाप्त किया और उठ खड़ा हुआ। भाभी ने शान्ति को सम्बोधित करते हुये कहा कि वह छोटे जीजा जी के हाथ धुलादे और तौलिया देती जाये। जीवन को कुछ आशा हुई कि सम्भवतः जो दीवार उसके और शान्ति के बीच खड़ी हो गई थी, वह अब टूट जाय या कम से कम उस पर दरारें तो पड़ जायें पर उसकी आशा पर फिर तुषारपात ही हुआ। शान्ति की दृष्टि लोटे पर गढ़ी हुई थी। बीच-बीच में वह जीवन के हाथों में पानी डाल रही थी। जीवन ने अति ही धीमे स्वर में जब उसके कानों में कुछ बुदबुदाया तो शान्ति लोटा फर्श पर रख कर, जीवन के कन्धों पर तौलिया फेंकती हुई कमरे से यह कहते हुये चल दी कि वह मुन्नी को लेने जा रही है, जिसकी दूसरे

कमरे से रोने की आवाज आ रही थी। जीवन को बड़ी चोट पहुँची, ऐसा उसके चेहरे से प्रकट हो रहा था। तीन बजे के करीब जब भुवन, उसकी बहू और बच्चे सब सो रहे थे तो शान्ति को बैठक के कमरे से कुछ बात-चीत करने की आवाज सुनाई दी। उसने धीरे से खिड़की का एक द्वार खोला और उधर अपने कान कर लिये। स्पष्ट सुनाई दे रही आवाज से उसे मालूम हुआ कि संघर्ष और जीवन बातें कर रहे थे। न मालूम संघर्ष कब का आया हुआ था और क्या-क्या बातें उनके बीच हुईं। पर जब शान्ति ने उधर अपने कान किये तो वही बातें चल रही थीं जो प्रायः वे किया ही करते थे। संघर्ष किसी प्रोग्राम में सम्मिलित होने की हठ कर रहा था और जीवन अपनी असमर्थता व्यक्त कर रहा था।

"आज का कार्यक्रम इतना आकर्षक रहेगा जीवन कि बाद को मेरी पीठ पर थपकी दोगे।" यह संघर्ष की आवाज थी।

"मालूम है मुझे। तुम्हारे कार्यक्रमों में आकर्षण तो भले ही जितना हो, पर आत्म-प्रवंचना उनमें पर्याप्त होगी।" यह जीवन का उत्तर था। शान्ति छुप कर देखने लगी। उसने देखा कि संघर्ष ने लम्बा चेहरा बना लिया था। वह कुछ कुढ़कर बोला, 'बस मिट गये न बीस रुपट्टियों पर। आये हैं नवाब साहिब सोसाइटी में शरीक होने। अबे तो कहा किसने था कि लंगूर से आदमी बनो? जरा कल दो पैसे खर्च करने पड़े तो जनाब को अभी तक बुखार चढ़ा हुआ है। जब पता चले कि एक-एक गोष्ठी पर पूरा वेतन लुट जाता है तब समझोगे कि क्या होती है सोसाइटी? पर सोसाइटी का मतलब मालूम हो तब न। आ गये भटियारे बनकर दिल्ली से। हमने भी कितनी गलती की यार नादानों से दोस्ती करके।"

"छोड़ो संघर्ष इन बातों को। ये तो तुम्हारे विचार हैं और जिस स्तर के तुम व्यक्ति हो, उसे दृष्टि में रखते हुए तो तुम से ऐसी ही आशा की जाती है"·········जीवन अभी बोल ही रहा था कि संघर्ष ने चिल्ला कर कहा—"अबे ओ नानखटाई के मुरब्बे! कितने पैसे खर्च हुए हैं तुम्हारे? जल्दी बताओ और किनारा करो।"

"पैसों का प्रश्न नहीं है संघर्ष।"

"तो फिर और क्या है ?" उसी उत्तेजना के साथ संघर्ष बोला।"

"सोसाइटी का ही प्रश्न है जिसका तुम अलाप कर रहे हो। पैसे भी बहुत महत्व रखते हैं पर यहाँ पर उनका प्रश्न गौण है। हाँ, थोड़ा-बहुत उनके उपयोग से अवश्य यहाँ पर सम्बन्ध है। पूरे माह का वेतन गोष्ठियों पर नष्ट करने का जो अभी तुमने उल्लेख किया........."

"नष्ट करने की नहीं, भेंट करने की कहो।" बीच ही में संघर्ष ने टोक दिया।

"चलो जो कुछ भी समझो पर क्या तुम समझते हो कि इस प्रकार भेंट या नष्ट करने से तुम्हारी सोसाइटी का स्तर ऊंचा हो जाता है ? और यदि ऐसा ही है तो बताओ, तुम उन व्यक्तियों की तुलना में, जो इस भेंट की क्रिया से अनभिज्ञ हैं, अपने आपको कितने उच्च स्तर पर पाते हो। यहाँ भय्या हैं, शान्ति के चाचा जी हैं, तुम्हारे आफिस में अधिकतर बाबू ऐसे ही होंगे जो तुम्हारी सोसाइटी में प्रायः नहीं जाते........."

"प्रायः क्या। स्वप्न में भी ऐसी रंगीनी की कल्पना नहीं कर सकते। कोल्हू के बैल हैं केवल मात्र।" संघर्ष बीच में बोल पड़ा।

"हाँ-हाँ, तो क्या तुम समझते हो कि उनकी सोसाइटी का स्तर तुम्हारी सोसाइटी से गिरा हुआ है?"

"तो इसमें भी क्या शक है ?"

जीवन को हँसी आ गई। आश्चर्य प्रकट करते हुये बोला, "ये बात है ?"

"जी ! बिलकुल यही बात हैं।" गम्भीर हो संघर्ष बोला और फिर स्वयं भी हँस पड़ा।

"कल तुम्हें मार-पकड़कर जीवन में पहली बार दो घूँट "गोल्डन ईगल" के पिला दिए तो तुम ये न समझो कि तुम उस सोसाइटी के स्तर से, जहाँ तक मैं पहुँच चुका हूँ, अपनी या इन लोगों की सोसाइटी के स्तर की तुलना कर सको। मेरा स्तर बहुत ऊँचा है; इतना ऊँचा कि हजार रुपये वेतन पाने वालों का भी नहीं होता। मेरे स्तर में नवाब, राजे-महाराजे, फौरेन रिटर्न्ड और ऐसे ही चुने हुये वर्ग के व्यक्ति आते हैं—तुमने 'हेवर्ड', 'स्काच',

'जिन,' 'शॉम्पेन', 'व्हाइट हौर्स' जैसे उम्दा पेयों के नाम भी नहीं सुने होंगे, पर मैं प्रायः इनसे गले का कुल्ला करता हूँ। वह भी ऐसे रेस्टोरेंटों में नहीं जैसे कि एक में कल तुम्हें ले गया था अपितु उन गिने-चुने होटलों में जहाँ सर्व करने वाले बैरे भी तुम्हारे बाबू लोगों से अधिक उच्च स्तर के होते है। सो मेरी सोसाइटी की बात तो छोड़ दो। जीवन, तुम मेरे व्यक्तित्व का अनुमान मेरी 'क्वालिफिकेशन्ज' और मेरी 'नौकरी' से मत लगाओ। यदि ऐसा करते हो तो बड़ी भूल करते हो। नौकरी के पैसों और डिग्रियों से आज तक कोई बड़ा नहीं बना और यदि बना है तो उसे केवल संयोग ही समझो। बड़े बनने के लिये प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो तुम्हें फाइलों में नहीं मिलेगा और ना ही कविताओं में। प्रशिक्षण मिलता है क्लब, होटल और ऐसे ही विशिष्ट स्थानों पर जहाँ घास चरने वाले पत्रकार या क्लर्क लोग नहीं जाते अपितु दुनिया की नकेल हाथ में पकड़े रहने वाले सूत्रधार ही प्रायः जाते हैं।"

संघर्ष की वक्तृता को जीवन और शान्ति दोनों सुन रहे थे—एक प्रत्यक्ष उसी के सामने गाल पर हाथ रखे हुए और दूसरी खिड़की की ओट में छिप कर खड़ी हुई। जीवन की आँखों में जिज्ञासापूर्ण कौतूहल था और शान्ति के मुख पर तीव्रतम आश्चर्य। जीवन की जिज्ञासा को लक्ष्य करते हुए संघर्ष बोला, "सोचते होगे कि क्या बक रहा हूँ। पर ये कठोर सत्य है। मेरे रहन-सहन के स्तर को देख ही रहे हो। ११० रुपयों में, जो वेतन के तौर पर मुझे मिलते हैं, समर की पैंट नहीं पहन सकता जिसे तुम मुझे पहने हुए देख रहे हो। १०-२० रुपये महावार अकेले कैंटीन के आ जाते हैं। फिर खाने-पीने का खर्चा भी रहता ही होगा। ये सब कहाँ से आता है?"

"कहाँ से आता है भय्या?" धीमे स्वर में जीवन ने पूछा जिसमें जिज्ञासा थी

"सब दिमाग़ से। आज हज़रतगंज या अमीनाबाद की किसी बड़ी दुकान पर चले चलो मेरे साथ, देखते ही सैल्यूट में जूते बजेंगे। सारे शहर की खबर रखता हूँ।"

"लेकिन क्या ये नित्य चलेगा?" लम्बे स्वर में जीवन बोला।

"ये नहीं तो कुछ और चलेगा पर जिन्दगी यूं ही सुस्त नहीं गुजरेगी।"

"पर यह भी तो सम्भव है कि कभी बड़े घर के मेहमान बन जाओ।"

"हाँ और यह भी सम्भव है कि एक बंगला रहने को हो जाये और उसके

साथ एक 'व्यूक' सैर सपाटे को। 'रिस्क' में दोनों ही सम्भावनाएं बनी रहती हैं और यही जिन्दगी है।"

जीवन ने लम्बी साँस ली और बोला, "ठीक है संघर्ष। अपने-अपने दृष्टिकोण होते हैं। सम्भव है मैं भी कल इसी तरह सोचूं पर आज मैं तुमसे सर्वथा भिन्न व्यक्ति हूँ। तुम शायद नहीं समझ सकते कि मैं कितनी तीव्र ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। जिस वस्तु के रूप का मुझे ज्ञान भी नहीं था उसे कल तुमने मेरे गले के नीचे उतार कर प्रत्यक्ष में उसके गुणों का भी आभास करा दिया। कई सोचने वाले इसे मेरा महान् पतन समझेंगे।"

अभी जीवन और संघर्ष में बातें चल ही रही थीं कि जीजी के जग जाने पर शान्ति जल्दी से हट कर चौके में चली गयी। भुवन भी अब जग गया था। उठ कर बैठक के कमरे में आ गया। संघर्ष को देखकर हँसता हुआ बोला, "खूब जम रही है भई आजकल तुम्हारी। कल कहाँ रहे इतनी रात तक?"

"क्यों भाई साहब! नौ पौने नौ तक तो आ गये थे। जरा एक कवि गोष्ठी थी। सोचा, जीवन भी अच्छी कविता लिखता है, इसे भी ले चलूँ। गोष्ठियों में सम्मिलित होने से उत्साह तो बढ़ता ही है।"

"कल छोटे जीजा जी के उत्साह में भी चार चाँद लगे हुये थे।" यह शान्ति की आवाज थी जो चाय की ट्रे लिये बैठक में प्रवेश कर रही थी। जीवन को काटो तो खून नहीं। शान्ति के कपोलों पर उसने हल्की-सी लालिमा देखी और लोचनों में संयमित व्यंग और हास्य।

"कैसा उत्साह शान्ति? क्या घर आकर गुनगुना रहा था?" भुवन ने पूछा।

"हाँ, और शायद समझे बैठे थे कि मैं उनकी कविता का अर्थ नहीं समझी पर बाद में उन्हें अपनी भूल अखर गई।"

"कविता में शब्दों का आडम्बर था या भावों की गहराई?"

"भावों की ही गहराई कहूँगी क्योंकि शब्दों को तो मैं समझ गई थी—पर मर्म उस समय समझ में नहीं आया था" कहते हुये शान्ति खिलखिला कर हँस पड़ी और पैनी नजर जीवन पर डालती हुई कमरे से बाहर हो गई।

भुवन ने जोर का ठहाका लगाया। कहने लगा, "अजीब लड़की है यह भी।"

जीवन ने एक फीकी हँसी छोड़ी और गर्दन नीची करली। संघर्ष के सूखे हुए होंठों पर भी कुटिल मुस्कान दिखाई दी।

शाम को जल्दी भोजन कर भाभी ने जीवन को कहा कि वह शान्ति को उसके घर छोड़ आये। जीवन और शान्ति जब बाजार में आये तो शान्ति ने विचित्र भंगिमाओं से जीवन को देखा और जीवन को कुछ बोलना चाहते हुए देख खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली, "कहिये, कवि जी ! जो कुछ अन्दर पक रहा है उसे निस्संकोच बाहर निकाल लीजिये। अब तो केवल आप हैं और मैं हूँ।"

जीवन उसके चापल्य पर हँस पड़ा। बोला, "शान्ति ! तुम सचमुच बड़ी नटखट हो।"

"अच्छा ! बड़ा तीर मार दिया आपने मेरी प्रकृति का अनुमान लगा कर।"

"शोख कहीं की।"

"अभी तो आप केवल दो ही वाक्य कह पाये हैं, आगे कहिये।"

दोनों ने एक दूसरे को देखा और फिर खिल-खिलाकर हँस पड़े।

"शान्ति, दोपहर को तुम कह रही थीं कि तुम मेरी कविता का मर्म समझ गई हो, उससे तुम्हें मेरे प्रति घृणा नहीं हुई ?"

"हुई क्यों नहीं।"

"लेकिन अब तो ऐसा कोई संकेत नहीं मिल रहा।"

"मैंने कहा था न कि तब मैं केवल शब्दों को ही समझी थी मर्म नहीं, मर्म तो मुझे तब पता चला जब दोपहर बाद संघर्ष बाबू तुम्हें अपने नुस्खे बता रहे थे।"

"ओह" कह कर जीवन ने शान्ति की ओर देखा और शान्ति फिर जोर से हँस पड़ी। थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप चलते रहे।

पास ही चाय की दुकान देखकर जीवन ने शान्ति को चाय पीने का सुझाव दिया और शान्ति के अनिच्छा प्रकट करने पर भी दोनों अन्दर जाकर कोने की मेज पर बैठ गये।

"छोटे जीजा जी ! संघर्ष और आप बाल सखा होंगे और नाते में भी भाई हैं पर यह आवश्यक नहीं कि वह आपके मित्र भी हों, क्योंकि यह तथ्य है कि स्नेह, नाते का लिहाज आदि जितनी भी कड़ियाँ हैं, सब स्वार्थ और

सीमित दृष्टिकोण, इन दो हथोड़ों से टूट जाती हैं, विशेषकर उस अवस्था में जब मनुष्य जीवन के चौराहे पर जा पहुँचता है और जब उसे अपने लिये स्थान बनाने में औरों से होड़ लगानी पड़ती है ।"

चाय आ गई थी । जीवन चाय की चुस्की लेकर फिर शान्ति की बातों को सुनने लग गया । शान्ति बोली, "संघर्ष बाबू के अन्दर गुण भी हैं पर वैयक्तिक दूसरों के लिये उनके गुण अवगुण बन जाते हैं और यही कारण है कि प्रायः लोग उनकी इज्जत भी करते हैं पर साथ-साथ उनसे भय भी खाते हैं । मुझे ठीक से नहीं मालूम, केवल इतना ही जानती हूँ कि संघर्ष के पिताजी के कहने पर चाचा जी ने इनको यहाँ बुलाया था पर आज इनका व्यवहार हमारे घर वालों के प्रति बड़ा ही उपेक्षापूर्ण है । समझते हैं कि हम पर जैसे इनका कोई भारी एह-सान हो और जो कुछ हम उनके लिये करते हैं, वह मानो उस एहसान को उतारने की दिशा में किश्त मात्र हो । चाचा जी सब पी जाते हैं । कोई और होता तो कभी का झगड़ा हो जाता ।"

जीवन बोला, "शान्ति ! ये बातें चलती ही हैं—स्वभाव होता है अपना अपना । संघर्ष का बचपन से ही रूखा स्वभाव है । केवल इस स्वभाव के ही कारण हमें उससे दूर नहीं जाना चाहिये । उसमें कुछ कमजोरियाँ होंगी तो गुण भी होंगे । जब से मैं यहाँ आया हूँ, ऐसा कोई अवसर नहीं आया कि कहीं पर उसने मुझे चोट पहुँचाई हो । जिन छोटी-मोटी बातों की ओर तुम्हारा संकेत है वह महत्व नहीं रखतीं ।"

शान्ति बोली, "छोटी बातों से आपका क्या तात्पर्य है मैं नहीं समझी । पर छोटी बातों से ही मनुष्य का पता चलता है । हमारी दुनिया ही कितनी बड़ी है कि हम इन्हें छोटा कहें । ये बातें ही तो हमारे पारस्परिक व्यवहार को मोड़ती हैं । साधारण व्यक्ति के लिये तो केवल वैयक्तिक समस्यायें ही महत्व रखती हैं क्योंकि उन्हीं में वह उलझा रहता है । उसे राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय समस्याएँ थोड़ी ही देखनी हैं । आपको संघर्ष की बातें प्यारी लगती होंगी क्योंकि प्रत्यक्ष में ऐसा अभी अवसर भी नहीं आया होगा कि उन बातों का सही परिणाम तुम समझ सको, पर विश्वास करो कि संघर्ष बाबू के साथ अधिक सम्पर्क तुम्हें हानि ही पहुँचायेगा लाभ नहीं ।"

जीवन हँसा और बोला, "शान्ति ! मैं कुछ दिन के लिये ही यहाँ आया हूँ। भला दो चार-दिन इसके साथ घूमता-फिरता रहूँ तो मुझे क्या हानि हो सकती है ?" फिर गम्भीर हो बोला, "लाभ और हानि का वैसे भी प्रश्न नहीं उठता। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने पाँव पर खड़ा होना चाहता है। यही प्रवृत्ति तुम सर्वत्र पाओगी कि कोई भी अपना स्थान बनाने में आज दूसरे के सहयोग पर निर्भर नहीं रहना चाहता। संघर्ष दफ़्तर में काम करता है और मैं एक पत्र में। उसका और मेरा स्थान अलग-अलग है। फिर भला उसका सम्पर्क मेरी कौनसी हानि कर सकता है। गाँव की बात अलग है। वहाँ पानी पर झगड़ा हो सकता है, खेतों पर काम करने में रार पैदा हो सकती है, छोटी-छोटी बातों पर कभी-कभी मनमुटाव हो सकता है और क्योंकि वहाँ एक के बिना दूसरे का काम नहीं सरता, इसीलिये छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखना ही पड़ता है और ये छोटी-छोटी बातें फिर अधिक महत्व की समझी जाती हैं। पर यहाँ ये बातें नहीं। सब अपने लिए बड़े हैं। फिर बताओ भला यदि कभी हँस लिये या साथ-साथ घूमने चल दिये तो उससे किसी की भी क्या हानि हो सकती है ?"

शान्ति ग़ौर से सुनती रही और फिर बोली, "अभी जीजा जी आप राजनीति से परिचित नहीं हैं और यदि हो भी तो इस शब्द के बहुत ही तंग अर्थ लगाते हैं क्योंकि उससे प्रत्यक्ष में आपका कभी वास्ता नहीं पड़ा।"

"ये कहाँ की हाँकने लगीं अब शान्ति ?" जीवन हँसते हुये बोला।

"ठीक कह रही हूँ छोटे जीजा जी। ये न समझो कि घर में, बिरादरी में और दफ़्तरों में राजनीति नहीं होती। यहाँ भी अपने-अपने पक्ष को मज़बूत करने के लिये झूठ और सच सब चलता है। संघर्ष बाबू से अधिक सम्पर्क रखोगे तो समाज की गन्दी राजनीति में फँस जाओगे और मैं बताये देती हूँ कि संघर्ष बाबू एक मँजे हुये राजनीतिज्ञ हैं जो किसी भी समय तुम्हें समाज के सामने नीचा दिखा सकते हैं।"

जीवन ने शान्ति की बातें सुनीं और गम्भीर हो बोला, "अब तुम्हारी बातें समझ में आ रही हैं शान्ति। पर तुम इतनी चिन्तित क्यों हो उठी हो ?"

शान्ति बोली, "बड़े भोले हो छोटे जीजा जी। संघर्ष बाबू के साथ कल क्या-क्या मौजें उड़ाईं और अब पूछ रहे हो कि चिन्तित क्यों हूँ ?"

जीवन ने गर्दन झुका ली। शान्ति के संकेत को वह समझ गया था।

शान्ति बोली, "रुपयों-पैसों के मामले में भी संघर्ष बाबू से ज़रा बच कर चलना। वह कोई हिसाब-किताब नहीं रखते। चाचा जी से और बड़े जीजा जी से उन्होंने कुछ रुपये लिये थे, पर देते समय हिसाब-किताब कुछ गोल-मोल ही रहा।"

"संघर्ष को रुपयों की क्या आवश्यकता पड़ी थी ?"

"पता नहीं क्या आवश्यकता थी। चाचा जी के तो लौटा दिये पर बड़े जीजा जी को केवल आधे-पाधे ही दिये। बाकी कुछ दवाइयों के और कुछ कपड़ों के काट लिये।"

"वो कैसे ?"

"मुन्नी के जन्म पर जीजी अस्वस्थ थी। संघर्ष बाबू के जान-पहचान के वैद्य थे म्युनिसिपैलिटी के कोई। वहाँ से दवाइयों के डिब्बे जीजा जी को देते रहे। बाद में वे रुपये अपने हिसाब में काट लिये। इसी प्रकार लखनऊ से करीब १२-१४ मील पर एक फैक्टरी है। वहाँ इनका एक मित्र काम करता है जो इनको बड़ी उम्दा किस्म के स्वेटर, दस्ताने, जुराब, बनियान आदि देता रहता था। इन्होंने परामर्श दिया कि बड़े जीजा जी को पलंगों की चद्दर आदि सस्ते दामों पर दिला देंगे। बाद में जो भी सामान आया उसका मूल्य इन्होंने इतना बतलाया कि बाकी हिसाब करने की आवश्यकता ही न पड़ी।"

शान्ति फिर बोली, "मुझे आप पर विश्वास है, लेकिन यदि आपके रुपये व्यर्थ में नष्ट हुए तो क्या अच्छी बात होगी ?"

जीवन सोचता रहा। फिर लम्बी साँस खींचकर बोला, "मेरा क्या है ? तीन-चार दिन और रहूँगा—क्या अन्तर पड़ जायेगा।"

अभी वह बोल ही रहा था कि उसकी नजर घड़ी पर पड़ी। समय काफ़ी हो चुका था। उसने शान्ति से चलने को कहा और वे होटल से बाहर आ गये।

३

पूरा एक माह व्यतीत कर जीवन दिल्ली वापस आ गया था। भय्या, भाभी, संघर्ष और शान्ति उसे छोड़ने स्टेशन तक आये थे। विदाई के समय संघर्ष बोला था, "जीवन ! अभी तो बहुत मुलाक़ातें होंगी।"

"क्यों नहीं, मुझे तुम हमेशा तत्पर पाओगे।" जीवन का प्रत्युत्तर था।

"ये तो समय बतायेगा।"

जब गाड़ी ने सीटी दी तो जीवन एक उड़ती हुई दृष्टि शान्ति के मुख पर डालकर गाड़ी में चढ़ गया था।

दिल्ली पहुँचने पर जीवन को, लखनऊ में जो ३० दिन उसने व्यतीत किये थे, बड़े याद आने लगे। वहाँ की दिनचर्या में एक प्रकार की स्फूर्ति थी जिससे कभी भी मन क्लान्त नहीं होता था। वैसे तो तमाम सम्बन्धियों से मिल कर जीवन को बड़ी प्रसन्नता हुई थी पर दो व्यक्तियों से वह बड़ा प्रभावित हुआ था : एक संघर्ष और दूसरी शान्ति। शान्ति से इसलिये कि जीवन में पहली बार उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसके सुख में सुख और दुःख में दुःख अनुभव करने वाला भी संसार में कोई है और संघर्ष से इसलिये कि उसने उसकी सुप्त वृत्तियों को झकझोर कर उसे वास्तविक दुनिया में ला पटका था। शान्ति उसे प्रातः की समीर मालूम पड़ी और संघर्ष दहकता हुआ अंगार। एक के स्मरण से उसे नींद की सी खुमारी अनुभव होती और दूसरे को याद

कर मस्तिष्क पर पसीने के कण छटपटा जाते। यह भी एक अनुभव था जिससे वह अब तक के एकान्तप्रिय जीवन में वंचित रहा था।

जीवन डाक्टर एस० स्वरूप के मकान में रहता था जो जवाहरनगर में था। डाक्टर स्वरूप जीवन की ही बिरादरी के थे और दिल्ली के चोटी के सर्जनों में उनका नाम आता था। प्रैक्टिस से बड़ी आय थी। इसके अतिरिक्त पाँच-चार मकान थे। वह स्थानीय म्युनिसिपैलिटी में हास्पिटल उपसमिति के उप प्रधान भी थे। जीवन के पास केवल एक ही कमरा था जिसका वह ३५ रुपये माहवार किराया देता था। साथ वाला कमरा और किचन डा० स्वरूप के ड्रायवर चन्द भरपूरिया के उपयोग में आता था। जीवन की दिनचर्या पूर्ववत् चलने लग गई थी पर जहाँ वह पहले उदास-सा दिखाई देता था, वहाँ वह अब प्रफुल्लित और सन्तुष्ट जान पड़ता था। उसके मुख पर स्पष्ट विश्वास झलकता था।

लखनऊ से लौटे हुए उसे क़रीब एक माह हो गया था। आज रविवार था। जीवन कुछ डायरी के पन्ने लिख रहा था कि चन्द भरपूरिया ने कमरे में प्रवेश किया और कहा, "बाबू जी ! आपको मिलने बुलाया है।"

जीवन को बड़ा आश्चर्य हुआ कि किस काम से डाक्टर साहब ने उसे याद किया ? उसने भरपूरिया से पूछा, "भरपूरिया ! तुमने किराये के पैसे तो दे दिये थे न ?"

"हाँ बाबू जी। पर आपको तो, आपके भाई साहब हैं न लखनऊ वाले, उन्होंने बुलाया है। क्या नाम है उनका···संघर्ष।"

"संघर्ष ?" जीवन चौंक पड़ा।

"हाँ, परसों ही लखनऊ से आये हैं और प्रोफेसर साहब के यहाँ ठहरे हैं। उसी दिन से आपको पूछ रहे थे। अभी-अभी प्रेरणा बहिन जी के साथ चाँदनी चौक गये हैं। वहीं आपको बुलाया है—चल रहे हैं आप मेरे साथ ?"

"नहीं भरपूरिया। अभी तो शेव करूँगा और नहाऊँगा। शाम तक ही आना हो सकेगा, कह देना।"

भरपूरिया तो चला गया पर जीवन के विचार-प्रवाह में तूफान पैदा कर गया। उसे संघर्ष के व्यक्तित्व पर आश्चर्य हो रहा था और साथ में कुछ-कुछ स्पर्धा भी। न मालूम क्यों जीवन को खुशी नहीं हुई जैसी कि होनी

चाहिये थी । उसने अनुभव किया कि यदि संघर्ष प्रोफेसर साहब के यहाँ न ठहर कर उसके निवास-स्थान पर ही ठहरता तो उससे मिलने में उसका दिल बाँसों उछलता । न मालूम क्यों, जीवन ने ऐसा अनुभव किया कि मानो डाक्टर स्वरूप और प्रोफेसर साहब के साथ संघर्ष के सम्पर्क से उसके व्यक्तित्व पर ज़ोर का प्रहार हुआ है । अभी भरपूरिया कह गया था कि वह प्रेरणा के साथ डाक्टर स्वरूप के निवास पर गया है । सम्भवत: भोजन के लिये निमंत्रित किया गया होगा । उसे स्मरण हो आई संघर्ष की बातें कि उसका स्तर राजों और नवाबों के समान उच्च है । अब उसने अनुभव किया कि उसके इस कथन में कितनी सचाई है । तराज़ू के पलड़ों पर उसने अपने को संघर्ष से बहुत हल्का पाया । उसे दिल्ली में रहते हुये पाँच साल हो गये थे । डाक्टर उसी के बिरादरी के थे और सम्बन्ध में उसके उतने ही निकट थे जितने कि संघर्ष के, पर उसका डाक्टर परिवार के साथ अभी तक कोई निकट सम्पर्क स्थापित नहीं हुआ था; इतना भी नहीं कि उसे एक ही बिरादरी के होने का आभास होता । किराये पर मकान लेने के लिये भी जब वह डाक्टर स्वरूप से मिला था तो उसकी मुलाकात सूक्ष्म और अतीव औपचारिक थी । ऐसी परिस्थिति में यह सोचना कि प्रेरणा के साथ उसका थोड़ा-बहुत भी परिचय हो, केवल विडम्बना मात्र थी । प्रेरणा को उसने एक-दो अवसरों पर देखा था पर ठीक उसी तरह जिस तरह रंगमंच पर क्रीड़ा करती हुई अभिनेत्री को दूर पीछे की सीट पर बैठा हुआ दर्शक देखता है । एक दिन प्रेरणा प्रोफेसर साहब के निवास-स्थान पर आई हुई थी । उज्ज्वल जार्जेट की साड़ी और ब्लाउज के आवरण में अपने पूर्ण विकसित यौवन को छिपाये, अधरों में मंजुल हास्य समेटे, वह नव-कलिका सी वातावरण को सुरभित कर रही थी । उसके कटीले नैनों में महासागर की गहराई और हिरणी की सी चंचलता छुपी हुई थी, जो बिजलियाँ-सी गिरा रही प्रतीत होती थी । चाँद के समान निर्मल आनन पर व्याप्त तेज उसके व्यक्तित्व को असीम आकर्षण और सौष्ठव प्रदान कर रहा था जिससे चकाचौंध होकर जीवन की दृष्टि उस पर नहीं जम पा रही थी पर अन्दर ही अन्दर उस असीम सौन्दर्य को पी जाने को उसकी आँखें तड़प उठी थीं । जीवन सोच रहा था, उसी प्रेरणा के साथ

संघर्ष ने आते ही इतनी सरलता से परिचय बना लिया है। उसे अपना गला घुटता हुआ सा अनुभव हुआ। उसे लगा कि मानो संघर्ष उसके शान्त जीवन में धूमकेतु बनकर उसको अशक्त और अशान्त बना रहा हो।

जीवन उठा और स्नान करने गुसलखाने में चला गया। स्नानादि से निवृत्त होकर उसने अपने को संयत पाया और संघर्ष के विषय में जो विचार कुछ घड़ी पूर्व उसके मन में आये उनसे उसको महान् ग्लानि हुई। उसने इन अनर्गल बातों को अपने अन्दर की हीन भावनाओं की ही संज्ञा दी।

शाम को ठीक पाँच बजे जीवन संघर्ष से मिलने डाक्टर स्वरूप के मकान पर पहुँचा। बिजली की घंटी दबाने पर जब दरवाजा खुला तो जीवन ने प्रेरणा को सामने पाया।

"संघर्ष हैं ? उन्होंने मुझे मिलने को कहा था।" जीवन बोला।

"जी हाँ ! आइये" कहकर प्रेरणा जीवन को बैठक के कमरे में ले आई जहाँ कोच पर लेटा हुआ संघर्ष ऐलबम के पन्ने पलट रहा था।

"ओह ! आओ भई जीवन ! मियाँ परसों से देख रहा था तुम्हें।" जीवन को देखकर उठते हुये संघर्ष बोला, "प्रेरणा देवी ! आप तो जानती ही होंगी इन्हें।" जीवन को बैठने का इशारा करते हुए फिर संघर्ष ने प्रेरणा की ओर देखा। प्रेरणा ने दोनों हाथ जोड़ते हुये नमस्ते की और जीवन से नमस्ते का उत्तर पाकर एक ओर खड़ी हो गई।

"जीवन ! तुमको लखनऊ स्टेशन पर बिदा करते हुये मैंने कहा था न कि अभी तो बहुत मुलाकातें होंगी।" संघर्ष बोला।

"हाँ, पर ऐसी आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी।"

"बस कुछ ऐसी ही इच्छा हो गई यहाँ आने की। तुम तो जानते ही हो मेरी प्रकृति। चलता रहना ही क्रम है।" हँसता हुआ संघर्ष फिर बोला, "और फिर तुम्हारी इस दिल्ली नगरी और इसके नागरिकों को देखने का कब अवसर मिलता ?"

"खैर, लखनऊ की सुनाओ। सब ठीक तो हैं ?"

"हाँ ठीक ही हैं, शान्ति तुम्हें याद कर रही थी।"

जीवन चुप रहा।

"अरे कभी-कभी तो पत्र लिख दिया करो।" संघर्ष फिर बोला।

जीवन ने उड़ती हुई नजर प्रेरणा पर डाल कर गर्दन नीचे कर ली। प्रेरणा का दोनों की बातों से विनोद हो रहा था, ऐसा उसके मुख से प्रतीत होता था।

"जीवन! ऐसा लगता है तुम प्रेरणा देवी से कुछ शर्मा रहे हो।" संघर्ष व्यंग कसाने।

प्रेरणा हँसी और बोली, "हो सकता है, संघर्ष बाबू! नया परिचय है।"

"हाँ तभी तो दब कर बात करता है।" जीवन को सम्बोधित करता हुआ फिर संघर्ष बोला, "जीवन! तुम्हारी प्रकृति में कतई परिवर्तन नहीं हुआ। अच्छा होता यदि तुम पुरुष की अपेक्षा स्त्री होते।"

जीवन झेंप गया। बात का रुख बदल कर बोला, "भाभी की तबियत तो ठीक रहती है संघर्ष?"

"देख रही हो प्रेरणा देवी, कहाँ बात पलट रहा है।" हँसते हुए संघर्ष बोला और प्रेरणा ने भी साड़ी का पल्ला मुँह में दे लिया। कुछ क्षणों तक संघर्ष खूब हँसता रहा और उसे साथ में प्रेरणा का भी योग मिलता रहा। जीवन को अपनी स्थिति बड़ी हास्यास्पद लगी। वह कुछ खिसिया-सा गया पर शीघ्र ही उसने अपने को संयत कर कहा—

"संघर्ष! मेरी स्थिति ही ऐसी है कि मेरे अन्दर संकोच और शर्म की मात्रा अधिक है और इसे तुम मेरे स्वभाव की कृपणता ही कहो कि जहाँ तुम प्रत्येक स्थिति में अपना मनोविनोद कर सकते हो, वहाँ मेरे शुष्क हास्य की कुछ विशेष घड़ियाँ ही होती हैं जो मेरे जीवन में ठीक वैसे ही आती हैं, जैसे समुद्र में ज्वार।"

प्रेरणा का हँसना रुक गया। जीवन आगे बोला, "तुमने लखनऊ स्टेशन पर मुझे विदाई देते हुए कहा था कि मेरी तुम से बहुत-सी मुलाकातें होंगी। ठीक वैसे ही तुमने मुझे मिलने के लिये बुलाया भी, पर मैंने कहा न कि मुझे इतनी शीघ्र तुमसे मिलने की आशा नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि तुम्हें मेरे तत्पर न रहने पर शायद शिकायत महसूस हो रही हो।"

संघर्ष ने एक पैनी दृष्टि जीवन पर डाली और बोला, "बहुत लम्बी ले जा रहे हो जीवन।"

"लम्बी ? अपनी मजबूरियों पर चाहता हूँ कोई आवरण न रहे, संघर्ष ! ताकि मेरा सही रूप सामने रहे।"

प्रेरणा ने संघर्ष को मौन पाया। जीवन को सम्बोधित करती हुई बोली, "जीवन साहब ! संघर्ष बाबू की प्रकृति बड़ी सरल है—ठीक बालक की तरह। और फिर बातें करते समय ये भूल जाते हैं कि इनकी प्रकृति से दूसरों की प्रकृति भिन्न भी हो सकती है। ये इनमें कमी है शायद। पर जैसे ये दूसरों की बातों का बुरा नहीं मानते, ठीक उसी तरह इन्हें अपनी ऐसी बातों का बुरा न मानने की भी दूसरों से आशा रहती है।"

जीवन व्यंग से बोला, "प्रेरणा देवी ! संघर्ष मेरा भाई है। भला मैं बुरा क्यों मानने लगा। हाँ, मुझे प्रसन्नता है कि मेरी अपेक्षा इनकी प्रकृति का आपको अच्छा अध्ययन हो गया है।"

संघर्ष अभी तक मौन था मानो सोच रहा हो कि मुलाकात की पूर्व सूचना देकर उसने जीवन को तो मिलने के लिये तत्पर बना दिया पर स्वयं इसके लिये तत्पर न रहा। संघर्ष की इस परास्त मनोवृत्ति को प्रेरणा ने भी लक्ष्य किया पर उसे कुछ भी सूझ न रहा था कि इस कटुता को कैसे दूर करे। ठीक इसी समय डा० स्वरूप ने कमरे में प्रवेश किया। संघर्ष और प्रेरणा के साथ जीवन को देखकर बोले, "क्या हाल है जीवन तुम्हारा ?"

जीवन ने खड़े होकर नमस्कार किया और बोला, "आपकी दया है डा० साहब।"

डा० स्वरूप बोले, "सुना है कि किसी पत्रिका में काम करते हो ? प्रेरणा को भी लिखने का कुछ शौक है। इससे भी ले लिया करो कुछ।"

जीवन बोला, "यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात होगी डाक्टर साहब।"

संघर्ष जो अभी तक चुप था बोला, "बड़ा आश्चर्य है डाक्टर साहब कि विज्ञान के साथ चोला-दामन का साथ होते हुए भी आप कला को प्रोत्साहन देते हैं।"

"क्या मतलब ?" डा० साहब ने आश्चर्य से पूछा।

"आप डाक्टर हैं, लेकिन मैं देख रहा हूँ कि प्रेरणा देवी को चित्रकारी

आदि कलाओं और जैसा कि आपने अभी कहा, लेखक बनने के लिये भी आपसे प्रोत्साहन मिल रहा है।"

डा० स्वरूप हँसे और प्रेरणा की ओर देखने लग गये। प्रेरणा ने कहा, "संघर्ष बाबू ! आग और पानी की तरह कला और विज्ञान का भी चोली-दामन का साथ है, यद्यपि गुणों में वे एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। इस छोटी सी दुनिया को खूबसूरत बनाने के लिये विविधता के साथ एकरूपता की भी परमावश्यकता है। विज्ञान को कुरूप बनने से रोकने के लिये कला की बड़ी आवश्यकता है।"

"प्रेरणा देवी ! लेखकों और कवियों जैसी पहेली बुझा रही हो।" संघर्ष ने हँसते हुए कहा।

"नहीं संघर्ष बाबू ! पेड़-पौधों को जीवित रखने के लिये पानी की आवश्यकता होती है। पर यदि पानी ही पानी बरसे तो पता है उसे क्या कहते हैं ? उसे प्रलय कहते हैं। यह पानी का कुरूप है और पानी को अपने इस कुरूप से बचाने के लिये धूप या ताप की आवश्यकता होती है। तभी वसुन्धरा शस्यश्यामल नजर आती है।"

"शाबास बेटी। संघर्ष ! अब तो प्रेरणा ने इस पहलू का वैज्ञानिक विवेचन भी प्रस्तुत कर दिया है।"

डाक्टर स्वरूप हँसने लगे और साथ में जीवन भी, जो प्रेरणा की बातों से बड़ा प्रभावित हुआ जान पड़ता था।

संघर्ष भी हँसा और बोला, "ठीक कह रहे हैं डाक्टर साहब ! प्रेरणा देवी विदुषी हैं। वैसी ही उक्तियाँ भी प्रस्तुत करेंगी। पर मैं तो सीधी बातें करना ही जानता हूँ जिससे दुनिया या समय का व्यावहारिक सम्बन्ध है। आप ही बताइये क्या इस कला और कविता से हमारे अन्दर की सृजन-शक्तियों का क्षय नहीं होता ? प्रेरणा देवी शायद प्री मैडीकल की छात्रा हैं। यदि इन चित्रों के बनाने और लेखों के लिखने की अपेक्षा ये अपने अध्ययन को पूर्ण करें तो क्या यह झूठ होगा कि वास्तविक जीवन में अधिक सफल होंगी ?"

"लेकिन यह तो केवल शौक है, संघर्ष भैया !" जीवन बोला।

"विज्ञान की छात्राओं का शौक कविता न होकर जिज्ञासापूर्ण खोजें

होना चाहिये, जीवन ! और यदि ऐसा नहीं होता तो पूर्णता प्राप्त न कर सकने की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। अपने क्षेत्र से बाहर के विषयों में रुचि रखना अपूर्णता को निमंत्रण देना है।"

प्रेरणा का कौतूहल बढ़ा। वह कुछ बोलना चाहती थी, पर डाक्टर साहब का इशारा पाकर वह चुप हो गई।

संघर्ष बोला, "कला और कविता तो इस ज़माने में केवल कोरी 'वाह-वाह' का नाम है और इसका अवलम्बन प्रायः वही लेता है जिसके अन्दर सच्ची वाह-वाह प्राप्त करने की सृजन-शक्ति का अभाव हो। डाक्टर साहब ! आप ही बताइये कि कवि और कलाकार का जीवन आज कितना दरिद्र है और साथ में पराश्रित। यदि आज यह 'वाह-वाह' भी समाप्त हो गई तो कहाँ जायेगी इनकी कविता और कला ? भूखे मरने पर बाध्य हो जायेंगे। पर डाक्टर, इंजीनियर और वैज्ञानिकों के साथ यह सम्भव नहीं। वह समाज पर आश्रित नहीं, अपितु समाज उन पर आश्रित है। उनके आश्रय से वंचित होने पर समाज रोगी हो जायेगा, उसकी सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी, मकान बनने बन्द हो जायेंगे। यह बिजली, मोटर कार, रेल, पुल और सड़कें—गोया जो कुछ आप देख रहे हैं सब समाप्त हो जायेगा। यह सब इनकी सृजन-शक्ति के प्रतीक हैं।"

"हूँ" प्रेरणा के मुख से धीमा स्वर निकला।

"हाँ प्रेरणा देवी ! कवियों के प्रति हमारी निष्ठा ज़माने की देन है, जब वैभव और विलास में डूबे हुए सामन्त अपनी प्रशंसा में इनसे गीत लिखवाकर इनको जागीरें प्रदान करते थे। लेकिन अब वह ज़माना गया।"

"बहुत ठीक।" गम्भीर हो डा० स्वरूप बोले, "तुम्हारे अन्दर ज़माने का सच्चा प्रतिनिधित्व करने की क्षमता है संघर्ष !"

"डाक्टर साहब ! मैं किस क़ाबिल हूँ ?" हँसते हुए संघर्ष बोला।

"क्यों नहीं, भावनाएँ ही आगे मार्ग बनाती हैं।" डाक्टर साहब ने अँगड़ाई ली और कमरे से चले गये।

डाक्टर साहब के चले जाने पर प्रेरणा हँसते हुये बोली, "संघर्ष बाबू ! जान पड़ता है इस वाद-विवाद में सम्भवतः मुझे कुछ शिष्टाचार का ध्यान नहीं रहा।"

"क्यों ? इसीलिये कि आप ने कुछ आग-पानी मिलाने की कोई खूब-सूरत-सी बात कही थी ?"

"नहीं-नहीं।" प्रेरणा खिलखिला कर हँस पड़ी और जीवन की ओर देखती हुई बोली, "इसलिये कि अभी तक आपके भाई साहब से कुछ शक्कर-पानी के लिये भी न पूछ सकी। जीवन को हँसी आ गई। संघर्ष ने जीवन की ओर मुड़ कर कहा, "अच्छा, कुछ आतिथ्य-सत्कार की. बात हो रही है। लेकिन जीवन, तुम तो महात्मा हो न ? शायद ये शिष्टाचार पसन्द न करो।"

जीवन ने कहा, "हाँ प्रेरणा देवी ! रहने दीजिये। अब तो मैं जा रहा हूँ।"

प्रेरणा ने हँस कर संघर्ष की ओर देखा और बोली, "ये तो शायद चिढ़ कर चाय भी नहीं पी रहे।"

जीवन ने शिष्ट मुद्रा में इसका उत्तर देने के उपरान्त खड़े होते हुए संघर्ष को संबोधित कर कहा "अभी तो कुछ दिन हो न ?"

संघर्ष ने विदा करते हुये कहा, "हाँ।"

दूसरे दिन पाँच बजे शाम प्रेरणा 'जागरण' के कार्यालय में पहुँच गई। उसने जीवन के कमरे का पता लगाया और प्रवेश करते हुये बोली, "मुझे आज्ञा है जीवन बाबू ?"

जीवन एक लेख लिखने में तल्लीन था। उसने गर्दन उठाई तो वह आँखें फाड़ कर देखता ही रह गया। सामने सलवार और लम्बा-सा चुस्त कुर्ता पहने प्रेरणा खड़ी थी।

जीवन को चकित और खोखली नजर से अपनी ओर देखते हुए प्रेरणा ने अपने वक्ष पर चुनरी संभाली और समीप आती हुई बोली—

"आप को शायद आश्चर्य हो रहा है ?"

जीवन हंसा और बोला, "कल्पना और वास्तविकता के संगम से कुछ आश्चर्य होता ही है, आइये बैठिये।" समीप ही कुर्सी की ओर इशारा करता हुआ जीवन बोला।

प्रेरणा मुस्करा कर कुर्सी पर बैठती हुई बोली, "तो आप मेरे आने को अभी तक कल्पना ही समझ रहे थे ?"

"कल्पना के अतिरिक्त और क्या हो सकता था।"

"लेकिन आप मानते हैं कि कल्पना थी ?" प्रेरणा के अधरों पर संयमित मुस्कान थी और आँखों में उत्तर पाने की उत्सुकता।

जीवन ने प्रेरणा की ओर देखा और मुँह पर लाचारी का भाव लिये गर्दन नीचे करली। बोला, "यदि मैं हाँ भी कहूँ तो उससे मैं दोषी नहीं माना जा सकता। कल्पना स्वप्न की भाँति स्वतन्त्र होती है और बिना लक्ष्य या किसी खास बिन्दु को केन्द्र बना कर भी विचरण करती है।"

दोनों कुछ क्षणों तक मौन रहे। फिर मौन को भंग करती हुई प्रेरणा बोली, "आप शायद कुछ लिख रहे थे। मैंने आपका ध्यान भंग किया है।"

"हाँ, एक लेख लिख रहा था। आपको आश्चर्य होगा सुनकर कि इसका शीर्षक होगा 'कला और जीवन'।"

"कला और जीवन ? तो क्या कल जो संघर्ष कह गये, शायद उसी पर टिप्पणी है ?"

"नहीं। जो कुछ संघर्ष कह गया, उसके आगे जो आता है उस पर एक समीक्षा है।"

"इसका तात्पर्य यह हुआ कि संघर्ष बाबू का कथन अधूरा था ?"

"अधूरा नहीं था, था तो अपने में पूर्ण; पर वह एकतरफा था। 'जागरण' के अगले अंक में प्रकाशित हो जायेगा, फिर देख लीजियेगा" कह कर जीवन ने पास मेज पर रखी घण्टी बजायी। चपरासी आकर उसकी लिखी हुई चिट ले गया।

"हाँ तो आपने कैसे कष्ट किया ?" जीवन फिर प्रेरणा की ओर मुड़ कर बोला।

प्रेरणा हँसी। "न चाहते हुए भी संघर्ष बाबू को चिढ़ाने की सोच रही थी" कहकर उसने अपने पर्स से एक कागज़ का टुकड़ा निकाला और जीवन को देती हुई बोली, "मालूम नहीं यह आपके पत्र में स्थान प्राप्त कर सकेगा या नहीं ?"

जीवन ने ध्यान से उसको पढ़ा और बोला, "यदि आपका आदेश है तो यह अवश्य प्रकाशित होगा। इसमें शब्दों का लालित्य तो अच्छा है पर भाव गम्भीर प्रतीत नहीं होते।"

द्वार खुला और चपरासी ने एक ट्रे में चाय, कुछ नमकीन और मिठाई लिये प्रवेश किया।

प्रेरणा के मुख से मालूम पड़ता था कि वह कुछ निरुत्साह सी हो गई थी। कुछ संयमित आवेश में वह बोली, "मैं आपको आदेश देने वाली कोई नहीं होती हूँ। लाइये, इसको किसी ऐसे ही पत्र में दूँगी जो इसके भाव-सौष्ठव को भी पसन्द करे।"

"लीजिये" बीच में टोकते हुए जीवन ने चाय की प्याली प्रेरणा की ओर बढ़ाई। पर प्रेरणा ने चाय ग्रहण नहीं की और "धन्यवाद" कहते हुए उठ खड़ी हुई। जीवन ने उसे रोका, पर वह शीघ्र ही कमरे से बाहर निकल आई। ज़ोर का खटका होने पर जीवन ने खिड़की से देखा कि प्रेरणा कार को स्टार्ट कर रही थी।

जीवन इस घटना पर क्षुब्ध हो उठा। उसे सूझ नहीं रहा था कि यह सब कैसे हो गया। शायद कविता के प्रति उसने जो शब्द कहे थे वह प्रेरणा को कुछ अखरे हों, लेकिन वह तो उसने बड़े सरल ढंग में कहा था। यदि उसके स्थान पर संघर्ष होता तो शायद कविता का बिना झिझक के खूब परिहास करता। कविता थी ही कौन ऐसी उच्च स्तर की? उसने जो कुछ भी कहा था, उसमें सचाई थी और उस सत्य को उसने अति संयम से व्यक्त किया था। फिर प्रेरणा को क्यों इतना बुरा लगा? चाय की प्यालियों से गर्म भाप निकलनी बन्द हो गई थी। जीवन को लगा मानो उसकी गर्म साँसें भी उसकी देह को ठण्डा छोड़ गई हों। उसने चाय की प्याली अधरों से लगाई और उसे पानी की तरह पी गया। चपरासी को आवाज़ देकर उसने चाय का सामान ले जाने को कहा और मेज़ पर झुक कर आँखें बन्द कर लीं।

प्रेरणा 'जागरण' के कार्यालय से चलकर रेडियो स्टेशन को जा रही थी। उसके गम्भीर चेहरे पर कुछ क्रोध झलक रहा था। रेडियो स्टेशन जाकर प्रेरणा कार से उतरी और कोई २० मिनट बाद फिर उसने अन्दर से आकर कार स्टार्ट कर दी। कार पार्लियामेंट स्ट्रीट होते हुये कैनॉट प्लेस आई और अपेक्षा अपने निवास की तरफ चलने के, पँचकुइयाँ रोड होती हुई प्रो० पी० स्वरूप के निवास पर जाकर रुकी।

उस समय प्रो० पी० स्वरूप घर पर नहीं थे। उनकी बुढ़िया माँ, धर्मपत्नी और संघर्ष बैठे बातें कर रहे थे। प्रो० पी० स्वरूप की माँ संघर्ष की निकट की सम्बन्धिनी थी और नाते में संघर्ष की ताई लगती थी। संघर्ष के परिवार

से इनका स्नेह और मेल-जोल भी काफी निकट का था। इन्हीं के परामर्श और निमंत्रण पर संघर्ष के पिता ने संघर्ष को दिल्ली जाने को लिखा था। डाक्टर एस० स्वरूप और प्रो० पी० स्वरूप चचेरे भाई थे। डाक्टर एस० स्वरूप के पिता का देहान्त उस समय हो गया था जब वह किशोर अवस्था के ही थे। अतः उनकी संरक्षता का भार उनके चाचा यानी प्रो० पी० स्वरूप के पिता पर आ पड़ा। परिवार अधिक समृद्ध नहीं था। अस्तु प्रो० पी० स्वरूप के पिता डा० एस० स्वरूप को विशेष शिक्षा दिलाने में असमर्थ थे। उन्होंने इसी विचार से कि उनका भतीजा थोड़ी-बहुत शिक्षा ग्रहण कर ले, एस० स्वरूप को अपने किसी यजमान के पास भेज दिया। वे पुरोहितगीरी करते थे और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। लेकिन एस० स्वरूप रास्ते में ही दिल्ली उतर गये और किसी डा० के यहाँ मामूली वेतन पर काम करने लग गये। उसी थोड़े वेतन से वह अपने अध्ययन का खर्चा चलाते और अपना निर्वाह करते रहे। जिस वर्ष डा० स्वरूप ने एम० बी० बी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की उसी वर्ष उनके चाचा जी का भी देहान्त हो गया और फिर संयुक्त परिवार का समस्त भार उनके कन्धों पर आ पड़ा। एस० स्वरूप जो अब डा० स्वरूप हो गये थे, इतने कुशल, होनहार और योग्य सिद्ध हुए कि उन्होंने वह भार ही वहन न किया अपितु अपने चचेरे भाई पी० स्वरूप को भी डाक्टरी पढ़ा कर अपने सहायक के रूप में अपने पास बुला लिया और बाद में परिवार को भी दिल्ली बुला लिया। पी० स्वरूप को बाद में उन्होंने एक सुप्रसिद्ध मैडिकल कॉलेज में प्रोफेसर भी नियुक्त करवा दिया। कालेज में नियुक्त होने पर पी० स्वरूप फिर भी बड़े भाई के क्लिनिक में सहायक के रूप में कार्य करते रहे। डा० स्वरूप प्रो० पी० स्वरूप से अवस्था में काफी बड़े थे और क्योंकि पिता के स्थान पर उनका पोषण, शिक्षा और व्यवस्था, सब डा० एस० स्वरूप की उदार संरक्षकता में हुई थी, प्रो० पी० स्वरूप स्वाभाविक रूप से बड़े भाई का उतना ही आदर करते थे जितना वे अपने पिता का करते। डा० एस० स्वरूप का व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावशाली और गम्भीर था। वह समय-समय पर हास-परिहास में भी सम्मिलित होते थे पर प्रायः देखा गया था कि उपस्थित दूसरे व्यक्ति उनकी बातों से विनोद तो कर लेते थे पर उनका प्रतिवाद नहीं कर पाते थे या यूँ कहिये कि उनके

समक्ष दृढ़तापूर्वक अपने मत का प्रतिपादन करने में अपने को अशक्त पाते थे। इसका कारण डा० साहब के प्रति उनकी गुरुतर भावनाएँ ही होती थीं या ऐसी भावनायें जिनमें डाक्टर साहब को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था। अस्तु प्रो० पी० स्वरूप बड़े भाई से कुछ दब कर ही चलते थे। दोनों भाइयों के परिवारों में आशातीत सहयोग और आदरयुक्त आदान-प्रदान चलता था। डा० एस० स्वरूप यथाशक्ति प्रयत्नशील रहते थे कि पारिवारिक मामलों में गुरुजन होने के नाते चाची की सहमति उन्हें प्राप्त होती रहे और प्रो० पी० स्वरूप भी सतर्क थे कि बड़े भाई और उनके परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति उनकी सेवा-भावना ऐसी बनी रहे जिससे कि दो परिवारों के मध्य विद्यमान पारस्परिक सहयोग और अनुराग में कमी न आने पाये। प्रेरणा डा० एस० स्वरूप की इकलौती बेटी थी और उसी नाते अत्यधिक लाड़-प्यार में उसका पोषण होता आया था। परन्तु लाड़-प्यार में पोषण होने पर भी उसका मानसिक और चारित्रिक विकास डा० एस० स्वरूप की आशा के ठीक अनुकूल होता चला आ रहा था।

प्रेरणा जब अपने चाचा प्रो० स्वरूप के निवास पर पहुँची तो उसके मुख पर क्रोध की भावनाएँ ज्यों की त्यों बनी हुई थीं।

"अरे बिट्टन ! कहाँ से आ रही हो मेरी बच्ची ?" प्रो० पी० स्वरूप की माँ उठ कर बोली।

"दादी ! ज़रा घूम-फिरकर आ रही हूँ।" प्रेरणा बोली।

चाची ने बिजली का पंखा खोल दिया।

प्रेरणा बोली, "चाची ! ज़रा पानी और पिला दो।"

"ख़ैर तो है प्रेरणा देवी ?" संघर्ष बोला।

"आपको ज़रा आपके भाई का परिचय देने आई हूँ, संघर्ष बाबू ! आप कह रहे थे कि आपका वर्मा जी से परिचय है।"

"हाँ, है तो।" उत्सुक हो संघर्ष बोला।

"तो लीजिये" कहते हुये प्रेरणा ने कागज को पर्स से निकाला जिस पर

उसकी कविता लिखी हुई थी । "इसे कल ही के अंक में प्रकाशित कराना है । मैं वर्मा जी को जानती हूँ, पर उन्हें इतना जोर नहीं दे सकती ।"

संघर्ष ने उस कागज पर एक सरसरी निगाह डालते हुये कहा, "प्रेरणा देवी ! मैं कहने को तो कल कह गया कि आपको इस ओर रुचि नहीं रखनी चाहिये, पर इसे पढ़कर तो ऐसा आभास हो रहा है कि मैं एक महान् कवियित्री को साहित्याकाश में पूर्ण रूप से उदित होने में बाधक बन रहा था ।"

प्रेरणा ने एक साँस ली और शान्त होकर बोली, "लेकिन आपके भाई तो कह रहे थे कि इसमें भाव ही नहीं है ।"

"कौन, जीवन ?"

"जी ।"

जीवन का नाम सुनकर चाची प्रेरणा से बोली, "क्या हुआ बेटा ?"

प्रेरणा की ओर से उत्तर देता हुआ संघर्ष बोला, "भाभी ! जीवन का कहना है कि प्रेरणा देवी की कविता में भाव नहीं है ।"

पुनः मुँह पर समस्त घृणा बटोर कर संघर्ष बोला, "मालूम पड़ता है कि चींटी के पर निकल रहे हैं और उसे भी कुछ उड़ने का शौक हो रहा है ।"

"हमारी प्रेरणा को ये बातें कही हैं ?" दादी ने आश्चर्य और सहानुभूति के साथ कहा ।

"हाँ ताई जी, पर इस चींटी को इतना पता नहीं है कि उसके ये निकलते हुये पंख कुछ दिनों में झड़ जायेंगे । वातावरण में हवा होती है । पहली ही उड़ान में वह फड़फड़ा कर गिर जायेंगे । हवा का भार सहने को ये बड़े निर्बल हैं ।"

"देखा बहू ! छोटा घराना इसे ही कहते हैं ।" वृद्धा बोली, "पर बेटा ! तुम उससे बोले ही क्यों ? अपनी इज्जत अपने हाथ ।"

"हाँ बिट्टन ! तुम्हें अपना घर तो देखना चाहिये कि तुम किसकी बेटी हो ? और फिर उसकी इज्जत ही कितनी है ?" चाची बोली ।

"ताई जी ! तुम तो व्यर्थ में ही प्रेरणा को कोस रही हो । आपके यहाँ बर्तन माँजने कहार नहीं आता । यदि मूर्खता से वह कुछ आपको कह दे तो

फिर क्या आप यह कहेंगे कि उसे बर्तन माँजने को बुलाया ही क्यों था ? ज्यादा से ज्यादा उसे छुट्टी दे दोगे।" संघर्ष बोला।

"हाँ, इसमें प्रेरणा की कोई भूल नहीं है, पर बेटा अपने से गिरे हुए लोगों से मेलजोल नहीं रखना चाहिये।"

प्रेरणा मौन हो अपनी कलाई पर बँधी हुई छोटी-सी सुनहरी घड़ी के साथ खेल रही थी और जीवन पर तीन तरफ से दागी जा रही गोलियों की बौछार सुन रही थी। शायद वह यह अनुमान लगाने का प्रयत्न कर रही थी कि यह बौछार कहाँ तक सामयिक है और जिसको निशाना बनाकर यह गालियाँ दागी जा रही थीं, क्या वह वास्तव में इतनी भीषण बौछार का सही रूप में मुस्तहिक़ है ?

संघर्ष को उसने कहते हुये सुना, "भाभी ! कल भी तुमने उसकी बातें नहीं सुनीं। बड़े पैने सींग बनाकर आया था। वह तो बाबा इन्होंने रक्षा की।" प्रेरणा की ओर इशारा कर संघर्ष हँसा।

प्रेरणा को कुछ फीकी हँसी आ गई।

यह सुनकर प्रो० पी० स्वरूप की बहू बोली, "चूहा जब बिल्ली बनता है तब वह फिर शेर बनने की वृत्ति अपना लेता है; ऐसी एक कथा सुन रक्खी है हमने। पर संघर्ष बाबू ! गलती तुम लोगों की ही है। कीचड़ में पत्थर फेंकोगे तो छींटे किस पर पड़ेंगे ?"

प्रेरणा का मन उठने को हुआ। पर्स हाथ में लेकर बोली, "दादी मैं चलती हूँ अब।"

"हैं, क्या कह रही है तू ? अभी तो आई है।" वृद्धा बोली।

"ठहर बेटा ! दूध ले आती हूँ।" चाची चौके की तरफ जाती हुई बोली।

"नहीं चाची ! मैं नहीं पीऊँगी।" प्रेरणा ने आवाज दी।

"चुप रह प्रेरणा। मुझे गुस्सा चढ़ायेगी तू।" वृद्धा ने कृत्रिम क्रोध और प्यार में कहा। प्रेरणा को दादी के आदेश के उल्लंघन करने का साहस नहीं हुआ। उसने दूध पिया और उठ खड़ी हुई।

संघर्ष ने खूंटी पर टँगी बुशर्ट को उठाकर कहा, "तो चलें फिर वर्मा जी से मिलने ?"

"धन्यवाद ! अब रहने दीजिये" कहकर प्रेरणा चलदी ।

४

डाक्टर एस० स्वरूप के चचेरे भाई याने प्रो० पी० स्वरूप के छोटे लड़के का मुण्डन था। बड़े धूम-धाम से तैयारी हो रही थी। निमंत्रण के छपवाने में, उन्हें वितरित करने में और कार्यक्रम निश्चित करने में प्रेरणा और संघर्ष का मुख्य रूप से भाग था। कार्यक्रम में दो चीज़ें विशेष आकर्षण रखती थीं। एक तो कवि-गोष्ठी और दूसरी एक भव्य चाय-पार्टी का आयोजन। कवि-गोष्ठी में संगीत और एक नृत्य का कार्यक्रम भी सम्मिलित था। बाकी सब चीज़ें रस्मी थीं। मुण्डन रविवार को था पर कार्यक्रम की उपरोक्त दोनों बातें शनिवार की रात को रखी गई थीं। रविवार को केवल वही रस्मी कार्यवाही रखी गई थी जिसके उपरान्त ब्राह्मणों को और बिरादरी के लोगों को भोजन पर निमंत्रित किया गया था। कोठी के सामने आँगन में कनात लगाई गई थी और ऊपर से चाँदनी। मण्डप को बिजली से खूब सजाया गया था। मण्डप के अन्दर बड़े-बड़े कालीन बिछे हुए थे और ठीक सामने एक भव्य मंच बना हुआ था जिसमें माइक्रोफोन की व्यवस्था थी।

संध्या के आगमन के साथ ही अतिथियों का आना आरम्भ हो चुका था। मंडप के द्वार पर प्रो० पी० स्वरूप अतिथियों से हाथ मिलाकर उनका स्वागत कर रहे थे और प्रेरणा और संघर्ष उनकी अगवानी कर उन्हें यथोचित स्थानों पर बिठा रहे थे। मण्डप सप्तरंगी विद्युत् के प्रकाश से जगमगा रहा था जिसमें परदे के पीछे से वाद्य-यन्त्रों के मधुर स्वरों का योग वातावरण की

रंगीनी में चार चाँद लगा रहा था। अतिथियों में नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति, कुछ पत्रों के सम्पादक, संसद और विधान सभा के सदस्य, रेडियो कलाकार और कुछ उच्च सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त कालेज की छात्राएँ थीं। गिनती कुल मिलाकर अनुमानतः सौ से अधिक ही थी। कार्यक्रम के शुरू होने के लिये विशिष्ट अतिथि की प्रतीक्षा की जा रही थी, जिनको लेने के लिये स्वयं डा० एस० स्वरूप गये हुए थे। इस दौरान में उपस्थित अतिथियों का आपस में हास-परिहास और परिचय चल रहा था। प्रेरणा अपनी सहेलियों से घुल-मिलकर बातें कर रही थी और बीच-बीच में मंडप के द्वार की ओर भी झाँक लेती थी। उसकी प्रत्येक गतिविधि और भाव-भंगिमाओं को संघर्ष बारीकी से देख रहा था। प्रेरणा उसे भू-लोक की साधारण सुन्दरी न लगकर स्वर्ग की मेनका प्रतीत हो रही थी, जिसकी मंद मराल की सी चाल में यौवन और सौन्दर्य तैरता हुआ लगा। प्रो० पी० स्वरूप संघर्ष का अभ्यागतों से परिचय करा रहे थे। संघर्ष से हाथ मिलाते हुए वर्मा जी बोले, "आपसे शायद पहली बार परिचय हो रहा है ?"

"हाँ, अभी हाल ही में आये हैं। डाक्टर साहब इनसे बड़ी आशायें रखते हैं।" प्रो० स्वरूप ने उत्तर में कहा।

प्रेरणा समीप ही सहेलियों से बातें करती हुई वर्मा जी के साथ चल रही अपने चाचा जी की बातचीत सुन रही थी। उसकी क्रोध से तनी हुई भृकुटियों से यह स्पष्ट झलकता था कि वह, यह जानकर कि संघर्ष का वर्मा जी से कोई पूर्व-परिचय नहीं था, अप्रत्याशित रूप से झुँझला उठी थी। वह वहाँ से हटकर फिर द्वार की ओर बढ़ी जहाँ प्रो० पी० स्वरूप और संघर्ष वर्मा जी से बातें कर रहे थे, पर सामने जीवन को आता देख वह फिर पीछे हटकर सहेलियों में जा मिली। उसने देखा कि जीवन वर्मा जी से हाथ मिलाकर कुछ क्षण वहाँ पर रुका और फिर चारों तरफ दृष्टि फेंकते हुये आगे बढ़ गया। उसने एक सहेली के कान में कुछ कहा और पीछे की तरफ से जाकर मंच के पार्श्व में खड़ी हो गई। उसकी सहेली जीवन को लेजाकर मंच पर बैठा आई जहाँ कुछ कलाकार आसीन थे। अकस्मात् मण्डप के बाहर कार का हॉर्न सुनाई दिया और समस्त उपस्थित व्यक्ति खड़े हो गये। सामने से डा०

स्वरूप की अगवानी में विशिष्ट अतिथि तशरीफ ला रहे थे। उनके आसन ग्रहण करते ही सब अपनेअपने स्थानों पर बैठ गये। डा० एस० स्वरूप ने कोच पर बैठते हुये समस्त मण्डप पर एक सरसरी नज़र फेंकी मानो वह आयोजित व्यवस्था का पर्यवेक्षण कर रहे हों और प्रेरणा को लगा कि वे यह देखकर कि व्यवस्था आशानुकूल उत्तम है, संतुष्ट प्रतीत जान पड़ते थे। फिर प्रेरणा ने देखा कि प्रो० पी० स्वरूप एक व्यक्ति को लिये जीवन के पास आये और जीवन को पीछे बैठने का आग्रह कर, उसे जीवन के स्थान पर बिठा गये। कुछ ही क्षणों में संघर्ष भी आकर उस व्यक्ति के पास बैठ गया। प्रेरणा ने विक्षुब्ध होकर देखा कि जीवन दरवाजे के समीप एक रिक्त स्थान पर बैठ गया था।

वीणा के तार झंकृत हो उठे और उसके बाद माइक में शास्त्रीय संगीत गूँज उठा। रेडियो के एक सुप्रसिद्ध कलाकार ठुमरी का राग अलाप रहे थे। मंडप में सर्वत्र शान्ति थी जो तब उन तालियों की आवाज से भंग हुई जब ठुमरी के आलाप के समाप्त होने पर माइक ने प्रेरणा देवी के नृत्य की घोषणा की। मंच का परदा हटा और तालियों की गड़गड़ाहट में प्रेरणा ने झिल-मिलाते हुये रेशमी परिधान से अलंकृत मंच पर प्रवेश किया। माइक पर तबले के बोल सुनाई देने लगे और उनको लय देते हुये पदचापों की ध्वनि। बोल तीव्र होते गये और उसी के साथ पायलों की झंकार भी। प्रेरणा किसी गन्धर्व कन्या की भाँति विद्युत् की सी स्फूर्ति लिये अद्‌भुत कौशल के साथ 'भारत नाट्यम्' का प्रदर्शन कर रही थी। उसका भृकुटि-विलास, ज्योत्स्ना की छटा लिये मुखमंडल पर भावों का चढ़ाव और उतार, कमर की लोच और सर्वोपरि प्रत्येक अंग का एक साथ पलटा खाना और पाँवों की कलापूर्ण थिरकन दर्शकों को नृत्य-कला के वास्तविक रूप से अवगत करा रहे थे। 'शब्दम्' 'पद्मम' और इसी प्रकार 'तल्लाना' आदि पृथक्-पृथक् रूप से 'भारत नाट्यम्' के प्रत्येक अंश के कलापूर्ण प्रदर्शन पर तालियाँ बजती रहीं। जब नृत्य समाप्त हुआ तो जोर की करतल-ध्वनि के मध्य पसीने से तर प्रेरणा मंच से नीचे उतरी और एक तरफ अपनी सहेलियों में आकर बैठ गई। संघर्ष की मुग्ध दृष्टि ने उसका पीछा किया।

उसके बाद गीत और फिर कविताओं का क्रम आरम्भ हुआ। कवितायें अति सुन्दर थीं और प्रायः इसी अवसर के लिये लिखी गई प्रतीत होती थीं। उनमें वात्सल्य की बाहुल्यता और शुभ कामनायें थीं पर साथ में कहीं-कहीं पर हास्य का पुट भी था। ४-५ कवियों के बाद माइक पर जीवन का नाम बोला गया और जन-समुदाय की दृष्टि पीछे की ओर मुड़ गई जहाँ से उसने सादे लिबास में मुख पर संयत स्थिरता लिये हुए एक तरुण कवि को मंच की ओर अग्रसर होते हुए देखा। संघर्ष के पीले चेहरे पर आश्चर्य नाच रहा था। जीवन मंच पर आया और बोला, "कविता का शीर्षक है 'मना है'। मैं नहीं कह सकता कि आप कहाँ तक सहमत होंगे मेरे विचारों से, यदि मैं यह कहूँ कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज सर्वत्र 'मना ही' लक्ष्य होती है। उठने, बैठने, बोलने, चलने में संघर्ष समक्ष रहता है। सम्भवतः जीवन के उस पार भी 'मना है' के संकेत देखने को मिलें। मेरी कविता में इस 'मनाही' का ही चित्रण आप पायेंगे। लीजिये कविता सुनिये" कहते हुये जीवन की स्वर-लहरी वातावरण में गूँज उठी—

"मैं नदी के तीर प्यासी,
हाय जल पीना मना है।
जल नहीं सकती सदा निमर्म शमाँ,
शलभ धड़कन थाम ले तू बेजुबाँ,
टूटते नभ के सितारे, ये इशारे कर गये,
क्या जमीं, क्या आसमाँ पर सर्वदा जीना मना है।"

जीवन की पलकें बन्द हो गई थीं। स्वर में और अधिक पीड़ा लिए वह कुहुक-सा उठा—

"सिसकियाँ लेते थको तो आह भरना,
आह लेते यदि थको तो मौन रहना,
मैं प्रलय में भी बची ही रह गई,
हाय मेरे ही लिए क्या दैव ! मर जाना मना है ?"

जीवन गा रहा था और श्रोता हृदय-स्पन्दन थामे तल्लीन हो कविता में

गुँथे विचारों के साथ ही नदी की इठलाती हुई लहरों में बह रहे थे, सान्ध्य-बेला की थिरकती हुई चाँदनी में नहा रहे थे। जीवन ने अन्तिम पंक्तियाँ पढ़ीं—

"प्यास धरणी की नहीं अब शेष है,
घन ! नहीं बरसो कि सावन शेष है।
नील अम्बर का उघड़ने दो वदन,
इन फटे से बादलों को, बिजलियो ! सीना मना है।
······हाय जल पीना मना है।"

जोर की करतल-ध्वनि हुई जिसमें दुबारा जीवन से कविता पढ़ने का अनुरोध भी था। डा० स्वरूप ने जीवन की पीठ पर हाथ फेरा और जीवन को एक और कविता पढ़ने को कहा। एक और गीत माइक पर गूँजने लगा—

"मेरे अरमान यहाँ जलते—
परवशता के बन्धन में कस, जग के मानव मुझको छलते।
मिल जाता सुन्दर-सा साथी
जग में, केवल यह आशा थी,
सपने साकार हुए न कभी,
निशि-दिन बीते चलते-चलते। मेरे······।"

जीवन का कवि-हृदय बिलख उठा—

"मुझको है कौन पुकार रहा ?
पीड़ा बन किसका प्यार रहा ?
इस चिन्तन में धीरे-धीरे,
करुणा के क्षण मेरे पलते। मेरे······।"

फिर वही जोर की करतल-ध्वनि हुई और कविताओं का क्रम जारी रखने का आग्रह। पर जीवन अब मंच छोड़ चुका था। उसके बाद भी एक-दो कवि आये पर मानो श्रोताओं को उनकी नीरस कवितायें सुनने में कोई आह्लाद नहीं था। गोष्ठी समाप्त हो गई और अतिथि मण्डल के पार्श्व के प्रांगण में एकत्रित हो गये जहाँ कुर्सियाँ लगी हुई थीं और जिनके आगे मेजों पर नाना प्रकारकी मिठाइयाँ, नमकीन और फल सजाये हुए रखे थे। अतिथि मेजों पर हाथ साफ करते हुए एक के बाद दूसरी चाय की प्यालियाँ उँड़ेलते चले जा रहे

थे। इस क्रिया में उन्हें मेजवानों का भी सहयोग मिल रहा था। केवल प्रेरणा ही ऐसी थी जो शरीक होने की अपेक्षा तमाम कुर्सियों पर उड़ती हुई दृष्टि डाल कर प्रांगण के २-३ चक्कर काट कर क्लान्त मुख लिये एक कोने में आकर खड़ी थी। उसकी सूनी आँखों से निराशा टपक रही थी। जब संघर्ष ने समीप आते हुए उसको अपने साथ चाय-पान में सम्मिलित होने का अनुरोध किया तो वह अरुचि प्रकट कर प्रांगण से बाहर निकल गई।

दूसरे दिन भी जब बिरादरी के समस्त आमन्त्रित व्यक्ति भोज में सम्मिलित हुए तो प्रेरणा ने पाया कि जीवन अनुपस्थित था। संघर्ष आधुनिक वेश-भूषा में एक व्यक्ति से बड़े हाव-भाव दिखा कर बातें कर रहा था। साथ में एक खूबसूरत-सी युवती भी थी जो निस्संकोच बातें करती हुई कभी-कभी इधर-उधर भी झाँक लेती थी। वह व्यक्ति प्रौढ़ अवस्था का प्रतीत हो रहा था और उस सुन्दर लड़की का पिता या श्रेष्ठ जन ही लगता था। प्रेरणा जब उनके समीप से गुज़री तो संघर्ष ने पुकारा, "प्रेरणा ! देखो तो, यह शान्ति देवी है, और आप इनके चाचा, हाल ही में लखनऊ से ट्रान्सफर होकर आये हैं।"

प्रेरणा ने प्रौढ़ अवस्था के व्यक्ति को नमस्कार किया और शान्ति की ओर देखा जो उसको नमस्ते कर रही थी। बोली, "संघर्ष बाबू के मुँह से आपका नाम तो सुना था पर दर्शन करने का सौभाग्य आज ही मिला।"

शान्ति किंचित् मुस्कराई। नम्रता से बोली, "सौभाग्य तो हमारा है बहिन कि तुम्हारे दर्शन हो गये। न मालूम क्यों ऐसा लग रहा है कि तुमसे पहले से ही जान-पहचान हो।"

संघर्ष बोला, "आइए आप, इन्हें बातें कर लेने दीजिये" और कामताप्रसाद जी को इशारा करता हुआ आगे खड़े प्रो० स्वरूप के पास ले गया। प्रेरणा भी शान्ति को एक कमरे में ले आई। बड़ी देर तक वे बातें करती रहीं। बाद में प्रेरणा ने दो थाल वहीं पर मँगवाये और साथ-साथ भोजन किया। शाम को जब शान्ति जाने लगी तो प्रेरणा बोली, "शान्ति बहिन ! कल न आई तो नाराज हो जाऊँगी।"

"तुम्हें नाराज कर मुझे दिल्ली थोड़े ही छोड़नी है।" शान्ति बोली।

प्रेरणा ने शान्ति के गालों पर हल्की-सी चपत लगाते हुये कहा, "दिल्ली न छोड़ेगी पर मैं तो अपने को छोड़ी हुई ही समझूँगी।"

शान्ति ने प्रेरणा को बाहु-पाश में कसते हुये धीरे से कहा, "ऐसी सुन्दर प्रेयसी को छोड़ना आसान नहीं है।"

"बेशर्म" प्रेरणा बोली और दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़ीं।

५

अगले दिन डा० स्वरूप के निवास पर प्रेरणा अपने निजी कमरे में बैठी हुई शान्ति से बातें कर रही थी। लखनऊ और न जाने कहाँ-कहाँ की चर्चायें चल कर उनकी बातें जीवन पर आकर केन्द्रित हो गईं।

शान्ति बोली, "मुझे कल ही यह बात खटक गई थी कि छोटे जीजा जी क्यों कल के निमन्त्रण पर अनुपस्थित थे। यह होना नहीं चाहिये था, प्रेरणा बहिन!"

प्रेरणा की नजरें झुक गईं। उनमें व्यथा और आत्म-ग्लानि थी।

शान्ति बोली, "अभी तक छोटे जीजा जी का जीवन निरन्तर समाज की प्रताड़नाओं से छलनी होता आ रहा है। जब भी वह दो संबन्धियों के साथ बैठे, उन पर अवश्य उँगली उठाई गई। फिर उनकी एकान्त-वृत्ति बढ़ेगी नहीं तो और क्या होगा?"

"शान्ति ! जब उन्होंने कविता समाप्त की तो मैं रो उठी थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि न जाने कब से अपना दुःख पाल रहे थे और कल तो जैसे उन्होंने सारा दुःख बाहर उंड़ेल देना चाहा हो। सुन तो सभी रहे थे पर शायद ही कोई उनके विचारों की तह में गया हो।"

"हाँ प्रेरणा ! बड़े जीजा जी याने इनके बड़े भाई भुवन तो कहते हैं कि बचपन से ही इनके विचारों में बड़ी प्रगाढ़ता रहती है। इनकी स्पष्टवादिता और स्वतंत्र विचारों का उन्होंने हमेशा बड़ा आदर किया पर तुम्हें नहीं पता, इनकी माँ को इनका स्वतंत्र व्यक्तित्व नित्य अखरता रहा।"

"माँ सौतेली है न ?"

"हाँ, बड़े जीजा जी याने भुवन और उनके बड़े भाई एक माँ के हैं और जीवन दूसरी माँ के।"

"लेकिन इन्हें पैतृक सम्पत्ति से कैसे च्युत किया गया ? इसका तो इनकी माँ को अधिकार नहीं था।"

"यह तो बहिन कुछ बाहर वाले भी नमक-मिर्च लगा देते हैं। यह सच है कि भुवन को छोड़ जीवन के प्रति परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार कुछ रूखा और निर्मम ही रहा। पर जो सम्पत्ति वाली बात तुमने कही, वह अक्षरशः झूठ और आधारहीन है। जब गाँव में ही प्राइमरी तक इनकी शिक्षा पूर्ण हो गई तो इनकी माँ ने इनका आगे अध्ययन करने का विरोध किया और चाहा कि ये खेती-बाड़ी का काम देखें। जमीन इनकी काफी है। फिर इनके गाँव चतुरपुर से तीन मील पर इनके पिताजी ने एक और गाँव में जमीन ली हुई है। पत्नी के प्रस्ताव पर इनको उसी गाँव में खेती करने भेज दिया।"

"हाय ! इतनी-सी छोटी अवस्था में खेती का परिश्रम ?"

'हाँ, उस समय इनकी आयु केवल १९ वर्ष की थी। सबसे बड़े भाई और भुवन उस समय लाहौर में अध्ययन करते थे। तुम्हें आश्चर्य होगा कि ये भी बिना किसी की कानों की खबर डाले भगेडुओं की तरह भाग कर लाहौर चले गये। इनके साहस को देखकर सुनने वालों ने दाँतों तले अँगुली रख ली।"

"बड़े भाइयों का पता लग गया था ?" प्रेरणा ने पूछा।

"   क्या, वहाँ जाकर स्कूल में भर्ती होने की हठ कर बैठे। खैर, पढ़ना तो क्या था। घर वाले जीजा जी ने इनको एक फैक्टरी में नियुक्त करवा लिया। दुर्भाग्य को तो देखो, वहाँ एक माह भी पूरा नहीं हुआ था कि इनके साथ एक भीषण घटना घट गई। पर तुम तो जानती हो कि जिसका कोई नहीं होता, उसकी भगवान ही रक्षा करते हैं। इनकी भगवान ने ही रक्षा की। नहीं तो………"

"क्या हुआ था ?"

"मशीन के लपेटे में आ गये थे। पर बजाए रोलरों के बीच पिस जाने के, ये एक झटके के साथ बीस-तीस गज की दूरी पर जा गिरे। पूरे एक माह तक अस्पताल में रहे। भुवन का कहना है कि जब इन्हें अस्पताल से घर लाया गया तो इनकी करुण दशा पर वे टूक-टूक होकर रो उठे। इनकी तो मानो सारी इन्द्रियाँ ही सुन्न हो गई थीं। आँखों में शून्य और मुख पर असीम वेदना थी ; रोते थे पर एकान्त पाकर।"

"गाँव में जब खबर पहुँची तो दुनिया वालों ने इनके परिवार पर छीः-छीः की। और आगे सुनो—जब ये स्वस्थ हो गए तो स्वयं ही अपनी इच्छा से जाकर मिल में दुबारा भर्ती हो गए।"

"तब भी भाइयों ने नहीं रोका क्या ?" प्रेरणा बोली।

"तब रोकने की हिम्मत नहीं थी या यूँ कहो कि अधिकार खो बैठे थे। खैर, आज हम कहते हैं कि इनका स्वभाव कुछ एकान्त-प्रिय है। लेकिन यह सब परिस्थितियों की देन है और इसका प्रारम्भ तभी हुआ जब यह केवल एक दरी और रजाई लेकर दोनों भाइयों से पृथक् रहने लगे थे।"

"ओह ! शान्ति।"

"हाँ जीजी ! सच्ची कहानी बता रही हूँ। उसके बाद दिन में मिल की नौकरी और रात को प्राइवेट अध्ययन। तीन-चार साल तक यही क्रम चलता रहा। घर भी तब गए जब इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उसी साल गाँव वाले जीजा जी की साली का ब्याह था। दोनों भाइयों की तरह ये भी ब्याह में सम्मिलित हुए, पर यदि सम्मिलित न होते तो ही अच्छा था।"

"क्यों ? फिर कुछ ऐसी-वैसी घटना घट गई क्या ?"

"हाँ जीजी, पता नहीं कैसी किस्मत लेकर आए हैं भगवान से। दोनों भाइयों की भाँति गये तो थे दामाद बनकर पर दामाद जैसा सत्कार मिला केवल दो बड़े भाइयों को। इनको तो बरातियों की पत्तलें ही उठानी पड़ीं।"

"क्या सचमुच ?"

"साथ में झरने से पानी की गागरें और अन्य भी कई कार्य जो ब्याह शादियों में होते ही हैं, करने पड़े।"

"पर ये न करते···।"

"करना पड़ता है जीजी और वह भी यथाशक्ति मुँह पर बलात् स्वीकृति या प्रसन्नता के भाव लिए। नहीं तो कल ही क्या मंच से उठाए जाने पर आपत्ति न करते। पर सब चलता है। यही नहीं, गाँव वाली जीजी ने तो उल्टे प्रतिवाद करते हुए यहाँ तक कहा था कि इन्हें पत्तलें कोई पराये घर में थोड़ी ही उठानी पड़ीं, अपना ही तो घर था।"

"आग लगे ऐसे घर को।"

"आग तो पहले ही लग गई थी जब गाँव वाली जीजी के पीछे वंश चलाने को कुछ रहा नहीं। हुए भी थे, पर चल बसे। देख तो, कितनी चोट लगी होगी इनको ? पहले-पहले का जाना था और फिर वह भी शादी के अवसर पर। पर जिसके प्रति घर वालों की सहानुभूति न हो, उसे बाहर वाले क्या समझें ?"

"और क्या ! सहानुभूति ही होती तो वहाँ से सम्बन्ध विच्छेद ही न कर लेते।"

"सम्बन्ध विच्छेद न करते और अपना समझ के रखते, इतना ही बहुत था।"

"भुवन तो कहते हैं कि आमों की फसल पर बेचारों को बीस-तीस सेर वजन की गठरी देकर कभी बड़ी जीजी के पीहर भेजते तो कभी किसी दूसरे गाँव में अन्य सम्बन्धियों के यहाँ, जैसे पुत्र न होकर घर का नौकर हो। आखिर जब इतना वजन उठा लेते थे तो कुछ तो इनको विवेक हो ही गया होगा। क्या इनको चोट नहीं लगती होगी ? पर संघर्ष बाबू कटे हुए पर नमक डालते थे। इनकी खिल्ली उड़ाते थे, उपहास करते थे।"

"आगे चलो शान्ति । मालूम है सब ।"

"जब भुवन का ब्याह हुआ तो वे और छोटे जीजा जी दोनों इण्टर के प्रथम वर्ष में पढ़ते थे । घर वालों ने फूटे मुँह से इतना भी नहीं कहा कि ये भी भुवन के साथ घर आजावें । पर मैंने कहा न कि भुवन तो इन्हें बहुत मानते थे । फिर जिन घटनाओं का मैंने उल्लेख किया उनसे वह इनके प्रति और भी करुण हो उठे थे । बस, उन्होंने हठ बाँध ली कि यदि ये उनके साथ घर नहीं गये तो वह भी ब्याह नहीं करेंगे । छोटे जीजा जी को ब्याह में सम्मिलित होना ही पड़ा । हाँ, इसका बड़े जीजा जी याने भुवन से आश्वासन प्राप्त था कि घर आकर उनके साथ कोई अप्रिय व्यवहार नहीं होगा । पर घर में बिल्ली और म्याऊँ न हो, यह कैसे सम्भव था । जब ब्याह के सम्पन्न होने के बाद दोनों भाई वापिस लाहौर जाने लगे तो माँ ने कुछ जली-कटी सुना ही दी । छोटे जीजा जी का भरता हुआ घाव फिर हरा हो गया । वह कभी न आने की सौगन्ध खाकर चल दिये । तभी यह बात प्रचलित हुई कि इनको पैतृक सम्पत्ति से वंचित किया गया और इन बातों के फैलाने में संघर्ष बाबू जैसे व्यक्तियों का हाथ रहा है जिनका न मालूम इसमें कौन-सा स्वार्थ छिपा हुआ था ।"

शान्ति अब चुप हो गई थी और प्रेरणा भी निरुद्देश्य-सी खिड़की से दिखाई दे रहे नीले आसमान को देख रही थी । मानो सोच रही थी कि इस नीली छत के नीचे भी संसार में क्या कुछ होता चला आ रहा है । कई मिनट बीत गये पर दोनों अपने-अपने विचारों में डूबी रहीं । अन्ततः प्रेरणा को पहले चेतना आई और वह बोली, "शान्ति, तुम बैठना । मैं जरा चाय के लिये कह आऊँ ।"

"मैं चाय-वाय कुछ नहीं पीऊँगी प्रेरणा, रहने दो ।"

"चुप भी रह तू" कह कर प्रेरणा चली गई और थोड़ी देर में स्वयं चाय की ट्रे हाथ में ले लौट कर बोली, "निरन्तर बोलते हुये गला सूख गया होगा। इसके लिये तुम्हें तो धन्यवाद देना चाहिये था ।"

शान्ति ने निस्संकोच बरफी का टुकड़ा मुँह में ठूँसा और बोली, "धन्य-वादों का मुझसे यदि लोभ रखोगी तो रोज आ धमकूँगी ।"

प्रेरणा ने ग़ौर से शान्ति की ओर देखा और कटाक्ष करते हुए बोली, "मैं कृपण नहीं हूँ शान्ति। हाँ यदि कभी तुम्हारी बारी आ गयी तो पछताओगी।" शान्ति ने प्रेरणा की ओर देखा और हँस दी। प्रेरणा भी हँस पड़ी। चाय समाप्त कर शान्ति चपलें पहनती हुई बोली, "प्रेरणा! तू मेरे साथ यू परिहास करती है कि मानो कि तू मेरे जीवन की संगिनी है।" अब शान्ति के नैनों में कटाक्ष था। प्रेरणा ने उसके शब्दों को लक्ष्य किया और बोली, "अब अधिक बोलेगी तो गला घोट दूँगी।"

"गला घोंटने की आवश्यकता ही क्या है। तुम तो मैडीकल की छात्रा हो, कोई विष दे सकती हो।"

"हाँ" प्रेरणा ने अधरों को दाँतों से दबाते हुये कहा, "ऐसा विष मिलेगा कि अन्त तक तड़पती रहेगी और कोसेगी।"

"नहीं प्रेरणा! तुम संकोच न करना। मैंने तो विषपान करना स्वीकार भी कर लिया है। अब तो ये कहो कि भगवान मुझे नीलकण्ठ की क्षमता दे।"

प्रेरणा की आँखें आश्चर्य से चमक उठीं। वह बोली, "लेकिन विष के प्रति तुम्हारा मोह?"

"इसीलिये कि जब विष का अस्तित्व है तो कोई न कोई स्थान तो विषाक्त होगा ही। विवशता चीज को अपनाती है और बाद में उपकार की भावना उसके प्रति लोभ भी उत्पन्न कर देती है।"

"प्रेरणा शान्ति से लिपट कर बोली, "मेरी अच्छी शान्ति! बतादे, तू कौनसी पहेली बुझा रही है?"

शान्ति हँस कर बोली, "पहेली नहीं बूझा रही, उनका उत्तर दे रही हूँ।"

प्रेरणा ने तुनक कर मुँह बनाया और बोली, "उँह, बता भी अब।"

उत्तर में शान्ति ने उसकी ठोड़ी पकड़ी और कहा, "फिर कभी।"

शान्ति के चले जाने के बाद प्रेरणा चित्रलिखित-सी चुपचाप न जाने क्या-क्या सोचती रही?

६

कनौट प्लेस के एक छोटे से रैस्टोराँ में युवकों की एक मण्डली चाय पी रही थी। मुँह से धुँए का गुब्वार छोड़ते हुए वे बातें कर रहे थे। बीच-बीच में होटल का मैनेजर आकर उनमें से किसी के कान में कुछ कह जाता और सबकी उत्सुक दृष्टि उस ओर मुड़ जाती। होटल का मैनेजर फिर जाकर काउन्टर पर बैठ जाता और फिर सबके अधरों पर रहस्यमय मुस्कान थिरक उठती।

"पता तो ठीक बता दिया था न ?" उनमें से एक ने दूसरे को सम्बोधित करते हुये कहा।

"हाँ ! मुझे तो विश्वास है आयेगा अवश्य।"

टेलीफोन की घण्टी बजी और मैनेजर ने दत्त की ओर इशारा कर कहा, "तुम्हारा टेलीफोन है।" दत्त उठकर काउन्टर पर टेलीफोन सुनने चला गया। श्यामलाल बोला, "कोहली की योजना भले ही आकर्षक प्रतीत हो पर वह ठोस नहीं है। आजकल ऐसी ही योजनायें न मालूम कितनी चल रही हैं। और फिर 'इंडो-पाकिस्तान फ्रैन्ड्ज़ एसोसियेशन' स्थापित कर हम कौनसा तीर मार लेंगे। यदि आपका शिष्टमण्डल पाकिस्तान जाता है तो मैं पूछता हूँ कि उसमें आकर्षण ही क्या है ?"

"श्याम बाबू ! पहले कृपया पूरी बातें पूछ लीजिये फिर आलोचना कीजियेगा।" मेहरा बोला।

"किस की आचोचना भई ?" दत्त टेलीफोन सुनकर आया और अपनी कुर्सी पर बैठता हुआ बोला।

"कौन था ?" गांगुली बोला।

"रमन था बदतमीज ! आज शाम के कार्यक्रम के बारे में पूछ रहा था।" दत्त हँस के बोला।"

"हाँ, दत्त ! श्याम को कोहली की योजना समझा दो।" मेहरा बोला।

दत्त हँस पड़ा। श्याम को सम्बोधित करता हुआ बोला, "योजना की सबसे पहली बात है कि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री कुछ राजनैतिक विषयों पर चर्चा करने दिल्ली तशरीफ ला रहे हैं।"

"फिर ?"

"उन्हें नगरपालिका अभिनन्दन पत्र भेंट करेंगी।"

"अच्छा।"

"पाकिस्तान दूतावास पाकिस्तान के प्रधान मंत्री के सम्मान में एक शानदार पार्टी देगा...।"

श्याम उत्तेजित हो उठा। बीच में टोकते हुए बोला, "शायद तुम कुछ छोड़ गये हो। दिल्ली आने के अगले दिन प्रातः वह शायद राजघाट पर श्रद्धांजलि अर्पित करें। उसके बाद शायद वह कार्यक्रम हो जिसका अभी तुमने उल्लेख किया और फिर भारत के प्रधान मंत्री के साथ मंत्रणा की अंतिम दौर, एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर और फिर विलिंगडन हवाई अड्डे पर 'गार्ड आफ ऑनर' का निरीक्षण कर कराची को वापसी उड़ान। यही न ?"

मित्र मण्डली में एक ज़ोर का ठहाका लगा। श्यामलाल उसी उत्तेजना के साथ बोला, "मैं पूछता हूँ, इसमें तुम्हारा ऐसोसियेशन कहाँ चित्र में आता है ?"

"आता है, श्याम !" दत्त बोला।

"श्याम ! मैंने पहले भी तुमसे अनुरोध किया था कि कृपया पहले पूरी बातें सुन लिया करो।" मेहरा बोला।

श्याम कुछ बोलने ही वाला था कि द्वार खुला और संघर्ष प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। श्याम ने लपाक से आगे बढ़ उससे हाथ मिलाया और

मण्डली के सदस्यों का परिचय देता हुआ बोला, "तुम्हारी ही प्रतीक्षा हो रही थी।"

कुर्सी पर बैठते हुये संघर्ष बोला, "यह कह कर तो तुम मुझे अतिशय सम्मान प्रदान कर रहे हो। ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली में लखनऊ जैसी रंगीनी ही नहीं अपितु वही तकल्लुफ़ भी है।"

"तो आप लखनऊ से आ रहे हैं ?" मेहरा ने पूछा।

"आ नहीं रहे, आ चुके हैं। अब तो नगरपालिका में मेरे ही साथ काम करते हैं। सैनीटरी इन्सपैक्टर।" फिर दत्त की ओर इशारा करते हुये बोला, "मिस्टर संघर्ष, ये हैं हमारे नेता।"

दत्त हँस पड़ा और बोला, "मिस्टर संघर्ष ! मुझे तो इन्होंने नेता बताया और मालूम है इन्हें कौन सी पदवी से हमने विभूषित कर रखा है—"चीफ आफ प्रोटोकोल"—यानी शिष्टाचाराध्यक्ष···"

"क्यों बे ? और हम ऐसे ही रह गये ?" मेहरा ने कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुए कहा।

सब हँस पड़े। दत्त बोला, "नहीं, आप हैं हमारी पार्टी के···क्या कहना चाहिये ?...??...???

"प्रचार मंत्री" गांगुली बीच में बोल पड़ा।

"हाँ" दत्त बोला, "दो सदस्य और भी हैं 'पोलिट ब्यूरो' के—एक मिस्टर कोहली जिन्हें हम 'ब्रेन' कहते हैं। हमारी समस्त योजनायें उन्हीं के मस्तिष्क की देन हैं और दूसरा मिस्टर रमन—हमारे राजदूत। दोनों ही महानुभाव अनुपस्थित हैं।"

संघर्ष का खूब विनोद हो रहा था। श्याम की ओर इशारा करते हुए बोला, "शिष्टाचार-अधिकारी महोदय ! तो कृपया मेरे भी प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर दीजियेगा।"

"अवश्य" दत्त ने कहा और मैनेजर की ओर इशारा करते हुए फिर सबसे बोला, "नये सदस्य के सम्मानार्थ कृपया सब शिष्टाचार-प्रकोष्ट में चलें।"

दत्त का संकेत सभी समझते थे। अपनी-अपनी कुर्सियाँ छोड़ वे कमरे में बने हुए 'केबिन' में आकर बैठ गये। जब बैरा कुछ बड़ी-बड़ी प्लेटें, कुछ खाली गिलास

और एक रंगीन बोतल मेज पर रख गया, तब संघर्ष को स्पष्ट हुआ कि शिष्टा-चार-प्रकोष्ट से दत्त का क्या तात्पर्य था।

लगभग दो घंटे अपने नये मित्रों के साथ व्यतीत कर जब संघर्ष रेस्टोरेंट के बाहर निकला तो संध्या हो चुकी थी। वह पैदल कुछ दूर तक चलने लगा जहाँ मोटर रिक्शे खड़े रहते थे कि किसी को उसने बुलाते हुये सुना। संघर्ष ने मुड़कर देखा—कार खड़ी कर प्र रणा उसकी तरफ देख रही थी।

"ओह ! प्रेरणा देवी ?" संघर्ष ने सिर से लेकर पैर तक प्र रणा पर एक भद्दी दृष्टि डाली और बोला, "इन वस्त्रों में तो आप पांचाली को भी मात कर रही हैं। खूब फबती है आप पर ये सलवार···सौन्दर्य पर चार चाँद···"

"संघर्ष बाबू !" प्रेरणा ने क्रोधित हो उसे टोका।

संघर्ष उसे पूर्ववत् देख रहा था। उसकी आँखें लाल और चढ़ी हुई थीं। पैर लड़खड़ा रहे थे। प्रेरणा का मुँह असीम घृणा से सिकुड़ गया और उसने तेजी से बैठकर कार स्टार्ट कर दी। 'जागरण' के कार्यालय के सामने आकर उसकी कार रुकी। वह चटपट सीढ़ियाँ चढ़ती हुई जीवन के कमरे में प्रवेश करती हुई बोली, "जीवन बाबू ! मैं इस समय बिना आज्ञा के प्रवेश कर रही हूँ। इससे आपको आश्चर्य तो होगा ही, ऐसा मेरा अनुमान है। बताइये क्या सही है ?"

प्रेरणा को सामने खड़ी और फिर इस तरह बातें करते देख जीवन बड़ा अचम्भित हुआ। इससे पूर्व कि वह कुछ कहे, प्रेरणा ने उसके समीप की कुर्सी पर बैठते हुए एक और व्यंग कसा, "सोच रहे होगे कि शायद उस दिन के अपने कटु व्यवहार के प्रति कुछ क्षमा-याचना करने आई होगी ?"

"क्यों, मैं ऐसा क्यों सोचने लगा ?" टूटे हुए स्वरों में विस्मय लेकर जीवन बोला।

"बस तो ठीक है। मैं यही चाहती थी कि लेखकों की भाँति झूठी कल्पना कर कहीं तुम भी कोई महान् भूल न कर बैठो।" प्रेरणा के मुँह पर शरारत थी जीवन ने सुना पर कुछ समझा नहीं। प्रेरणा आगे बोली, "मैं तो आपको यह शुभ समाचार सुनाने आई थी कि पिताजी ने आपके भाई साहब को अपने

विभाग में सैनेटरी इन्सपैक्टर नियुक्त कर लिया है। अभी तीन-चार दिन ही हुए हैं उन्हें अपना कार्य सँभाले।"

जीवन अब विभ्रान्त हो प्रेरणा की ओर देख रहा था और प्रेरणा मन ही मन खूब हँस रही थी। जीवन की मनोदशा को ताड़ते हुए वह बोली, "पर आप तो कवि हैं, शायद किसी से कुछ विशेष रुचि नहीं रखते ?"

अब जीवन बौखला गया था। प्रेरणा को और अधिक बोलने की स्वतन्त्रता न देकर उसने कहा, "प्रेरणा देवी ! यह सब आप क्या कह रही हैं, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। संघर्ष की नियुक्ति का समाचार आपने सुनाया उससे मुझे प्रसन्नता ही हुई पर यदि आपने इसी समाचार को सुनाने के लिये इतना कष्ट किया तो यह मेरे लिये आश्चर्य की ही बात है।"

"आश्चर्य ! यह क्यों जी ?"

"इसलिये कि आपके मन में मेरे सम्बन्ध में न मालूम क्या-क्या धारणायें हैं जो मैं सर्वथा मौन और शान्त रहकर भी आपको इस सीमा तक सक्रिय प्रतीत होता हूँ; न केवल विचारों से, अपितु सम्भवत: कार्यों से भी। अन्यथा अपने व्यवहार में यथाशक्ति सरल होने पर भी मुझे आपके पैने व्यंगों का सामना न करना पड़ता और न बिना आधार के आपके क्रोध का भाजन बनना पड़ता।"

"तो मेरे उस दिन के वर्ताव पर आपको दुःख हुआ है क्या ?"

"स्वाभाविक है, क्योंकि मुझे आपके रुष्ट होकर जाने का ढूँढ कर भी कोई कारण नहीं मिला। और आज भी मैं नहीं जानता कि आपको ऐसी बातें करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है कि जिन्हें सुना कर आप मुझे केवल पागल बना सकती हैं या दीन समझ कर मेरे उपहास द्वारा अपनी दो-एक और विनोद की घड़ियों में वृद्धि कर सकती हैं।"

प्रेरणा चुप थी। गहन पश्चाताप आँसू बनकर उसकी आँखों में तैरने लगा था।

जीवन बोला, "प्रेरणा देवी ! आपके निष्ठावान स्वभाव से परिचित होकर भी आज मैंने भावुकता में बह कर आपको वह कुछ सुना दिया जिस पर अब मुझे पश्चाताप हो रहा है।"

प्रेरणा की गर्दन नीचे को झुकी हुई थी। जीवन ने देखा, उसके बड़े-बड़े

लोचनों से टप-टप मोती झड़ रहे थे। यह देखकर वह और भी अचम्भित और अवाक् हो उठा। चट्टान के बाह्य आवरण में छिपी किलोलें करती हुई झील से मानो करुण-स्रोत फूट पड़ा था। न मालूम धरती का कौनसा वीरान प्रदेश लहलहाने जा रहा था। जीवन की भावुकता मचल उठी। एक सुन्दर प्रतिमा उसके समक्ष अश्रु प्रवाह कर रही थी। मानो भाव और वस्तु दोनों के संयोग से एकाकार सौन्दर्य सोलह कलाओं से पूर्ण होकर चमक उठा हो।

जीवन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चला और प्रेरणा ने अपने मन को हल्का पाया; ठीक उन बादलों के समान जो घोर वृष्टि करने के उपरान्त कपास के फोहों की तरह आकाश में तैरते रहते हैं। प्रेरणा ने गर्दन उठाकर जीवन की ओर देखा और संयत होकर बोली, "मालूम पड़ता है उस दिन की धृष्टता ने मुझे चाय से भी वंचित कर दिया है।" जीवन विचारों में डूबा हुआ पैंसिल से मेज पर रेखायें खींच रहा था। चेतन हो प्रेरणा की ओर मुड़ा और उसकी दृष्टि से पछाड़ खाकर पुनः मेज पर गर्दन झुकाकर मुस्कराने लग गया। फिर चपरासी को बुलाकर उसने चाय मँगाई और उसी तरह पैंसिल के साथ खेलता हुआ बोला, "प्रेरणा! तुम मुझे एक पहेली प्रतीत हो रही हो। कहाँ तो मैं सशंकित था कि अनावश्यक ही समुद्र के ज्वार का साक्षात न हो जाय और कहाँ अब मैं इसके विपरीत कुछ और ही स्निग्ध शीतल-सी अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ, अथवा लगता है कि मैं सरिता के तटवर्ती मन्द-शीतल बयारों में खो रहा हूँ।"

प्रेरणा ने दाँतों में उँगली देते हुये कहा, "लेकिन कवि को ठण्डी बयारों तक ही न सोचकर लहरों तक पहुँचना चाहिये, जो सरिता के यौवन में आने पर तटवर्ती सभी वस्तुओं को लपेटे में ले लेती हैं। उनमें भी तो निनाद होता है।"

"ओह! तुम सरिता की उस स्थिति का दृश्य चित्रित कर रही हो जब वह प्रकोप पर होती है किन्तु मैं उसके शान्त रूप का उपासक हूँ और इसी शान्त रूप में नित्य उसे बहते देखना पसन्द करूँगा।"

"और यदि वह प्रकोप पर आ जाय तो क्या तटवर्ती वस्तुएँ तट छोड़ देंगी?"

"सरिता मधुर भावनाओं की प्रेरक है, उसका स्वभाव शान्त ही होना चाहिये।"

"होना चाहिये, पर प्रत्यक्ष में हम उसे कभी-कभी ऐसा नहीं देखते। सरिता प्रकृति के प्रभाव से मुक्त नहीं है—उसके जीवन में भी तूफान है, संकोच है।"

जीवन हँस पड़ा और बोला, "प्रेरणा! तुम्हारा तर्क बुद्धि को कस कर रख देता है। न मालूम यह जो छोटी-सी ज़िन्दगी लेकर हम आये हैं उसकी तुम क्या परिभाषा करोगी?"

"सुनना चाहोगे?" प्रेरणा बोली।

"हाँ, सुनने का लोभ है तभी तो पूछ रहा हूँ।"

"मानव-जीवन का मूल लक्ष्य शान्ति है पर शान्ति जीवन-व्यापार के अनियमित संघर्ष से कुछ इस कदर अप्राप्य हो जाती है कि मानव विशृंखल होकर लक्ष्य-प्राप्ति में लक्ष्य को भूल, उस वस्तु या प्रेरणा से मोह बढ़ा लेता है जिससे व्यावहारिक जीवन में उसे सहायता मिलती रहती है। और यह मोह इतना बढ़ जाता है कि जीवन मूल लक्ष्य यानी शान्ति को पूर्ण रूप से भूलकर सहायक वस्तु यानी प्रेरणा से सम्बद्ध हो जाता है। यही इसकी रूप-रेखा या परिभाषा है, जैसा भी ठीक समझो।"

जीवन खिलखिलाकर हँस पड़ा और प्रेरणा भी मुँह पर थोड़ा आँचल डालकर हँस दी। अपने इस कथन की सत्यता पर उसे विश्वास था पर साथ ही उसे कुछ ऐसा भी अनुभव हुआ कि उसमें मनोरंजन का पुट भी था।

चाय आई। प्रेरणा ने प्यालियों में चाय उँड़ेल दूध, चीनी मिलाई और एक प्याली जीवन के समक्ष रख दी। जीवन उसकी तत्परता को देख रहा था। प्रेरणा की नज़र मिली तो वह फिर हँस पड़ा।

"हे भगवान! मैं यह सब क्या देख रहा हूँ?" उसके गद्गद् कण्ठ से निकला। प्रेरणा ने जीवन के इस अप्रत्याशित आनन्द की अनुभूति को लक्ष्य किया और उसकी आँखों में अनुराग दीप्त हो उठा।

"एक प्याली ही से कवि के अन्दर की बुलबुल चहकने लगी मालूम होती है।" प्रेरणा ने होंट काटते हुए कहा।

"नहीं प्रेरणा । प्याली से नहीं, पिलाने वाली से भी नहीं; अपितु उस भावना से जिससे पिलाया जा रहा है। विश्वास करो आज तक मुझे कभी किसी ने ऐसी चाय नहीं पिलाई ।"

"अच्छा ये समोसे भी लो। ज्यादा बहकने से कोई थोड़े ही तुम्हें कवि कह लेगा ।"

जीवन ने समोसा मुँह में डालते हुए कहा, "मैंने कवि बनने का स्वाँग कभी नहीं किया, प्रेरणा ! अभाव ने मुझे कवि बना दिया । इन प्यालियों से शायद मैं कवि न रहूँ ।"

"फिर आ गए आप इकतरफा ।"

"यह सत्य है ।"

"लेकिन यह कमी भी है ।"

"तो तुम्हारा मतलब यह है कि इस कमी को पूरा करने के लिए स्वाँग किया जाए ताकि उसका रूप सर्वांगिक हो सके ?"

"हाँ, क्योंकि यह आवश्यक है । आज के समाज में अपना जीवन सर्वांगिक बनाने के लिए राजनीतिज्ञ अपने को जनता का सेवक कहता है पर वास्तव में वह जनता का सेवक नहीं, सेवा-भोगी है । जब स्वाँग ही सर्वत्र है फिर आप ही क्यों अपने को उससे मुक्त रखना चाहते हैं ?"

"क्योंकि यह आदर्श नहीं है ।"

"आदर्श को समझना चाहिये । उसे समझने की अपने अन्दर क्षमता भी रखनी चाहिये । पर व्यवहार में उतनी ही मात्रा में उसका प्रयोग करना चाहिये जितनी कि आवश्यकता हो, नहीं तो जानते हो उसे दुनिया क्या कहती है ?"

"क्या कहती है ?"

"कोरा आदर्श ।"

जीवन हँसा । बोला, "आखिर आज तुमने क्या निश्चय कर रखा है जो मुझे कसती ही जा रही हो ?"

प्रेरणा भी हँस पड़ी । जीवन के शब्दों में छिपे अपनत्व से वह रोमांचित और गद्गद् हो उठी । प्रेरणा ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा और

उठते हुए बोली, "जीवन बाबू ! वास्तव में मैं क्षमा-याचना करने आई थी। आपने क्षमा कर मुझे बड़ी शान्ति पहुँचाई है। इसके लिये मैं कृतज्ञ रहूँगी।"

जीवन उठते हुए फिर हँसा और बोला, "प्रेरणा ! अधिक न चढ़ाओ। यदि बहुत ऊपर उठ गया तो चक्कर आ जायेगा और फिर धरती पर आ गिरूँगा।"

प्रेरणा चुप रही, फिर बोली, "मुझे ध्यान न रहा। शान्ति के चाचा जी यहाँ ट्रान्सफर होकर आ गये हैं। आपको शायद पता भी नहीं होगा।"

"यहाँ ?"

"हाँ, यदि आप मिलना चाहो तो मैं छोड़ आऊँ। मुझे तो वहाँ रुकने का समय नहीं है।"

जीवन ने कागज समेटे और प्रेरणा के साथ नीचे उतर आया।

राउज एमीन्यू पर आकर प्रेरणा ने जीवन को उतारा और सामने क्वार्टर की ओर संकेत कर शान्ति का पता बता कर चल पड़ी।

जीवन ने हाथ हिला कर प्रेरणा से विदा ली और क्वार्टर पर पहुँच कर कुण्डी खटखटाई।

शान्ति की चाची ने द्वार खोला और जीवन को देख बड़ी प्रसन्न हुई। जीवन ने चरण छूकर उचित शिष्टाचार के अनन्तर कामताप्रसाद जी और शान्ति के सम्बन्ध में पूछा। शान्ति तो शीघ्र ही सामने आ गई किन्तु कामता प्रसाद जी अभी घर नहीं लौटे थे। शान्ति ने जीवन की ओर स्निग्ध दृष्टि से देखकर सलज्ज किन्तु कुटिल मुस्कान में अभिवादन किया।

"चाची ! देखा दिल्ली वाले को ? आज आये हैं मिलने।"

जीवन बोला, "चाची, आता कैसे ? अभी मालूम हुआ है। सीधे चला आ रहा हूँ सुनकर। सुना है कि चाचा जी और शान्ति प्रो० स्वरूप के निमंत्रण पर गये थे। यदि उस दिन वहाँ होता तो ये शिकायत का मौका न मिलता।"

शान्ति ने जीवन को बैठक वाले कमरे में बिठाया और चाय आदि लेकर उपस्थित हुई।

जीवन बोला, "शान्ति ! मुझे अपने देश की संस्कृति बड़ी प्यारी और श्रेष्ठ लगती है, पर किसी समय ऐसा अनुभव करता हूँ कि उसके अनुसरण

करने में लम्बे फेरे मारने पड़ते हैं। तुम्हीं बताओ, यह चाय पिलाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"छोटे जीजा जी ! चाय ने तो हमारे शिष्टाचार में कुछ ही वर्षों से स्थान पाया है। क्योंकि इस महँगाई के समय इससे सस्ते भाव शिष्टाचार सम्पन्न हो जाता है, इसलिये इसकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता।"

"लेकिन मेरी चिढ़ तो इस समय इस व्यर्थ के शिष्टाचार से ही है, चाय से नहीं।"

इतने में शान्ति की चाची भी कमरे में आ गई थी। शान्ति को उत्तर देने का मौका न देते हुई बोली, "बेटा, भोजन बन रहा है, चले न जाना। यही कहने चौके से उठ कर आई हूँ।"

जीवन ने मुँह फुलाया। बोला, "बस चाची, इसी बात से डर लगता है; मिलने आओ तो दस झंझट।"

"मैं कुछ नहीं सुनने की। शान्ति, मत जाने देना इन्हें" कहकर चाची फिर चौके में चली गई।

शान्ति बोली, "छोटे जीजा जी ! बचकर चलने का स्वभाव अभी तक आपने बना ही रखा है। न मालूम क्यों, जिसे दुनिया छोड़ना चाहती है उसके प्रति आपका आकर्षण बना ही रहता है ?"

"कहाँ है शान्ति ? अगर बचता तो चुम्बक की भाँति तुम्हारे पास खिचा न चला आता।"

"रहने भी दो। खूब समझती हूँ तुम्हारे छल को। मोह तो भगवान ने आपको दिया ही नहीं है। जान-पहचान के हैं, इसीलिये कभी रास्ता देख लिया इधर का। सच बताओ, अपना समझ के कभी तुम आतुर भी हुए हमें मिलने के लिये।"

जीवन ने शान्ति की ओर देखा। बोला, "शान्ति ! ये कैसी बात है कि दुनिया के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते-चलते जब मैं थक कर किसी पेड़ की शीतल छाँह का आश्रय लेता हूँ तो उसकी डाल और पत्तियाँ भी सुरसुरी आवाज फिर मेरे प्रति सन्देह व्यक्त करती हैं ? बताओ, यह कहाँ तक उचित है ?"

शान्ति झेंप गई। किंचित विह्वल हो बोली, "दिल छोटा न करो छोटे जीजा जी! इस सुरसुरी आवाज़ में सन्देह नहीं आमंत्रण होता है और साथ में चुहुलबाजी, जिससे तुम्हारा मनोरंजन हो सके—न कि ठेस पहुँचे।"

जीवन ने गद्‌गद् होकर कहा, "शान्ति! तुमसे परिचय होने पर मेरी आँखों के सामने दुनिया का बहुत-सा कुरूप लुप्त हो चुका है। तुम्हें समक्ष पाकर दुनिया के समस्त सुन्दर पदार्थ, सारी मधुर भावनायें सामने आ जाती हैं। न मालूम कितना बड़ा मधु-भण्डार संचय कर रखा है तुमने।"

शान्ति पुलकित हो उठी। फिर गम्भीर हो बोली, "पर छोटे जीजा जी! इस मधु-भण्डार में से तुम्हें एक भी बूँद नहीं मिलेगी; शायद यह सुनकर तुम्हें दुःख हो।"

"नहीं मिलेगी? पर यह जो घोलकर पिला रही हो, क्या यह मधु नहीं है?"

"यह मधु की सी मिठास, सम्भव है, अभी आपको लगती हो; किन्तु यह एकरस रहेगी ही, यह संदिग्ध ही समझिये।"

"आश्चर्य है शान्ति कि तुम क्या कह रही हो? भला मधु और फिर उस में मिठास न रहे।"

"कैसे समझाऊँ छोटे जीजा जी कि यह भी सम्भव है। नाग-मणि में भी तो ज्योति होती है पर यह तुम कैसे कह सकते हो कि उसकी ज्योत्स्ना तुम्हें भी उपलब्ध हो। किसी वस्तु का अस्तित्व तभी तक समझना चाहिये जब तक उसकी उपयोगिता हो।"

जीवन ने फिर बेचैनी अनुभव की। बोला, "शान्ति! आज के दिन मेरे भाग्य में पहेलियाँ सुलझाना ही रहा। कुछ देर पूर्व प्रेरणा ने भी मुझे चाँद-सितारे दिखाये। अब यहाँ आकर तुम्हारी दार्शनिक बातें न जाने कहाँ का संकेत कर रही हैं?"

"प्रेरणा आप से मिली थी?"

"हाँ, बहुत भावुक होकर आई थी। उसी से तो तुम्हारे दिल्ली आने की खबर सुनी।"

"ये भी अच्छा हुआ, छोटे जीजा जी! मालूम पड़ता है जिस बात को सुनाने

के लिए मैं उपयुक्त अवसर की खोज में थी, उसकी पृष्ठ-भूमिका स्वयं बन गयी है।"

"ओह, शान्ति !" जीवन अचानक चौंक उठा।

"क्या ?" शान्ति के नेत्रों में भी चमक थी।

"कुछ नहीं। अब जो तुम आगे कहने जा रही हो, उसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। लेकिन विश्वास करो कि वह तुम नहीं, तुम्हारा स्त्री-स्वभाव बोलेगा।"

शान्ति हँस पड़ी, "नहीं छोटे जीजा जी, मैं ही बोलूँगी। आपको क्या खटका हुआ, ये भी मैं समझ गई हूँ। स्त्रियों के स्वभाव को लांछित न करो। मेरा तुम्हारे प्रति अनुराग अवश्य है, पर उसमें ऐसी दूषित भावनायें नहीं हैं जिनसे तुम डर गये। तुम्हारे प्रति प्रेरणा देवी की आत्मीयता से कट कर ईर्ष्यावश मैं तुम्हें कोई उल्हाना देने का अवसर नहीं ढूँढ रही थी।"

"फिर ?"

"केवल यही सोचती थी कि मैं कुछ कहूँ, उससे पूर्व तुम्हें प्रेरणा देवी का सहारा मिल जाय।"

"अभी तक मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

"समझ लो कि यदि आपको यह पता चल जाय कि संघर्ष बाबू मेरे मँगेतर हैं तो फिर क्या आप अपने को मरुस्थल के उस प्यासे मृग के समान ही अनुभव न करते जिसे सौभाग्य से कहीं कोई बावड़ी दिखाई देती है, पर जिसके तट पर बन्दूक लिये शिकारी बैठा रहता है। मैंने जान-बूझ कर अपने इस सशस्त्र पहरेदार का तुम्हें कभी कोई संकेत न देना चाहा और अब इसका रहस्योद्घाटन इसलिये कर रही हूँ कि प्रेरणा देवी के रूप में मुझे एक विशाल जलाशय मिल गया है, जो मैं समझती हूँ, मेरे मृग को नित्य तृप्त रखेगा ताकि मृग को बावड़ी का अभाव न अखरे।"

"शान्ति !"

"हाँ, छोटे जीजा जी ! संघर्ष बाबू के साथ मेरी बातचीत तभी पक्की हो चुकी थी जब संघर्ष बाबू अभी लखनऊ भी नहीं आये थे। उन्हें लखनऊ बुलाकर व्यवस्थित करने में केवल इसी भावी सम्बन्ध की सिफारिश थी।"

"लेकिन शान्ति······ !"

"हाँ, छोटे जीजा जी ! मैं जानती हूँ, संघर्ष बाबू और उसके घर वालों को अपने वचन की मर्यादा का आज ध्यान नहीं रहा। चाचा जी ने प्रस्ताव किया था कि संघर्ष की नियुक्ति के पश्चात् विवाह करने में उन्हें प्रसन्नता होगी, पर संघर्ष के पिता जी विवाह को टालते जा रहे हैं। शायद प्रोफेसर स्वरूप के परामर्श पर। पर इतना ध्रुव सत्य समझो कि जिस मृग-मरीचिका में ये हैं, उसमें इन्हें निराश ही होना पड़ेगा।"

"शान्ति !"

"तुम्हें आश्चर्य हो रहा है छोटे जीजा जी, ये मैं जानती हूँ। पर यह भी न समझना कि संघर्ष बाबू के प्रति मेरी भावनायें कुछ नीचे आ गई हों। मैं उनकी आदतों से दुःखी हूँ। उनके इस आंतरिक कुरूप पर परदा भी नहीं डालना चाहती, क्योंकि परदे के पीछे बुराइयाँ पनप उठती हैं। इसीलिये उनकी आलोचनायें भी करती हूँ पर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। उनके गलत पग उठाने पर मैं उन्हें तो नहीं रोक सकती क्योंकि निर्बल हूँ, पर जहाँ वह बढ़ना चाहते हैं, वहाँ उनसे पहले पहुँच कर उनके आकर्षण को ही समाप्त कर देती हूँ ताकि उनकी लिप्साओं पर नियन्त्रण रह सके। प्रत्यक्ष में उनकी विरोधिनी होकर इस प्रकार परोक्ष में उनकी हितैषिणी हूँ।"

"लेकिन संघर्ष की मृग-मरीचिका कैसी ?"

"जान-बूझकर भोले न बनो छोटे जीजा जी। वह प्रेरणा देवी से आकृष्ट हैं, पर यकीन करो कि प्रेरणा देवी का व्यक्तित्व इतना ऊँचा है कि संघर्ष बाबू उससे पछाड़ खाकर वापस आ जायेंगे।"

"व्यक्तियों की टक्कर में क्या संघर्ष मात खायेगा, शान्ति ! क्यों संघर्ष को समझने का दावा करती हो ?"

"छोटे जीजा जी ! प्रेरणा एक सम्पन्न घराने की लड़की है। टीम-टाम में संघर्ष उसकी प्रतियोगिता नहीं कर सकते। उसको परास्त करने के लिये वैभव नहीं, विवेक और सचाई चाहिये। संघर्ष तो शठ हैं, जो इसी टीम-टाम

को अपना एक मात्र हथियार समझते आये हैं और जो प्रेरणा पर अब यदि इसी का वार करें तो वह अपने को ऐसा परास्त अनुभव करेंगे कि उनके स्वभाव में ही कायरता आ जायेगी।"

बातें चल ही रही थीं कि शान्ति की चाची की आवाज सुनाई दी। शान्ति और जीवन दोनों चौके में चले गये।

७

संघर्ष के पिता दिल्ली आये हुए थे। प्रोफेसर स्वरूप ने उन्हें लिखा था कि यद्यपि संघर्ष के साथ अपनी लड़की का सम्बन्ध तय करने में उनके भाई डाक्टर स्वरूप को कोई आपत्ति नहीं थी तो भी शिष्टाचार के अनुकूल यही था कि वह स्वयं आकर बात कर जायें।

प्रो० स्वरूप के पत्र से संघर्ष के पिता को यह भी मालूम हुआ था कि यद्यपि डा० स्वरूप ने इस सम्बन्ध को तय करने में अभी कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई थी, पर उनकी गृहिणी संघर्ष से सोलह आने सन्तुष्ट प्रतीत होती थी। इसका स्पष्ट प्रमाण यही था कि प्रो० स्वरूप की माँ के कहने पर उन्होंने अपने पति डा० स्वरूप से संघर्ष को नगरपालिका में सैनीटरी इन्सपेक्टर नियुक्त करवा दिया था। प्रत्यक्ष में यद्यपि संघर्ष के पिता अपनी दुकान के लिये कपड़ा और दूसरा सौदा सामान क्रय करने आये थे, पर वास्तव में उनके

आने का कारण संघर्ष का रिश्ता तय करना ही था। इधर दिल्ली आने पर प्रो० स्वरूप ने कुछ और ही राय प्रकट की। प्रो० स्वरूप का कहना था कि इस समय बातचीत करने का उपयुक्त अवसर नहीं था क्योंकि उन्हें शंका थी कि दूध की धार छोड़ने को अभी गाय को और चारे की आवश्यकता थी या यूँ कहिये कि शिकार को जाल में फँसाने के लिये कुछ दानों की और आवश्यकता थी। प्रो० स्वरूप ने आशा व्यक्त की कि संघर्ष जैसे वाक्‌पटु, व्यवहार-कुशल और चतुर व्यक्ति के लिये मात्र एक और प्यादे की चाल शेष थी, बस फिर मात निश्चित थी।

प्रो० पी० स्वरूप ने यह भी बताया कि जब तक डाक्टर साहब पूर्ण निश्चय नहीं कर पाते, तब तक ऐसी चर्चाओं का दौर उनकी माता जी के मध्य ही होना चाहिए। अन्यथा कामता प्रसाद जी की ओर से भी कुछ बाधा पड़ने की सम्भावनाएँ थीं। अतः प्रो० साहब की राय से सहमत होकर संघर्ष के पिता ने डा० स्वरूप से केवल औपचारिक भेंट की। डा० स्वरूप के यहाँ जो स्वागत और सत्कार उनका हुआ, उससे भी उन्हें प्रो० स्वरूप के कथन की सच्चाई का अनुमान हुआ। उन्हें भोजन पर निमंत्रित किया गया था। साथ में प्रोफेसर स्वरूप और संघर्ष भी थे। भोजन केउपरान्त जब संघर्ष के पिता के सम्मान में सब बैठक के कमरे में एकत्रित हुए तो संघर्ष के पिता ने पूछा कि उन्हें प्रेरणा नहीं दिखाई दी।

डा० स्वरूप की पत्नी ने थोड़ा सिर पर साड़ी का पल्ला किया और हँस कर बोली, "वह भी तो अब बच्ची नहीं रही। आप लोगों के आने से पहले ही कहीं खिसक गई होगी। सब समझती है।"

श्रीमती स्वरूप का अभिप्राय सब समझ गये थे। उनके चेहरों पर प्रफुल्लता के भाव उभर गये थे। केवल संघर्ष ने कुछ कृत्रिम लज्जा अभिनीत की और डा० स्वरूप भी कुछ संकुचित से जान पड़े।

संघर्ष के पिता बोले, "भला मुझ से किस बात की लज्जा थी? मैं तो पिता के समान था।"

डा० स्वरूप हँसे और अपनी पत्नी की ओर इशारा करते हुए बोले, "यह

तो इनकी केवल कल्पना है। प्रेरणा लज्जा करती या हमें ही बोलने का मौका न देती, ये तो उसके उपस्थित होने पर ही पता चलता।"

प्रो० स्वरूप ने डाक्टर साहब का मनोभाव ताड़ लिया और उन्हें यही श्रेयस्कर लगा कि बातों का रुख बदला जाय। संघर्ष के पिता को सम्बोधित करते हुये बोले, "हमारी प्रेरणा बड़ी आधुनिक विचारों की लड़की है और अभी तो उसका ध्यान केवल चित्रकारी, लेख लिखने और अपने कालेज की ही सरगर्मियों में लगा रहता है। घर पर वह होती ही कब है?"

"यह बड़ी अच्छी बात है। बाहर रहने से दिमाग खुलता है। इस हमारे संघर्ष की भी तो बचपन ही से यही आदत रही।" संघर्ष के पिता बोले।

डा० स्वरूप ने संघर्ष की ओर देखा और बोले, "हाँ, चुस्त तो मालूम पड़ता है संघर्ष।"

प्रो० स्वरूप बोले, "दिल्ली में पीछे आया है, पर न मालूम किन-किन संस्थाओं का मंत्री और प्रधान बना हुआ है।"

"क्या सच है संघर्ष?" डा० स्वरूप बोले।

"जी" कृत्रिम हँसी में संघर्ष बोला, "ऐसे ही कुछ मित्रों का अनुरोध टालना कठिन हो जाता है। एक 'यूथ लीग' है। बहुत टालता गया पर आखिर उसके प्रधान का कार्य-भार लेना ही पड़ा। अब क्योंकि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री भारत आ रहे हैं तो 'इण्डो-पाकिस्तान फ्रैण्ड्ज़ ऐसोसियेशन' की गति-विधियाँ भी जोर पकड़ रही हैं। इसका भी मंत्री बनना पड़ा।"

"क्या लक्ष्य लेकर चली हैं ये संस्थायें?" डा० स्वरूप बोले।

"जी···! मैं तो हाल ही में सम्मिलित हुआ हूँ पर क्योंकि कार्य-भार सँभालना पड़ रहा है, इसलिये थोड़ा-बहुत उनके कार्यक्रम पर प्रकाश डाल सकता हूँ। आपके सामने तो ये सब धृष्टता होगी।"

"नहीं-नहीं, कहो।"

"बात यह है कि आज समय इतना आगे बढ़ गया है कि अब एक नगर या प्रान्त के रूप में सोचना बहुत कठिन हो गया है। या यूँ कहिए कि इतने

संकीर्ण दृष्टिकोण लेकर हम अब समय के साथ पग पर पग मिलाकर नहीं चल सकते। अब तो इतने प्रगतिशील दृष्टिकोण की आवश्यकता है कि राष्ट्र से भी ऊपर उठकर हमें विश्व-बन्धुत्व की भावानायें अपनानी आवश्यक हो गई हैं।'

"ठीक है।" डा० स्वरूप बोले।

"यूथ लीग अधिकाधिक राष्ट्रों के विचारशील युवकों का संगठन कर उनमें सहयोग और भ्रातृत्व उत्पन्न करने का लक्ष्य लेकर चली है। इसी प्रकार दो पड़ोसी देशों में व्याप्त मलोमालिन्य को कम कर पारस्परिक सौहार्द बढ़ाने के उद्देश्य को लेकर 'इण्डो-पाकिस्तान फ्रैण्ड्ज़ ऐसोसियेशन' की स्थापना हुई है।"

"पर बता सकते हो कि ऐसी संस्थायें कहाँ तक सफल हो सकती है, विशेषकर जब कि सम्बन्धित राष्ट्रों की विदेश-नीति एक-दूसरे से टक्कर खाती हों ?"

"जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। पर हम तो ये धारणा लेकर चले हैं कि किसी भी देश की विदेश-नीति कैसी भी क्यों न हो, उसके निर्माण में केवल उस देश की सरकार का हाथ रहता है। जनता केवल उसे सफल या असफल होते ही देखती है। एक विदेश-नीति को लेकर शायद ही किसी भी समय, किसी भी देश में, किसी सरकार का तख्ता उलटा हो। जनमत के समय सत्तारूढ़ सरकार के प्रति विश्वास या अविश्वास उसकी सारी नीतियों को देखकर ही प्रकट किया जाता है। केवल विदेश-नीति को ही देखकर नहीं। फिर यह सोचना कि किसी देश की विदेशी-नीति वहाँ की जनता की भावनाओं का सही दिग्दर्शन करे सम्भवतः कभी गलत भी हो सकता है।"

"कोई उदाहरण दे सकते हो ?"

"हमारे साथियों की धारणा है कि हिटलर की विदेश-नीति केवल नाजी पार्टी की नीति थी। रूस की भी जो नीति रही है—उस पर स्टालिन का नियंत्रण था। हो सकता है जनता उसे पसन्द न करती हो।"

"इनको छोड़ो, ये देश तो तानाशाही के लिए कुख्यात हैं।"

"डाक्टर साहब ! वास्तव में यह एक बड़ी लम्बी चर्चा का विषय है और

प्रायः देखा गया है कि राजनीति सिद्धान्त में कुछ और होती है और व्यवहार में कुछ और। आज माउत्सेतुंग का चीन साम्यवादी 'आइडियोलौजी' लेकर उदित हो रहा है। सम्भवतः कई राष्ट्र भयभीत भी हों, पर क्या ये निश्चित ही है कि उसके साथ हमारे देश की नीति वही हो जो रूस के साथ आज तक रही है ? हमारा विचार है कि ऐसा नहीं होगा क्योंकि सांस्कृतिक कड़ियाँ पर्याप्त आकर्षण रखती हैं और इन्हीं सांस्कृतिक कड़ियों को जीवन मिलता है एक राष्ट्र के नागरिकों का दूसरे राष्ट्र के नागरिकों के साथ मुक्त और अधिकाधिक मात्रा में आदान-प्रदान के चलने से। हमारी जैसी संस्थाओं की उपयोगिता से फिर कैसे इन्कार किया जा सकता है जो इन्हीं उद्देश्यों को लेकर चली हैं।"

प्रो० स्वरूप अभी तक मौन थे। हँसकर बोले, "लेकिन संघर्ष तुम भी कुछ न कुछ लक्ष्य लेकर ही ऐसी संस्थाओं में सम्मिलित हुए होगे।"

संघर्ष लज्जायुक्त हँसी में बोला, "मेरा क्या लक्ष्य हो सकता है भाई साहब ! कार्य-क्रम रुचिकर लगा तो कार्य करने लग गया। वैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और समाजिक कार्य-कर्त्ताओं से सम्पर्क बनता रहता है। यदि इस ओर ही आपका संकेत है तो···"

"तो ठीक ही है बेटा।" संघर्ष के पिता बोले। फिर डाक्टर स्वरूप की ओर मुड़कर बोले, "डाक्टर साहब ! जान-पहचान हो तो कई काम बन जाते हैं। आजकल गुण भी हों, तो भी कोई नहीं पूछता। जान-पहचान ही काम आती है।"

संघर्ष प्रोत्साहित हो बोला, "आज शाम को 'फ्रैण्ड्ज ऐसोसियेशन' की कार्यकारिणी की बैठक हो रही है। शायद कल फिर पाकिस्तान के राजदूत और विदेश सचिव से भेंट करने जाना पड़े। हमारा महिला विभाग भी पाकिस्तान के प्रधान मंत्री की बेगम को निमंत्रित करने की योजना बना रहा है। पता नहीं हमारी संस्था द्वारा निर्मित कार्य-क्रम विदेश सचिवालय को अंगीकार हो भी या नहीं।"

बातों का दौर चलता रहा। संघर्ष खूब उत्साह से दिल्ली की विशिष्ट

सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं की गतिविधियों का बढ़-चढ़कर उल्लेख कर रहा था।

अपने मित्रों का परिचय देते हुए उसने बताया कि उनमें से कई तो एक शिष्ट-मण्डल में सम्मिलित होकर रूस जाने का विचार कर रहे हैं। राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह और भोजों पर सम्मिलित होने के अवसरों पर जो अनुभूतियाँ उसे हुई, उन पर वह सन्तोष और असन्तोष दोनों व्यक्त कर रहा था। श्रीमती स्वरूप की आँखों में कौतूहल और प्रशंसा के भाव थे जब कि प्रो० स्वरूप और संघर्ष के पिता दोनों के मुख पर गर्व और सन्तोष झलक रहा था। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता था कि डा० स्वरूप पर इन चर्चाओं का क्या प्रभाव पड़ रहा था? वे अविचलित रूप से एक क्रान्त द्रष्टा की भाँति स्थिर-गम्भीर मुद्रा में बैठे हुए थे।

संघर्ष जब अपनी संस्था की होने वाली बैठक में सम्मिलित होने के लिए आज्ञा पाकर चला गया तो डा० स्वरूप और संघर्ष के पिता जी में संघर्ष की नियुक्ति के सम्बन्ध में बातें होने लग गईं। डा० स्वरूप ने बताया कि उन्होंने जीवन से मकान खाली करने को कह दिया है ताकि उसके मकान छोड़ने पर संघर्ष के रहने की भी स्वतन्त्र-रूप से व्यवस्था हो सके। प्रो० स्वरूप बोले कि यद्यपि संघर्ष का पृथक् रहना उन्हें और विशेषकर उनकी माता जी को कुछ दु:खकर तो प्रतीत होगा ही पर क्योंकि संघर्ष स्वतन्त्र विचारों का युवक है अत: उसके इस अनुरोध को कि उसके लिए वे किसी पृथक् स्थान की व्यवस्था करें, टालना उनके लिए अखर सा रहा है। श्रीमती स्वरूप बोली कि जब उनके घर का मकान है ही तो फिर बाहर किराये पर लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। संघर्ष के पिता ने डाक्टर स्वरूप और उनकी श्रीमती के प्रति इस उदार और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पर कृतज्ञता प्रकट करते हुए आशा व्यक्त की कि संघर्ष की पूर्ण संरक्षकता स्वीकार कर वे उसे कुछ इस योग्य बना सकेंगे कि वह समाज में अपने लिए उचित स्थान बना सके।

संघर्ष के पिता और प्रो० स्वरूप जब चले गये तो श्रीमती डा० स्वरूप पति की ओर मुड़कर बोली, "आखिर तुम आज मान ही गये। न मालूम क्यों तुम्हें आज तक इस पर आपत्ति रही।"

डा० स्वरूप बोले, "मिसरानी ! तुम विवेक कम रखती हो। मुझे आपत्ति तो अब भी है पर जो संकट तुमने उत्पन्न कर दिया था, उसे मिटाने का केवल यही एक रास्ता था।"

"मैंने संकट पैदा किया ? संघर्ष को जवाहर नगर में स्थान देने के बारे में ही कह रहे हो न ?"

"हाँ चाची ने जो कुछ कह दिया, उस पर तुम तुरन्त मेरी सलाह की उपेक्षा किये निर्णय दे देती हो। फिर यदि मैं न मानूँ तो क्या संकट उत्पन्न न हो ?"

"अच्छा संघर्ष की कहीं अन्यन्त्र व्यवस्था हो जायगी पर ये बताओ कि जीवन को वहीं रहने दोगे ?"

"क्यों वह किराया नहीं दे रहा ? संघर्ष के वहाँ रहने पर तो वह किराया भी चला जायेगा।"

"फिर वही बात हुई न कि एक कान से सुना और दूसरे कान से भुला दिया। मैं पूछती हूँ कि जो तुम्हारी चाची कह रही थी, उसे क्या भूल गये ? मुण्डन पर दोनों दिन जीवन भोजन में सम्मिलित नहीं हुआ।"

"तो क्या हुआ ? उससे मकान मालिक और किरायेदार के सम्बन्धों में कहाँ अन्तर आता है ?"

"पर वह हमारे ही मकान में रहकर अपने को इतना बड़ा समझे। सारी दुनिया तो हमारे यहाँ आकर कच्चा भोजन तक करती रही और वह पक्के भोजन में भी सम्मिलित नहीं हुआ।"

"मिसरानी ! विवेक मत छोड़ो। न मालूम तुम क्या बहक रही हो ?"

"बहक नहीं रही। संघर्ष ने 'नव-पौरवीय समाज' नाम की संस्था की स्थापना की। कितने अच्छे उद्देश्य थे संस्था के। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर तो चली थी संस्था कि एक ही बिरादरी में ऊँच-नीच क्यों हो ? सारी बिरादरी के लोगों ने उसकी प्रशंसा की कि बदलते हुये समय को देखकर खान-पान और विवाह आदि में बंगाली ब्राह्मणों की तरह अधिक कट्टरपंथी होना समाज के लिये घातक ही है। पर सुना भी है कुछ कि जीवन ने संघर्ष के इस कार्य के प्रति बड़ी उपेक्षा प्रदर्शित की ? आज तक एक भी अवसर पर 'समाज' में सम्मिलित

नहीं हुआ। सुना है, कह रहा था समय जिन बातों को स्वयं ला रहा है, उनका श्रेय लेने के लिये ही संघर्ष ने 'समाज' की स्थापना कर केवल एक नाटक खेला है।"

"मिसरानी ! केवल मतलब की बात करो।"

"मतलब की ही बात कर रही हूँ। आज इतने वर्ष उसे दिल्ली में रहते हुए हो गये। कभी देखा है आपने उसे किसी के यहाँ उठते-बैठते ? तुम्हारी चाची तो नाते में उसकी बूआ लगती हैं पर कभी जाता है उधर ?"

डा० स्वरूप अब खिलखिला कर हँस पड़े।

उनकी पत्नी तुनक कर बोली, "जो गँवार होते हैं, भला पढ़-लिखकर भी उनका गँवारपन क्या चला जाता है ? पता नहीं कहाँ-कहाँ के टुकड़े खाकर तो आज तक पलता रहा और आज सिर पर देखो तो इतने लम्बे-लम्बे सींग।"

डा० स्वरूप को पत्नी के अन्तिम कथन पर कुछ रोष हो आया। क्रोधित हो बोले, "देखो मिसरानी, संघर्ष के रहने के लिये जीवन को मैंने कमरा खाली कर देने को कह दिया है। तुम यहीं तक अपना सम्बन्ध रखो। उसके व्यक्तिगत जीवन पर आक्षेप करने का तुम्हें अधिकार नहीं है। चूल्हे पर बैठे रहने से चूल्हे से बाहर की दुनिया का तुम सही अनुमान नहीं लगा सकतीं।" इतना कहकर अन्यमनस्क से डाक्टर स्वरूप उठकर क्लीनिक में आ गये।

फोन की घंटी बजी और डा० स्वरूप ने संघर्ष को कहते हुये सुना कि उसे शाम को उनकी गाड़ी की बड़ी आवश्यकता है। डाक्टर स्वरूप ने दृढ़ शब्दों में यह कह कर कि शाम को कार प्रेरणा के अधिकार में होगी, फोन रख दिया। फोन संघर्ष ने नई दिल्ली के किसी रेस्टोरेन्ट से किया था जहाँ कि उसकी मित्र-मंडली एकत्रित होती थी। यद्यपि संघर्ष ने स्पष्ट रूप से अभी अपने मित्रों को यह संकेत नहीं दिया था कि उसका डाक्टर स्वरूप के परिवार से कितना समीप का रिस्ता तय होने जा रहा था, फिर भी डाक्टर परिवार के साथ इतने सामीप्य का तो उसने उन्हें विश्वास दिलाया ही था कि उसके तनिक संकेत पर कार या जो भी सहायता वह चाहे, तुरन्त प्राप्त हो सकती थी। डा० स्वरूप

के रूखे उत्तर से उसने अपने को अपने मित्रों के सामने बड़ा लज्जित अनुभव किया। उसकी इस लाचारी को दत्त और अन्य दूसरे मित्रों ने ताड़ लिया।

दत्त बोबा, "मालूम पड़ता है काम बना नहीं।"

"नहीं ऐसी बात तो नहीं पर इस समय कार है नहीं ; यदि होती तो विश्वास करो कि अभी यहाँ आ जाती।" कहने को तो संघर्ष कह गया पर अन्दर से उसे अपने कथन पर स्वयं शंका हो रही थी।

रमन, कोहली और श्याम तीनों संघर्ष से, काफी आशा रखते थे पर आज संघर्ष की असमर्थता देख तीनों के चेहरों पर कुछ ऐसे भाव दिखाई देने लगे मानो जैसे संघर्ष के नेतृत्व पर से उनका विश्वास उठ गया हो।

कोहली बोला, "व्यर्थ ही संघर्ष ने हमारा समय नष्ट किया। यदि वह कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था तो स्पष्ट कह देता। अब तक कोई न कोई व्यवस्था हो जाती। न मालूम डींग मारकर वह कितना बड़ा हो गया।"

संघर्ष पहले ही झेंप अनुभव कर रहा था। कोहली के आक्षेप से वह और अधिक झेंप गया। पर डींग मारने वाली बात जो कोहली ने कही, उस पर उसे कुछ तैश आ गया। बोला, "कोहली ! इस में डींग मारने वाली क्या बात थी भई ? क्या मैंने डा० स्वरूप की कार का कभी उपयोग ही नहीं किया या तुम्हारा मतलब है कि मैं उनसे कार ले ही नहीं सकता ?"

"बिल्कुल ! जो हम देख रहे हैं, वही तो कहेंगे।" रमन ने कोहली का समर्थन किया।

संघर्ष ने अपने क्रोध पर नियंत्रण रखते हुये कहा, "पर तुम मेरी मजबूरी नहीं देखोगे। मैंने बताया न कि कार इस समय उनके पास नहीं है, कोई ले गया है; फिर मैं क्या जेब से पैदा करूँ ?"

"कहीं से भी करो। तुम्हें बार-बार चेतावनी दे दी गई थी कि प्रबन्ध में कहीं कुछ गड़बड़ी न रह जाय और फिर भी तुमने हमें निश्चिन्त रहने का आश्वासन दिया। तो फिर कौन अब ये बातें सुनेगा ?" अब ये श्याम के ताने थे। संघर्ष निरुपाय और परास्त हो दत्त की ओर देखने लगा.

गया मानो वह उससे इस संकट से मुक्त कराने की याचना कर रहा हो। दत्त शान्त था। संघर्ष के मलिन मुख को देख कर मुस्कराता हुआ बोला, "अब अधिक दुःखी न करो यार बेचारे को। कोई टैक्सी कर लेते हैं, क्या बात है?"

"नहीं दत्त! ऐसा संकट मोल लेने को मैं तो तैयार नहीं। इस पीली छत वाली से तो यदि किसी को शंका न भी हो तो वह भी शंका करने लग जायगा।" रमन बोला।

"बिल्कुल ठीक। दो-तीन पहर रात बीते क्या कोई ऐसे संग में टैक्सियों में घूमना पसन्द करेगा?" श्याम ने दत्त का प्रस्ताव ठुकरा दिया। दत्त भी कुछ खीज-सा गया। कोहली की ओर मुड़कर बोला, "बताओ न यार, तुम तो बिलकुल चुपचाप ही हो।"

"बस भई, हम तो अब चले। उचित तो यही है कि इस बचपन को समाप्त कर आज का कार्य-क्रम कल तक के लिये स्थगित कर दो। कल शाम के ठीक सात बजे आपके पास 'लैण्ड मास्टर' पहुँच जायेगी।"

दत्त ने सब की ओर देखा मानो इस स्थगन प्रस्ताव पर वह सब का मत ले रहा हो। स्वीकृति में सबकी गर्दनें हिल गईं। पर संघर्ष का क्रोध उबल पड़ा। कोहली को सम्बोधित करते हुए वह बोला, "याद रखो कोहली! मेरी जरा सी लाचारी पर तुम कार्य-क्रम को रद्द करवा कर मेरा अपमान कर रहे हो। मेरे अन्दर सब बातों की क्षमता है, अपमान सहने की नहीं।"

कोहली भी क्रोधित होकर बोला, "किसी और को दिखाना ये हाथी के दाँत। अपनी गीदड़ धमकियों को सिंह-गर्जन का रूप देकर अब तुम ये सोचने की भूल न करो कि हम तुम्हारे वास्तविक रूप को नहीं पहचान पाये थे। यह उदारता तो हम प्रत्येक नये सदस्य के प्रति दिखाते ही हैं। पर जब पता चलता है कि पैसा खोटा है, तो उसे उसी प्रकार फेंक भी देते हैं।"

"कोहली!" संघर्ष ने दाँत भींचते हुए कहा।"

"जब से तुम आये हो, तुमने केवल डींगें मार कर ही मौजें उड़ाईं और जब अपने पर पड़ी तो रुमाल हिलाने लग गये, फिर भी तुम्हें 'क्षमता' कहते हुए लज्जा नहीं आई।"

कोहली अभी बोल ही रहा था कि दत्त ने उसे रोक दिया । बोला, "कोहली ! कमाल कर रहे हो यार ! चुप भी रहो । मित्रों में इस प्रकार का मन-मुटाव अच्छा नहीं होता ।"

"नहीं मिस्टर दत्त ! मैं बहुत दिनों से नोट कर रहा हूँ । अब अपने को अधिक धोखा नहीं देना चाहता । आखिर क्या अर्थ हैं इस क्षमता के ? थोथा चना और बाजे घना ।"

"मिस्टर कोहली ! कृपया..."

"तुम कहते हो दत्त ! तो चुप हो जाता हूँ क्योंकि तुम्हारा सम्मान करता हूँ पर अन्दर से मैं चुप नहीं रह सकता । संघर्ष ने आज तक कोरी डींगें मारीं । चाहा कि तुम्हारे बाद उसका हम पर नियंत्रण रहे । जितने भी हमारे कार्यक्रम बनते रहे, उनमें वह अवश्य हस्तक्षेप करता रहा और अपना मनचाहा कार्यक्रम बनवाता रहा । उसने कभी ये नहीं सोचा कि हस्तक्षेप तो वह इतना करता है पर कभी यह समझने की चेष्टा भी कर ले कि इतनी भारी अर्थ-व्यवस्था कैसे सम्पन्न होगी ? आखिर तुम्हारे पास कोई टकसाल तो नहीं है ।"

"अरे छोड़ो यार ! तुम तो सचमुच ही झगड़ने लग गये ।" दत्त बोला ।

"ठीक है दत्त ! साफ बातें करने में कोई हानि नहीं है ।" रमन बोला, "एक-एक कार्यक्रम पर चालीस-चालीस, पचास-पचास रुपये खर्च हो जाते हैं । और फिर यदि वनिता भी रही तो सौ रुपयों पर एक ही दिन में हाथ साफ हो जाता है । आखिर सब मामूली ही आय वाले तो हैं । ये तो तभी चल सकता है जब सब थोड़ा-थोड़ा सहयोग दें ।"

श्याम, संघर्ष और कोहली के मध्य तनातनी देख चुप हो गया था । वातावरण को अनुकूल बनाते हुये बोला, "वनिता का उल्लेख कर रमन ने मेरा ध्यान एक विशेष महत्त्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित कर दिया है और मैं चाहता हूँ कि इन व्यर्थ की बातों को छोड़ कर आप सब इस पर विचार करें । मेरा सबसे पहले एक प्रश्न है और वह यह है कि जब इस अर्थ-व्यवस्था को लेकर आज या भविष्य में हमारे बीच रार पैदा हो सकती है तो फिर

क्यों हम वनिता को सातवें आसमान पर चढ़ाते चले जा रहे हैं। आखिर वही तो हमारे बैंक बैलेन्स की कौड़ी है।"

"लम्बी आयु हो श्याम तुम्हारी। मैं भी बहुत दिनों से यही सोच रहा था।" रमन ने चुटकी भरते हुए कहा।

"शरारती कहीं का"—दत्त हँस पड़ा और बोला, "वनिता के प्रति रमन और श्याम दोनों ही रोष प्रकट कर रहे हैं। पर हमारी मण्डली और कार्यक्रम में वनिता का जो इतना महत्वपूर्ण स्थान है, उसके पीछे किसका हाथ है? प्रमुख रूप से तुम दोनों का। हम तो सुरमा या काजल का प्रयोग कर सकते हैं पर तुम्हारी आँखों को तो उसे देखकर ही शीतलता मिलती है। पूछ लो कोहली से।"

रमन बोला, "कोहली क्या बतायेगा। उससे तो वनिता कन्नी काटती है। हम हैं, लेकिन हमसे उसका वही रिस्ता है जो निर्मम शमाँ का शलभ से—केवल तड़पना। ये तो भई, तुम ही हो दत्त, जिसकी गुंजार सुन कर वनिता की पंखड़ियाँ खुल जाती हैं।"

"सुना कोहली?" दत्त हँसते हुये बोला।

"ठीक ही है। वनिता मुझसे भय खाती है। कहती थी कि मैं 'कैशीयस' हूँ और तुम 'ब्रूटस'। वह समझती है और उसका समझना ठीक भी है कि बाकी सारे इशारों पर नृत्य करने वाले काठ के पुतले हैं। लेकिन संघर्ष! तुम्हारी ओर संकेत नहीं है।"

संघर्ष को सम्बोधित करने पर कुछ समय पूर्व जो कटुता उत्पन्न हो गई थी, वह अब जाती रही। इसका आभास संघर्ष ने अपनी सरल मुस्कान में दिया।

कोहली ने संघर्ष के गले में बाँह डालते हुये कहा, "तुम्हारी अकर्मण्यता पर, भगवान् कसम, इतना क्रोध आ रहा था कि न पूछो। उसी क्रोध में सब कुछ बक गया। बुरा न मानना, पर यह भी न भूलना कि अभी तक तुमने कोई ऐसा शौर्य-प्रदर्शन नहीं किया जिससे तुम्हें 'उप-नेता' बना लिया जाय, समझे?"

संघर्ष ने गम्भीर मुद्रा बनाई और बोला, "कोहली! तुम्हारे अन्दर धैर्य

और संयम नहीं है, नहीं तो इतनी छोटी-सी बात पर उत्तेजित न होते। मेरी क्षमता पर तुम्हें सन्देह था। ईश्वर करे, यदि कुछ निश्चित हो गया हो तो फिर शीघ्र ही तुम्हें मेरी क्षमता का भी परिचय मिल जायेगा। पर मेरे साथ तुम्हें ज़रा धैर्य और संयम से चलना पड़ेगा।"

रमन ने कोहली की बाँह संघर्ष के गले से हटाई और अपनी बाँह उसके गले में डालते हुये बोला, "मालूम पड़ता है संघर्ष ! आज तुम भी कोई 'एटम-बम' छोड़ने जा रहे हो। यदि इस 'एटमबम' में कोई आशा की किरण हो तो इसका तुरन्त विस्फोट होना चाहिये। अधीर होने के लिये इस समय क्षमा।" सब हंस पड़े।

संघर्ष बोला, "जवाहर नगर में शायद दो-चार दिन में मुझे एक फ़्लैट मिल जायगा। और कोई साथ में नहीं होगा, केवल 'सीज़र' और उसके 'रोमन सीपाही'।"

"क्या सच ?" कोहली बोला।

"सोलह आने और अपने भाग्य को दुहाई दो कि फ़्लैट बिल्कुल स्वतंत्र और पृथक् है जहाँ तुम रात के किसी भी समय आ-जा सको।"

दत्त बोला, "फिर तो हमारी वनिता······'नहीं जी 'पोर्सिया' कहो और उसके 'रोमन सिपाही' नई दिल्ली के होटलों और वीरान सड़कों के पथिक न रह, निर्भय और सम्मानपूर्वक चार दीवारी की आड़ में रह सकेंगे।"

श्याम बोला, "हाँ रहने को तो कृष्णा की कुटिया भी है पर वहाँ भक्तों का आना-जाना अधिक है। यह भी एक समस्या सुलझ गई।"

कोहली श्याम की बात पर क्रोध प्रकट करते हुये बोला, "तुम्हारी इन बातों से मुझे चिढ़ है। मैं मानता हूँ कि सब कुछ चलता है पर सीमा के अन्दर रह कर। हमें अपना स्तर इतना नहीं गिराना चाहिये कि सभ्यता और हमारे बीच लम्बा फ़ासला आ जाए। तुम यह भूल जाते हो कि यह जो कुछ हमारे कार्यक्रम चलते हैं, इनसे हम अपने स्वभाव का परिचय नहीं देते अपितु समय की प्रगति का आभास कराते हैं। इन कार्य-क्रमों में तो केवल मनोरंजन होता है, शुद्ध और परिमार्जित—जिन पर वर्तमान सभ्यता की छाप लगी हुई है।"

"कोहली ! तुम्हारा कहने का तात्पर्य है कि जो मनोरंजन हमारा कृष्णा की हवेली पर जाकर होता है, वह उतना शुद्ध और परिमार्जित नहीं जितना कि वनिता के साथ घूमने में होता है।"

श्याम बोला, "बिलकुल। कृष्णा वेश्या है; उसके पास जाने में हम पर वेश्यागामी का लेबिल लग जाता है। लेकिन वनिता एक शिक्षित सामाजिक कार्यकर्त्री है जिसका मित्र होने के नाते, हमारे साथ उठना-बैठना और अन्य आदान-प्रदान भी चलते हैं। हमारे साथ जो उसके सम्बन्ध हैं वे कहीं पर भी अनुचित और घृणित नही हैं कि कोई हम पर उँगली उठा सके।"

दत्त हँस पड़ा और उसके साथ दूसरे मित्र भी।

रमन बोला, "मानते हैं कोहली तुम्हें। सारी दुनिया का कीचड़ और गन्दे-नालों को पीकर भी गंगा पवित्र ही रहती है। यही मतलब है न ?"

"हाँ, इसलिए कि वह महान् लक्ष्य लेकर अवतरित हुई है। जब तक उसके अन्दर स्वच्छ जल की मात्रा इतनी अधिक है कि नालों का पानी मिल जाने पर भी उसका स्वरूप मटीला नहीं होता, वह स्वच्छ ही समझी जाएगी। कीचड़ और गन्दे नालों का मिल जाना तो एक स्वाभाविक क्रिया है। भला मिट्टी पर इतना लम्बा मार्ग तय करने में वह कहाँ तक मिट्टी से उत्पन्न कीचड़ से संकोच कर सकती है। हाँ, उसे अवश्य इतना सतर्क रहना चाहिए कि मिट्टी में बहने से वह केवल कीचड़ न रह जाए, अपितु मिट्टी को पचाकर जल की धार ही बनी रहे। इसे ही 'क्षमता' कहते हैं और वनिता में यह क्षमता पर्याप्त है। उसका जन्म बीसवीं सदी में हुआ है। वह कठोर चट्टानों से निकले हुए जल-स्रोत की तरह पथरीले पर्वतों की ओट में स्वयं अपना मार्ग बनाती हुई नदी के रूप में सागर-तट तक पहुँचने का प्रयास कर रही है जहाँ वह पृथ्वी के अन्य भागों से बहती हुई जल-धाराओं से मिल सके और इस प्रकार छोटे से उद्गम स्थान या दो-चार सौ मील के भूमि के टुकड़े तक ही अपने अनुभवों को सीमित न कर, उस महासागर को भी देख ले जिसकी लहरें प्रत्येक देश के तटों से टकराती रहती हैं...।"

कोहली अभी बोल ही रहा था कि रमन ने बीच ही में टोक दिया और

बोला, "कोहली ! जरा पहले तुम्हारी जय-जयकार के नारे लगालें, फिर आगे बोलगा।"

सारे मित्रों ने ज़ोरदार ठहाका लगाया।

दत्त बोला, "जो कुछ कोहली ने कहा है, वह ठीक ही है। आखिर हमारी 'यूथ-लीग' में महिलाओं को सदस्य बनाने का सारा श्रेय वनिता को ही तो जाता है। सब उसका सम्मान करते हैं। कृष्णा अपनी हवेली से बाहर आकर समाज में मिले तो कौन फिर उसे वेश्या कहेगा चाहे, उसका निजी जीवन वही क्यों न रहे। नैतिक और अनैतिक—इनका तो यही पैमाना है। हम वनिता के समीप होते है, तो मित्र कहलाते हैं पर कृष्णा की हवेली पर जाते हैं तो ग्राहकों की संज्ञा दी जाती है। यह इसीलिए कि वनिता बहता हुआ पानी है, स्वच्छ है; कृष्णा तालाब या पोखर की जमी हुई काई है, मैली है।"

"क्यों दत्त ! यदि तुम्हारी शादी हो गई होती, फिर अपनी बीवी को क्या कहते ?"

दत्त को उत्तर देने का अवसर न देते हुए रमन बोला, "हमारी भाभी तो काँच की बोतल में बन्द अमृत होती।" मुक्त हँसी सबके अधरों पर नाच उठी और उसी के साथ गोष्ठी विसर्जित होने वाली थी कि सामने का द्वार खुला और हड़बड़ाते हुए मेहरा ने प्रवेश किया। आते ही बोला, "मुझे एक चाय का प्याला पिला दो। अधिक समय नहीं है। मुझे अभी मेरठ जाना है। अगर कष्ट न हो तो गाड़ी हमारे घर पहुँचा देना, मै सीधे स्टेशन चला जाऊँगा।"

गाड़ी का नाम सुनते ही सबकी आँखें चमक उठी।

रमन बाहर गया और तुरन्त वापस आकर बोला, "मेहरा ! गाड़ी किस की है ?"

"किसी की भी हो। यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो ले जा सकते हो, पर इस बात का ध्यान रहे कि उसे तुम कल प्रातः हमारे मकान पर छोड़ आओ।"

दत्त की ओर मुड़कर फिर मेहरा बोला, "तुम्हारी चाय नहीं आयेगी ?"

मित्र-मण्डली में सहसा दिवाली का सा आह्लाद छा गया। रमन नृत्य की मुद्रा में अपने स्थान से उठकर मेहरा को कस कर आलिंगनबद्ध

करना चाहता था कि दत्त की घुड़की से वह अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया। मेहरा ने चाय पी और हाथ हिलाते हुए चला गया। बाकी सदस्य दत्त के पीछे चल कर कार में आकर बैठ गये। कार स्वयं दत्त चला रहा था।

ऊपर आसमान में पूर्णिमा की चाँदनी छिटकी हुई थी और नीचे जगमग-जगमग विद्युत् का बहुरंगी प्रकाश नई दिल्ली को आलोकित कर उसे नव-यौवन प्रदान कर रहा था। कैनाटप्लेस में वैसे भी ऐश्वर्य का साम्राज्य रहता है पर सन्ध्या के समय वह विशेष रूप से चेतन हो उठता है, जिसकी खुमारी में वहाँ के वैभव-सम्पन्न व्यक्ति नग्न होकर लूट को जीवन की स्वाभाविक क्रिया समझ कर पहले अपने को लुटाते हैं और फिर दूसरों को लूटने के लिए उतावले हो जाते हैं। इस खुमारी के वशीभूत बड़े-बड़े होटलों और रेस्टोरेन्टों में सुरम्य रसीले बाजों की मोहक ध्वनि से चुम्बक की तरह खिचकर मनुष्यता का बाजार इठलाकर वहाँ एकत्रित हो जाता है, जहाँ आमोद-प्रमोद में अपने को खोकर वह 'बीती' का ख्याल छोड़ देते हैं और 'आगे' की चिन्ता नहीं करते। दुकानों और सड़कों पर नर-नारियों का अविरल प्रवाह लहरें मारता है जिस के ओर-छोर का कुछ पता नहीं चलता। सब अपने लिए होते हैं। कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं, यह सोचने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करता। नई दिल्ली के इस रंगीन चोले में संघर्ष और उसके मित्र भी यदा-कदा—अंजुलि रंग डाल कर राजनगरी के गौरव को बढ़ाने में अपना योग देते रहते थे। आज भी राज पथ पर सपाटे के साथ हवा को चीरती हुई उनकी कार रेस कर रही थी, ठीक वैसे ही जैसे कार के अन्दर बैठे हुए स्वामियों की नसों में रक्त दौड़ रहा था। कार एक लम्बे मार्ग को तय कर दिल्ली की एक घनी बस्ती में आकर रुक गई जहाँ नई दिल्ली की सी ताजगी तो नहीं थी पर ऐसी भी बात नहीं थी कि जिन्दगी बिल्कुल सुप्त नजर आए जैसा कि दिल्ली के बहुत से भागों में मालूम पड़ती है। कार का दरवाजा खुला और केवल दत्त बाहर निकल कर सामने की एक गली में घुस गया। कोई दस मिनट बाद पंजाबी सलवार, लम्बा-सा कुर्ता और उस पर चुनरी डाले हुए एक युवती के साथ वापस लौटकर वह फिर कार में बैठ गया। युवती उसके साथ आगे की सीट पर बैठ गई।

संघर्ष से वनिता का परिचय था क्योंकि दोनों 'यूथ-लीग' के प्रमुख सदस्य थे और संस्था का विशेष उत्तरदायित्व सँभाले हुए थे। उनमें सब प्रकार का हास-परिहास चलता था जिसे वहाँ का उन्मुक्त वातावरण आज्ञा देता था।

एक दो पार्टियों और युगल-नृत्यों में भी वह उसके साथ सम्मिलित हो चुका था। पर यह उसके लिए पहला अवसर था कि समस्त कड़ियाँ तोड़कर वनिता उनसे मिलने आई थी। संघर्ष इस नई अनुभूति से रोमांचित हो उठा था। स्वाभाविक ही है कि फिर उससे कुछ बोला न गया। कार राष्ट्रपति भवन को पीछे छोड़ती हुई तीन मूर्ति, हवाई अड्डा और चाणक्यपुरी को पार कर छावनी वाली वीरान सड़क पर दौड़ रही थी और वह मूर्तिवत् पिछली सीट पर बैठा हुआ सोच रहा था कि न मालूम पृथ्वी से ऊपर सात लोकों की होने की जो बात उसने सुन रखी थी, उनमें से कौन से लोक में अवतरित होने वह आज अग्रसर हो रहा था।.........सम्भवतः बहुत ऊपर, चाँद से भी ऊँचे सीमाहीन आकाश में, उसे ले जाया जाए जहाँ उस जैसे नए अभ्यागतों के लिए स्थान बनाने को नित्य दो-तीन तारे टूटते ही रहते हैं। लेकिन जब रात्रि के तीसरे पहर गाड़ी उन्हें फिर वापस नई दिल्ली की सीमा पर ले आई तो संघर्ष का क्लान्त मुख इस बात की साक्षी दे रहा था कि उस कल्पित शून्य अंधकार में, जहाँ वह विचरण कर आया था, या तो केवल जगमगाते हुए तारे टूटकर नीचे गिरते हुए दिखाई देते हैं या फिर उन पक्षियों का क्रन्दन ही सुनाई देता है जो उस ऊँचाई तक उड़ने पर अपने पंखों को तोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त सब विडम्बना थी।

८

डा० एस० स्वरूप ने जब जीवन से मकान खाली करने को कहा तो वह आश्चर्य से कुछ क्षणों तक उत्तर न दे सका। डाक्टर साहब के इस आकस्मिक निर्णय की उसे कुछ पृष्ठ-भूमिका नहीं दिखाई दी। उसे स्मरण हो आई उस शाम वाली घटना जब उनकी पुत्री प्रेरणा भी इसी तरह बिना आधार के क्रोध में आकर जागरण के कार्यालय से चल पड़ी थी। जीवन ने फिर यही अनुमान लगाया कि पिता और पुत्री, दोनों के स्वभाव में जो लिहाज की वृत्ति बिल्कुल नष्ट हो चुकी थी, उसका कारण सम्भवत: उनका ऐश्वर्य ही था जो न तो उचित-अनुचित का ज्ञान रहने देता है और न मनुष्य-योनि को प्रदान किया हुआ प्रकृति का वह अमूल्य धन ही अक्षुण रहने देता है जिसे 'मनुष्यता' कहते हैं। जीवन को लगा कि डाक्टर स्वरूप जैसे उच्च वर्ग के व्यक्तियों में ऐसी समस्त भावनायें स्वयं क्षीण होती जाती हैं जिनका प्रकृति से सम्बन्ध होता है क्योंकि वस्तु और प्रकृति एक होते हुए भी गुणों में एक दूसरे के विपरीत हैं। एक मनुष्य के 'अहं' स्वभाव का व्यक्तिमान रूप है और दूसरी उसके प्रारम्भिक स्वरूप का परिचायक। गाय के थनों से निकली हुई दूध की धार को मनुष्य का 'भौतिकवाद' या 'अहं' स्वभाव, दूध को कई रूप दे देता है जो दूध के अंश होते हुए भी गुणों में दूध से बिल्कुल विपरीत हो जाते हैं। डाक्टर स्वरूप भी मनुष्य होते हुये, वैभव के लपेटे में, मनुष्यता से दूर जा सकते थे। जीवन प्रतिवाद कर सकता था पर उनके निर्णय को स्वीकार करने में ही

भलाई समझी, या यूँ कहो कि प्रतिवाद करने की अपेक्षा उसने यही अच्छा समझा कि वह स्वयं उनका मकान छोड़कर उनसे इतनी दूर चला जाय कि उनकी उस पर परछाई भी न पड़े। आखिर उस परिचय से भी क्या लाभ जिससे अशान्ति बढ़े। क्या अब तक का जीवन उसका कम अशान्त रहा कि वह अशान्ति को जन्म देने वाली निरर्थक घटनाओं को आमंत्रित करता रहे।

प्रातः जब भरपूरिया प्रेरणा को कालेज छोड़ने जा रहा था तो सहज स्वभाव में बोल पड़ा, "बहिन जी! जीवन बाबू मकान छोड़ तो गये पर यह अच्छा नहीं हुआ। हमें ही बुरा लग रहा है—फिर उन्होंने भी कुछ महसूस किया होगा।"

"हूँ" प्रेरणा ने पीछे की सीट पर बैठे हुए गर्दन हिला दी।

"मुझसे कह रहे थे कि कहीं एक-आध कमरे की खोज करूँ। भला मुझे बहिन जी! समय ही कहाँ मिलता है? सामान था, सो मैंने अपने कमरे में रखवा लिया है। है ही क्या—दो ट्रन्क, एक बिस्तरा और थोड़ा-सा अटर-सटर।"

"तो उनकी क्या अभी मकान की व्यवस्था नहीं हुई?"

"कहाँ बहिन जी! आजकल क्या मकान ऐसे ही मिल जाते हैं। १०-१२ दिन तक दिन-रात दौड़-धूप करो, फिर कहीं कोई कमरा पता लगता है। उस पर भी पगड़ी और पेशगी किराया। न मालूम कितने झंझट हैं।"

"फिर आजकल कहाँ रहते हैं?"

"रहना कहाँ है? आज जा रहे हैं। साढ़े दस पर ही तो लखनऊ को गाड़ी छूटती है।"

प्रेरणा को लगा मानो गाड़ी की सीटी की आवाज से उसके कान के पर्दे फट गये हों और गाड़ी के पहिये उसकी छाती को रौंदते हुए प्लेटफार्म छोड़ चुके हों। उसने कलाई पर बँधी घड़ी को देखा और भरपूरिया को स्टेशन की तरफ गाड़ी मोड़ने को कहा। कुछ ही मिनटों में गाड़ी स्टेशन के सामने आकर रुक गई। प्रेरणा ने भरपूरिया को प्रतीक्षा करने का आदेश देकर प्लेटफार्म का टिकट लिया और उस प्लेटफार्म पर पहुँच गई जहाँ लखनऊ की गाड़ी खड़ी थी। एक के बाद एक डिब्बों पर नज़र दौड़ाती

हुई वह आखिर इंजन के समीप लगे हुए डिब्बे के पास जाकर खड़ी हो गई। कुछ सोचकर फिर उसने डिब्बे में प्रवेश किया और जीवन के हाथ से समाचार-पत्र छीनते हुई बोली, "उठिये, ये फिर पढ़ लीजियेगा।"

जीवन को जोर का धक्का-सा लगा मानो आसमान गिर पड़ा हो। वह बोला, "प्रेरणा देवी ! आप ?"

"हाँ उठिये, बाहर निकल आइये।"

"लेकिन गाड़ी छूटने वाली है।"

"तभी तो कह रही हूँ कि जल्दी कीजिये। गाड़ी के छूटने में केवल आधा मिनट बाकी है।"

"क्यों, क्या बात है ? कुछ बताइये तो सही।"

"ओह" प्रेरणा ने झुँझलाकर कहा, "आप यहाँ हँसी करवायेंगे" और जीवन की अटैची और कम्बल उठाकर वह जीवन को घसीटती हुई सी बाहर ले आई। सिगनल हो चुका था। जोर की सीटी देकर गाड़ी लड़खड़ाती-सी चल दी।"

६

●●●●

दूसरे दिन रविवार था। सुबह के सात बज चुके थे पर जीवन अभी करवटें बदल रहा था। उसकी अधखुली लाल आँखें इस बात का संकेत दे रही थीं कि नींद अभा पूरी नहीं हुई थी। जो कुछ कल गुजरा, उस पर जीवन को

विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन आँखें खुलने पर उसका सन्देह लुप्त हो गया। जो कुछ व्यवस्था कल प्रेरणा कर गयी थी वह अभी भी आँखों के सामने थी। वह एक आधुनिक ढंग से सजे हुए कमरे में पलंग पर लेटा हुआ था और उसके सामने एक मेज और चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। दीवार पर बड़े सुन्दर फ्रेम के अन्दर महात्मा गांधी, जवाहरलाल और टैगोर के चित्र टँगे हुए थे। कोने पर कागजी फूलों के गुलदस्ते रखे हुए थे। जीवन ने पड़े-पड़े एक नजर सारे कमरे पर डाली और आँखें मूँद लीं। कल स्टेशन से लेकर सोने के समय तक की सारी घटनायें चलचित्र की भाँति उसके सामने आती गईं। प्रेरणा जीवन को स्टेशन से वापस लाकर फतेहपुरी के पास एक होटल में उसकी रहने की व्यवस्था कर चली गई थी। उसके पूछने पर भी प्रेरणा ने उसे कुछ नहीं बताया। जब दोपहर बाद वह फिर आई तब भी जीवन को इस अद्भुत लीला का कोई स्पष्टीकरण नहीं मिला। जीवन ने सारी घटनाओं को मन ही मन दुहराया कि वह कुछ अर्थ निकाल सके, पर जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया तो उसने ज़ोर से अपनी कलम की निब अपनी हथेली पर चुभो दी इसलिये कि उसे इतना तो पता लगे कि वह जाग्रत अवस्था में है या नहीं और जब उसे पीड़ा का अनुभव हुआ तो उसे विश्वास हो गया कि जो कुछ वह देख रहा था वह सब सच और वास्तविक था न कि स्वप्न या भ्रम। नियति की कैद में बन्द संध्या के ७ बजे तक वह उस कमरे में बैठा रहा जबकि आखिर हसती हुई प्रेरणा को उसने अपनी ओर आते देखा।

"प्रेरणा देवी, मेरा बरेली जाना कब निश्चित कर रही हैं आप?"

"बरेली नहीं, अब तो सारी व्यवस्था आगरे में हो गई है।"

"चलो अच्छा हुआ, नजदीक रहने से कभी-कभी आपके दर्शन तो हो जायेंगे। लेकिन चलना कब है?"

"आप भोजन कर लीजिए फिर अभी लिये चलती हूँ।" प्रेरणा मुस्कराई। और सचमुच जब जीवन भोजन से निवृत्त हो चुका तो उसने एक टैक्सी को तैयार खड़ी पाया। प्रेरणा के साथ-साथ आकर वह उसमें बैठ गया और कुछ ही मिनटों में टैक्सी उन्हें करोल बाग ले आई। एक सुन्दर मकान में

प्रवेश करती हुई प्रेरणा ने दरवाजे का ताला खोला और चाबी का गुच्छा जीवन के हाथ में देती हुई बोली, "आप आगरा जाने की बात कर रहे थे यह उसकी पहली मंजिल है। समय-समय पर आपसे मिलने आती रहूँगी। अब मैं जाती हूँ।"

पूर्व इसके कि जीवन कुछ बोलता, प्रेरणा उसी टैक्सी में बैठकर वापस चली गई। वह सचमुच एक पागल की भाँति कुछ देर तो वहीं पर खड़ा रहा, फिर उसने कमरे में प्रवेश कर बिजली का स्विच दबाया और कमरे का निरीक्षण करने लग गया। उस कमरे के अतिरिक्त एक और कमरा भी था। स्विच दबाने पर उसे पता चला कि वह एक बड़ा-सा गुसलखाना था जिसका आवश्यकता पड़ने पर रसोई के रूप में भी उपयोग किया जा सकता था। सब देखभाल करने के बाद उसने कपड़े बदले और भगवान का नाम लेकर पलंग पर लेट गया। न मालूम कितनी रात बीतने पर उसे नींद आई। अस्तु...

सुबह जब उसकी आँखें खुलीं और कमरे पर एक सरसरी नजर डालकर उसने पिछले दिन की याद ताजी की तो उसने चाहा कि वह कुछ देर तक और नींद लेले ताकि जब वह उठे तो अपने को पूर्ण रूप से स्वस्थ-चित्त पा सके। लेकिन साढ़े सात भी नहीं बजे थे कि द्वार पर दस्तक सुनाई दी। आँख मलते हुए उसने द्वार खोले और सामने प्रेरणा को खड़ी पाया। वह उसी तरह आँख मलते हुए प्रेरणा को देखता रहा, पर जब उसको इस प्रकार खाया हुआ सा देख हँसी को रोकती हुई प्रेरणा स्वयं अन्दर आ गई तो जीवन पलंग पर बैठते हुए बोला—

"प्रेरणा देवी! अभी तो मेरी नींद भी पूरी नहीं हुई फिर किस प्रकार आपको विश्वास दिलाऊँ कि अभी इतनी शीघ्र फिर सफर के लिये तैयार नहीं हूँ।"

प्रेरणा सब समझ रही थी कि जीवन अपनी नई स्थिति से काफी परेशान था और संभवतः चाहता था कि जो कुछ हो रहा था वह अब अधिक देर तक रहस्य न बना रहे। फिर भी वह विनोद करते हुए बोली, "जीवन बाबू! यात्रा में तो शायद ही कभी पूरी नींद सोने को मिले। भला कितनी आश्चर्य की बात है कि अभी पहली मंजिल भी आप पार न कर पाए कि कम सोने

की शिकायत कर रहे हैं। फिर क्या आशा की जा सकती है कि आप कोई लम्बी यात्रा पूरी कर सकेंगे ?"

जीवन लाचारी की हँसी में बोला, "पर प्रेरणा देवी ! जब कुछ भी निश्चित न हो कि यात्रा की मंजिल कौनसी है—किन-किन पड़ावों से मार्ग तय करना है, तो आलस्य आ ही जाता है।"

प्रेरणा हँसती हुई बोली, "बताया न आपको कि आगरे जाना है।"

जीवन गम्भीर हो बोला, "लेकिन प्रेरणा देवी ! मैं सचमुच ही पागल नहीं हूँ। मैंने ठीक ही लखनऊ की गाड़ी पकड़ी थी। एक अच्छे भले इन्सान को यदि आप पागल बनाना चाहती हैं तो आप केवल बचपना ही तो कर रही हैं। मैं मानता हूँ कि आपके लिए यह एक खेल हो जाएगा पर मेरा तो जीवन ही नष्ट हो जाएगा, सोचिए तो।"

प्रेरणा की पैनी दृष्टि जीवन पर केन्द्रित थी। सहम कर उसने आँखें नीचे कर लीं। कुछ देर चुप रह कर बोली, "जीवन बाबू ! इसे आप पागलपन कह रहे हैं ? मैं नहीं समझ सकी कि जिन यात्रियों को हम सफर करते हुए देखते हैं क्या सब पागल ही हैं। और फिर भला आपसे खेल करने का मुझे अधिकार ही क्या है। गुलाब का फूल होता है, बजाय फेंकने के सिर पर रख दिया। यदि मैंने भी इस फूल से अपनी वेणी का शृंगार करना चाहा तो कौनसा बचपना कर लिया ?"

"फूल सौरभमय होता है प्रेरणादेवी ! वह सौरभ लुटाता है। उसका स्थान सिर पर ही है, यह मैं भी मानता हूँ। पर आपका बचपना अभी इस बात की आज्ञा नहीं देता कि आप फूल और काँटे में भेद कर सकें।" जीवन बोला।

"रहने दो जीवन बाबू ! आप एक ही चीज कई बार दोहरा चुके हैं। कहीं आपकी जैसी हीन भावना मेरे अन्दर भी न पैदा हो जाय। इस समय तो आपके लांछन ने मुझे केवल लज्जित ही किया है, कहीं मेरे सितारे इतने हीन न हो जायें कि मैं भी स्वयं से घृणा करने लगूँ।"

प्रेरणा की तीव्र वेदना को लक्ष्य कर जीवन अचानक शिथिल पड़ गया। उसे लगा मानो उसके पैने शब्दों से प्रेरणा का हृदय कुछ इस कदर छलनी हो

गया कि वह अन्दर-ही-अन्दर चीत्कार कर उठी हो और शर्म से जैसे अपना सन्तुलन बनाये रखा हो। पश्चात्ताप से उसका अन्तःस्थल रो उठा। अपना समस्त भोलापन समेटकर वह बोला, "मेरे शब्दों से जो वेदना आपको मिली है प्रेरणा देवी ! उसके लिये मैं भी अब बहुत दुःखी हूँ पर विश्वास कीजिये कि आपके विवेकपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति प्रयत्न करने पर भी मेरे अन्दर सन्देह नहीं हो सकता। मैं तो अपनी हीन अवस्था पर स्वयं कुण्ठित हूँ। न मालूम आप मुझे क्या समझ रही हैं ? इसी पर मुझे आश्चर्य है।"

प्रेरणा की आँखों में चमक दिखाई दी। उसको लक्ष्य करते हुए जीवन फिर बोला, "मैं तो वह रज-कण हूँ जिस पर आज तक ठोकरें ही लगती रही हैं। यदि कभी ऊपर उठ गया तो क्या आँखों की किरकिरी न बन जाऊँगा ?"

प्रेरणा की आँखों से आँसू छलक पड़े। आतुर स्वर में बोली, "नहीं जीवन ! यह भी तो सम्भव है कि उस रज से किसी की माँग भर जाय।"

"यह कैसे होगा प्रेरणा ? एक चुल्लू पानी से क्या कभी किसी का मैल कटा है ?"

"मैल ही नहीं कटा देवता ! सागर-का-सागर शोषित हो गया। वरदान दो कि तुम्हारे चरणों में पड़ी रहूँ। ज़रा भी यदि तुम्हारे अन्दर परमार्थ की भावना हो तो एक क्या दस अगस्त्य मुनि पैदा हो जायें। बड़े बनो जीवन ! इस समय थोड़ा-सा बड़े बन जाओ। बाकी फिर और बड़ा मैं बना लूँगी।"

"प्रेरणा देवी !" जीवन के मुख से हल्का-सा स्वर निकला।

"हाँ जीवन ! शिवजी ने तो परमार्थ के लिये ही अपने अन्दर विष इकट्ठा कर रखा था—तुमने न मालूम क्यों यह कूड़ा-करकट संचय कर रखा है कि जब भी तुम्हारे पास आओ तुम्हारे अन्दर से गन्ध निकलेगी—हीन भावना। छी-छी, फेंक दो इसे और ऊपर उठो ताकि किसी को तुम्हारा आश्रय मिले।"

"रुको प्रेरणा ! रुक जाओ। तुम मुझे बड़ा बनने को कहती हो—बन जाऊँगा, पर जो हथौड़े मुझ पर पड़ते हैं—क्या उनका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ? मार बुरी होती है—मैं तो क्या हिमालय पर भी वज्रपात होते रहे तो वह भी धँस कर समुद्र में चला जायेगा।"

"समझती हूँ सब और यह भी जानती हूँ कि हिमालय पर वज्र पड़ते ही हैं परन्तु वह समुद्र में धँस जाने की अपेक्षा सम्भवतः आज पहले से भी ऊँचा हो गया है। मार से कोई छोटा नहीं बनता, मार का डर छोटा बना देता है।"

"ओह!" जीवन ने झुँझलाकर कहा, "तर्क ही से यदि सारी समस्याओं का हल मिल जाय तो वर्तमान युग की विभीषिकायें देखने को न मिलें। तर्क कुछ और कहता आया है प्रेरणा देवी और दुनिया का व्यवहार कुछ और रहा है।"

प्रेरणा ने भी तैश में आकर कहा, "अगर यह बात है तो फिर यह भी सच है कि मनुष्य की धारणा कुछ और रहती है और तर्क वह कुछ और ही करता है अन्यथा उसके विश्वास में इतनी कमी न आती कि वह सच को सच न समझ सके।"

"प्रेरणा!" जीवन चकित हो बोला।

"रहने दो जीवन बाबू! हठ तर्क की सुन्दरता नष्ट कर देती है।"

जीवन मौन हो प्रेरणा को देखता रहा। उसके मुख-मण्डल पर प्रशान्त तेजस्वी भाव व्याप्त था। जीवन को लगा कि पुंजित प्रभा से उज्ज्वल प्रेरणा के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब-सा उस पर भी पड़ रहा था और वह मानो ग्रीष्म में गरम थपेड़े और हेमन्त का तुषारपात सहन करने के बाद अब वसन्त की छटा निहार रहा था। जीवन ने अनुभव किया कि यदि यह सब प्राकृतिक और केवल-मात्र ऋतु-परिवर्तन है तो फिर क्यों वास्तव में वह जिन्दगी के प्रति अपनी आस्था कम करें।

"तुमने मुझे खोखला कर दिया है प्रेरणा! मेरे पास न अब अपने विचार रहे न अपना विश्वास। चोरी की कला में तुम कितनी दक्ष हो।"

प्रेरणा के कपोलों पर सरसरी लालिमा दौड़ गयी। झेंप से सिर झुकाकर लजीली आवाज में बोली, "तुम्हें लांछन लगाने के सिवा आता ही क्या है?"

जीवन खिलखिलाकर हँस पड़ा। और प्रेरणा के अधरों में भी संयमित मुस्कराहट नाच उठी। कमरे पर नज़र डालती हुई फिर वह बोली, "कुछ चाय-पानी भी पिलाओगे या डाँट-डँपट कर ही निकाल दोगे?"

जीवन हड़बड़ाता-सा उठा मानो वह सचमुच ही अपना कर्तव्य भूल चुका

था। आलमारी से स्टोव निकालकर जब वह चायदानी लेकर गुसलखाने की ओर जाने लगा तो प्रेरणा ने उसके हाथ से चायदानी छीन ली और बोली, "यह नटियों की लीला रहने दो, जानती हूँ कि तुम कितना काम कर सकते हो।"

जीवन कुछ कहता पर उससे पूर्व प्रेरणा गुसलखाने में चली गई थी। केतली में पानी डालकर वह कमरे में आई और स्टोव जलाकर उस पर केतली रख दी।

जीवन हँस रहा था। आलमारी की ओर इशारा कर वह बोला, "पर मैं भी तो कुछ करूँ।"

"सो जाओ, "अभी तुम्हारी नींद जो पूरी नहीं हुई।"

जीवन लाचार हो पलंग पर बैठ गया। वह देख रहा था कि प्रेरणा बड़ी रुचि के साथ चाय बनाने में लगी थी। कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे। जब उचट कर प्रेरणा ने जीवन की ओर देखा तो दोनों मुस्करा उठे। प्रेरणा ने दोनों घुटनों के बीच अपना सिर रख लिया।

चाय के तैयार होने पर जब प्रेरणा ने प्याली उठाई तो जीवन उसी अर्ध-मूर्च्छित अवस्था में कुछ सोचते हुये मुस्करा उठा। यह देखकर प्रेरणा कट सी गई। चाय की प्याली उसके हाथ से गिरते-गिरते बची। कृत्रिम क्रोध प्रकट करती हुई वह बोली, "भगवान कसम—अभी चली जाऊँगी।"

"लेकिन मैं क्या कर रहा हूँ?" हँसते हुये जीवन बोला।

"ऊँह" प्रेरणा बुदबुदाई।

अपने लिये एक और प्याली में चाय बनाकर वह कुर्सी पर बैठ गई।

चाय की चुस्की लेता हुआ जीवन बोला, "अच्छा प्रेरणा! यह तो बताओ, यह मकान कितने में तय किया है? यह साज-सजावट भी है।"

"कुछ भी नहीं—मेरी सहेली का है। बेकार पड़ा था। किराया वह मुझसे क्यों लेंगे। उनके और हमारे बीच ऐसा आदान-प्रदान तो चलता ही है।"

"तो यह तुमने अपने लिये लिया है?"

प्रेरणा कुछ सोच कर बोली, "तुम्हारे लिये ही लिया है पर इन बातों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है?"

"हाँ बाबा हाँ," खीझ कर प्रेरणा बोली, "जब भी देखो परेशान करते रहते हो। जब मैंने कह दिया कि उनके और हमारे बीच ऐसी छोटी-मोटी बातें नहीं चला करतीं तो फिर आगे बातें बढ़ाने से लाभ ?"

जीवन मानो मात खाकर चुप हो गया। किन्तु कुछ सोच कर बोला—

"प्रेरणा ! मैं मुफ़्त के मकान में रहना पसन्द नहीं करता। इस तरह तो मेरे हाथ-पैर टूट जायेंगे। भला यह भी कोई बात हुई ?"

प्रेरणा ने गौर से जीवन को देखा। बोली, "मेरे हाथ-पैर तुम्हारे अपने नहीं हैं जीवन ? कभी-कभी यदि इनसे भी काम ले लिया करो तो क्या अनर्थ हो जायेगा ?"

जीवन दुःखी हो बोला, "ओह प्रेरणा ! तुम्हें तो जरा-सी बात पर ठेस पहुँच जाती है। तुम मेरी निधि हो। तुम्हारा अनुराग पाकर मेरा सब कुछ पूरा हो गया। पर इसका तात्पर्य यह तो नहीं है कि मैं उसकी महत्ता को छोटा करूँ। इससे वह छोटी होती है प्रेरणा। तुम समझती क्यों नहीं हो ?"

प्रेरणा ने मुँह लटका दिया जैसे वह कुछ न समझ सकी हो। जीवन बोला, "अभी तुम्हारा लिहाज तुम्हारा अपना नहीं है, तुम्हारे पिताजी और समस्त परिवार का लिहाज है।"

प्रेरणा ने गर्दन झुका ली और बोली, "अच्छा ३५ रुपये मुझे देते जाना। मैं पहुँचा दूँगी।"

"लेकिन तुम क्यों ? मैं स्वयं क्यों न पहुँचा आऊँ ?"

"यह नहीं होगा," प्रेरणा ने दृढ़ता के साथ कहा। जीवन आश्चर्य से प्रेरणा को देखने लगा।

"अजीब लड़की है यह भी।" उसके मुख से धीमी आवाज आई।

अपने सन्दूक से ३५ रु० निकाल कर प्रेरणा को देते हुये बोला, "तुम्हारी हठ से परास्त होकर इस माह का किराया तो तुम्हें ही दे रहा हूँ, पर भविष्य से तुम्हारी हठ नहीं चलेगी।"

प्रेरणा ने मुस्कराते हुए रुपये अपने पर्स में रखे और धीरे से कमरे से निकल गई। कार में बैठने से पूर्व उसकी मर्माहत दृष्टि जीवन पर पड़ी जो

उसकी ओर देख रहा था। दोनों के हाथ अभिवन्दना में उठे और गाड़ी घुर्र···
आवाज कर चल पड़ी।

१०

एक दिन और कार्यालय में जीवन अभी अपना काम समाप्त कर उठ ही रहा था कि उसने प्रेरणा को सामने प्रतीक्षा में खड़ी पाया। प्रेरणा ने उसके हाथ से बैग लिया और अगवानी करती हुई जीवन को नीचे सड़क पर ले आई, जहाँ उसकी गाड़ी खड़ी थी। गाड़ी स्टार्ट करते हुए प्रेरणा बोली, "जीवन! यदि मैं तुमसे आज पिक्चर चले चलने का अनुरोध करूँ तो क्या तुम स्वीकार कर सकोगे?"

जीवन ने प्रेरणा की ओर देखा और बोला, "अस्वीकार करने की तो कोई बात नहीं पर तुम्हें क्या यह अनुचित न लगेगा?"

"इसमें अनुचित कौनसी बात है?"

"किसी पुरुष के साथ कुलीन परिवार की लड़कियों का, विशेषतया तरुणावस्था की लड़कियों का घूमना-फिरना हमारी भारतीय सभ्यता हेय समझती है।" जीवन ने रुकते-रुकते-कहा।

प्रेरणा चुप रही। कुछ रुक कर बोली, "हमारी सभ्यता का इतना दृढ़ अंकुश कुछ भलाई के लिये ही होगा। बता सकते हो जीवन कि इस अंकुश से हमारे स्त्री समाज का व्यक्तित्व कुण्ठित हुआ है या विकसित?"

"अंकुश विकास के लिये नहीं होता अपितु बुराई को रोकने के लिये होता है प्रेरणा। यदि इससे कुछ जड़ता आ जाती है तो वह वांछनीय है।"

"पर आपके साथ घूमने में मेरा कौनसा अहित होगा ?"

"जिस अहित की सामीप्य से सम्भावना हो सकती है; क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि युवक समुदाय की इच्छायें हृदय और मन दोनों से नियन्त्रित होती हों। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि युवक अथवा युवतियाँ विवेक नहीं रखते। उनका विवेक सुलझा हुआ होता है पर साथ ही उससे अधिक उग्र होती है उनकी भावुकता। परिणामस्वरूप तुम जैसी विवेकशील युवतियों को भी एक ऐसे संघर्ष में उलझना पड़ता है जिसे हम हृदय और मन का संघर्ष कहते हैं। प्रेरणा ! तुम सोचती होगी कि मेरी चिन्तनशीलता किस पराकाष्ठा तक पहुँची हुई है और तुम खीझ उठती होगी कि प्रत्येक बात में किस सीमा तक मीन-मेख का हिसाब करता रहता हूँ। यह उन परिस्थितियों की देन है प्रेरणा, जिनमें मैं आज तक रहता आया हूँ। तुम्हारे अन्दर उत्साह है। उसके बल पर आगे बढ़ती हो और कम ही ऐसे अवसर आयेंगे कि तुम्हें असफलता का मुँह देखना पड़े या किसी प्रताड़ना का अनुभव हो। पर मेरे लिये एक भी ग़लत पग उठाना अपनी टाँग तोड़ना ही है…" जीवन अभी बोल ही रहा था कि प्रेरणा बीच में ही टोक कर बोली—

"जीवन बाबू ! मैं तुम्हारे साथ कोई तर्क थोड़े ही करूँगी। जो कुछ तुम कर रहे हो, उसमें से कुछ ठीक और प्रासंगिक है और कुछ प्रसंग के बाहर भी। मैं सब बातों को छोड़कर इतना ही कहना चाहती हूँ कि तुम्हारे स्वभाव में कुछ भीरुता अवश्य आ गई है अन्यथा इस छोटी-सी बात का कि तुम्हारे साथ मेरा चलना-फिरना उचित है अथवा अनुचित, मन और हृदय के संघर्ष के साथ सम्बन्ध न जोड़ते। यदि जीवन ! तुम यह समझते हो कि तुम्हारे निकट सम्पर्क से मेरे जीवन में विकार आ सकता है तो तुम्हें सम्भवतः मेरी जैसी बहुत-सी लड़कियों के उस तुच्छ से चारित्र्य-बल का ठीक रूप से अध्ययन करने का अवसर ही नहीं मिला। दो-चार जल-कणों से हमारे अंदर केवल सोते फूटते हैं ; तूफान नहीं पैदा होते। तुष्टि के मोह से हर कोई चूल्हा जलाता

है पर उससे मकान भस्म नहीं होता। अतिक्रमण केवल वहाँ होता है जहाँ चारित्र्य-बल का अभाव हो या फिर विवेक बिल्कुल लुप्त हो।

"प्रेरणा तुम अब खुले मैदान में आ गई हो।" जीवन ने व्यंग किया।

"आना चाहिये। मेरा और तुम्हारा परिचय अब काफी पुराना हो चुका है। तुम अपनी गाँठ कभी नहीं खोलोगे।"

जीवन गम्भीर हो बोला, "मेरी कोई गाँठ नहीं है, कुछ शंकाएँ हैं। क्या तुम्हारा-मेरा सम्पर्क तुम्हारे माता-पिता को भी मान्य है? और यदि नहीं तो क्या तुम अतिक्रमण नहीं कर रही हो?"

"अतिक्रमण? यह अतिक्रमण कैसा भला? मैंने अपनी मर्यादा पर कोई चोट थोड़ी ही की है। अपनी सीमाओं के अन्दर हूँ। यदि तुम्हारा सामीप्य मेरे माता-पिता को इस समय अमान्य हो और इसे ही तुम अतिक्रमण कहते हो तो तुम इस शब्द के दूसरे अर्थ कर रहे हो। इसे तो मतभेद कह सकते हैं जो सर्वत्र है...और होता आया है...मतभेद में यदि हठ न हो तो उससे परिष्कृत निष्कर्ष ही निकलते हैं।"

"मतभेद से क्या तूफ़ान नहीं पैदा होते?"

"ऐसे तूफ़ान नहीं जो शान्त न हो सकें।"

"यह संदिग्ध विश्वास ही तो है।"

"विश्वास भी भला संदिग्ध होता है?"

जीवन ने मुस्करा कर आँखें मूँद लीं। विचारों में तल्लीन वह तब तक न मालूम क्या-क्या सोचता रहा जब तक कि प्रेरणा ने सिनेमाघर के बाहर आकर गाड़ी न रोकी। शीघ्रता से प्रेरणा बोली, "तुम्हारे लिये भी टिकट लूँ न?"

"यदि पैसों का लोभ न हो तो ले लो।"

"जीवन! पैसे तो तम्हें ही देने पड़ेंगे, इसीलिये तो साथ लाई हूँ।"

जीवन ने जेब से कुछ रुपये निकाल कर हँसते हुये प्रेरणा की ओर बढ़ा दिये और प्रेरणा भी बिना कुछ कहे टिकटघर की ओर बढ़ी और दो टिकटें लेकर जीवन को सिनेमा घर के अंदर ले गई।

पिक्चर समाप्त होने पर जब दोनों जीवन के निवास पर आये तो प्रेरणा बोली, "जीवन बाबू ! यदि कहो तो आज का भोजन भी तुम्हारे लिये घर पर ही तैयार कर दूँ। तुम्हें खिला कर अपनी एक इच्छा पूरी कर लूँ और साथ में भोजन बनाने में अपनी दक्षता की भी परीक्षा कर लूँ।"

जीवन ने मौन होकर उसकी ओर देखा और गद्‌गद् होकर उसकी ओर चाबियों का गुच्छा बढ़ा दिया।

जीवन ने यद्यपि एक-दो व्यक्तियों के गृहस्थ के अनुरूप सारी व्यवस्था कर रखी थी पर फिर भी भोजन वह होटल में ही करता था। प्रेरणा ने जब भोजन का थाल उसके सामने रखा तो वह मुग्ध-दृष्टि से भोजन को देखता ही रहा। प्रेरणा ने उसकी दृष्टि को लक्ष्य किया और आत्मतुष्टि की भावना से विभोर हो गरदन नीचे को झुका ली। वह समझ गई कि उसके पकाए हुए भोजन की जीवन ने कल्पना भी नहीं की थी। सहमे हुए जब उसने गरदन ऊपर उठाई तो जीवन को अपनी ओर घूरते हुए देखकर वह लजा गई। अपने सिर को दोनों घुटनों के बीच रखती हुई तुनक कर लजाती हुई आवाज़ में बोली, "अब शुरू कीजिए न।"

"क्या शुरू करूँ? भूख मिटाऊँ या पहले प्यास बुझाऊँ? चीज़ें दोनों अच्छी हैं।" जीवन बोला।

"क्या? अभी एक ग्रास भी मुँह में नहीं डाला और पानी पिओगे?"

"पानी नहीं सौंदर्यपान। आँखों की प्यास है न···"

प्रेरणा ने झटककर कृत्रिम क्रोधित-दृष्टि से जीवन की ओर देखा पर तुरन्त ही द्विगुणित लज्जा से सिमट कर गरदन अपने घुटनों के बीच कर ली। जीवन को नारी का यह दूसरा रूप देखने का मौक़ा मिला। कुछ समय पूर्व प्रेरणा प्रगूढ़ भाषा में उसके पौरुष को चुनौती दे रही थी और अब वह स्त्री-सुलभ लज्जा से सिमट कर मधुर भावों का सृजन कर रही थी। आग और पानी को उर में छुपाए भारतीय स्त्रीत्व का साक्षात् रूप देखकर जीवन रोमांचित हो उठा। वातावरण का उल्लास और आत्मीयता की इस अनुपम अनुभूति से विभोर हो उसकी भावुकता खिलवाड़ करने को मचल उठी। एक ग्रास कचौड़ी का लेकर चुपके से उसने प्रेरणा के मुँह

में ठूँस ही तो दिया और फिर अपनी चौकी पर आसीन हो उस भावुकता-जनित प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लग गया। पर प्रेरणा उसी तरह घुटनों में मुँह छिपाये सिमट कर बैठी रही।

जीवन को नहीं पता था कि उस निश्चेष्ट मौन के आवरण में उष्ण रक्त की धारा सरिता की तीव्र तरंगों की भाँति किस क़दर प्रेरणा की समस्त देह में एक झंझावत सा उत्पन्न कर गई थी जिसका आभास केवल उसकी नासिका से निकलते हुये उष्ण श्वासों और कपोलों पर तैरते हुए अश्रुकणों से ही हो सकता था। पर वह तो एक फुट दूर अपनी चौकी पर बैठा हुआ था। अनुराग फिर भी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर स्थित-प्रज्ञ हो जाता है और मुँह से न बोलकर मन से बोलता है। मन की इसी मौन भाषा में जो सन्देश जीवन को प्राप्त हुआ उसी की खुमारी में भोजन से निवृत्त हो वह बैठक के कमरे में चला आया। और प्रेरणा की प्रतीक्षा करने लगा। जब प्रेरणा आई तो जीवन बोला, "इस आतिथ्य के लिये कुछ पुरस्कार की आशा रखती हो प्रेरणा?"

प्रेरणा समीप की कुर्सी पर बैठती हुई बोली, "क्या पुरस्कार दोगे?"

"जो तुम माँगो।"

"और यदि कृपणता दिखाई तो?"

"नहीं प्रेरणा! मेरे पास अपना कुछ न रहा हो पर जो तुमने दिया है वह इतना है कि कृपण बने रहने से वह जरा भी हल्का न होगा। मैं तो स्वयं चाहूँगा कि थोड़ा-थोड़ा उसमें से बाँट लूँ। दान करने से वैसे भी महानता बढ़ती ही तो है।"

जीवन के उत्तर से प्रेरणा की नजर झुक गई। हाथ की उँगलियों से खेलती हुई वह कुछ क्षण निरुत्तर ही रही। जब वह चलने को खड़ी हुई तो उसकी गम्भीर निगाह जीवन के मुख पर पड़ी और फिर क्रमशः अपनी उँगली पर, जिस पर एक अँगूठी चमक रही थी। अँगूठी निकाल कर उसने जीवन की उँगली में पहना दी। कुछ मौन क्षणों के बाद फिर वह धीरे-धीरे मकान की सीढ़ियों पर से उतर कर गाड़ी में बैठ गई और ऊपर छज्जे से जीवन की शून्य निगाहें उसका पीछा करती रहीं।

११

और एक दिन जब जीवन शान्ति से मिलकर अपने निवास पर पहुँचा तो उसका हृदय और मन एक अव्यक्त वेदना से मथा जा रहा था। शान्ति और प्रेरणा, दोनों की उसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। प्रेरणा की श्रद्धा आगे बढ़ कर प्रेम में परिणत हो गई थी। अपनी सुखद कल्पनाओं के पुष्पों को पिरो कर वह न मालूम कौनसी जयमाला उसके गले में डालने को आतुर थी कि एक झटके से वह टूट गयी और सारी कल्पनाओं के पुष्प टूक-टूक होकर बिखर गए। जीवन को प्रेरणा की दी हुई अँगूठी वनिता ने प्रेरणा को लौटा दी थी। इस छोटी सी बात ने प्रेरणा पर बिजलियाँ गिरा दी थीं और जीवन को जैसे एक बहुत ऊंचे पहाड़ से दूर नीचे खाई मे लाकर पटक दिया था। इस विस्फोट से यद्यपि आहत ये दो ही प्राणी हुए थे पर उस के छींटे डा० परिवार पर और तहलका सारे समाज में मच गया था। जीवन जैसे निर्बल व्यक्तिय के लिये उस पीड़ा को सहन करना एकदम कल्पना से दूर की बात थी। वह तो इस विषय पर ठीक तरह से सोचने की शक्ति भी खो बैठा था। अँगूठी में प्रेरणा का प्यार साकार था। उसमें उसकी समस्त आत्मीयता पुंजीभूत थी—सारी कल्पनाएँ, सारी मधुर भावनाएँ प्रतिष्ठित थीं। लेकिन वही अँगूठी आज सारे समाज में चर्चा का विषय बन गई थी। डाक्टर परिवार ने सुना कि प्रेरणा की अँगूठी वनिता की उँगलियों में नाच रही थी तो प्रेरणा पर घड़ों पानी पड़ गया, पर उसे विश्वास नहीं हुआ

कि जीवन ऐसा कर सकता है। पूर्व इसके कि वह जीवन से कुछ पूछती, उस के पिता डा० स्वरूप अन्धड़ बन कर वनिता से वह अँगूठी वापस ले आए थे।

वनिता ने भयभीत हो डा० स्वरूप को बतलाया था कि वह अँगूठी उसे उपहार में उसके प्रेमी से प्राप्त हुई थी और वह प्रेमी था जीवन।

जीवन के माथे पर पसीने के कण छटपटा गये। हे भगवान् ! उसके चरित्र पर इतना बड़ा धब्बा ! कैसे मिटायेगा वह इस धब्बे को बात ? यहीं पर समाप्त नहीं होती थी। एक तो करेला, उस पर नीम चढ़ा। वह एक पथ-भ्रष्ट स्त्री का प्रेमी और अँगूठी का चोर समझा जा रहा था। चोरी की अवश्य थी उसने, पर अँगूठी की नहीं, अँगूठी की मालकिन के हृदय की। लेकिन अब किस मुँह से वह व्यक्त कर सकता था प्रेरणा के प्रति अपने उस प्रेम को जिसकी साक्षी वह अँगूठी थी। प्रेरणा के साथ अपना सामीप्य प्रकट कर केवल प्रेरणा के चरित्र को लांछित करना था। जीवन सबसे अधिक व्यथित था इसी बात की कल्पना कर कि प्रेरणा को इस घटना से कितना दुःख पहुँचा होगा। प्रेरणा के प्रेम की प्रतीक उस अँगूठी को वनिता को प्रेमोपहार के रूप में देना जीवन के चरित्र को तो कलुषित करता ही था, साथ में इससे प्रेरणा के ठोस व्यक्तित्व पर भी आँच आती थी। सबसे दुःख की बात यह थी कि शान्ति भी यह विश्वास करने को तैयार नहीं थी कि वनिता का कथन मिथ्या था और तथ्य यह था कि अँगूठी किसी रहस्यमय ढंग से जीवन से अलग हुई थी। वह ऐसी असहाय अवस्था में अपने को पा रहा था कि तनिक भी दोषी न होकर दोषयुक्त आरोप से किसी भी भाँति मुक्त नहीं हो सकता था। पर अभी तक जीवन स्वयं भी यह अनुमान न लगा सका था कि अँगूठी आखिर उससे अलग हुई कैसे ? जीवन की आखें सिर की पीड़ा से बन्द होने लगीं और वह शिथिल होकर सब कुछ भविष्य पर छोड़ कर पलंग पर लेट गया। पर तभी उसे मोटर की आवाज़ सुनाई दी। छज्जे में खड़े होकर उसने डा० स्वरूप और प्रेरणा को कार से उतरते हुए देखा। जीवन ने अपने आप को संयत किया मानो जो भी होने वाला हो, उसके लिये वह सन्नद्ध हो गया। उसने सोचा कि जब यही सब कुछ दुनिया में होता है, तो वह उसे रोक भी

तो नहीं सकता। केवल उसके पग न डिगने चाहियें जिन्हें वह आज तक सचाई के साथ आगे बढ़ाता रहा। और जब सत्य की ओर उसका ध्यान गया तो उसे लगा मानो उसका सारा आत्मबल, जिसका कुछ घड़ी पूर्व उसके अन्दर नितान्त अभाव था, वापस लौटकर उसे बल दे रहा था। उसने द्वार खोला और द्वार पर खड़े डा० स्वरूप को भीतर आने का आदरपूर्ण संकेत किया। कुर्सी की ओर इशारा कर वह सामने के पलंग पर बैठ गया। कुर्सी पर बैठते हुए डा० स्वरूप ने एक अन्य कुर्सी की ओर इशारा कर प्रेरणा को बैठने को कहा और जीवन को संबोधित करते हुये बोले, "जीवन ! सुना है प्रेरणा की अँगूठी की चोरी हुई है।"

डा० स्वरूप ने बिना कोई भूमिका बाँधे आक्रमण कर दिया था। जीवन अवाक् हो प्रेरणा को देखने लग गया पर प्रेरणा का मुख उसे और भी गम्भीर लगा। तभी उसे डा० स्वरूप की गर्जना सुनाई दी, "प्रेरणा की ओर मुँह न कर जेल की चारदीवारी का ध्यान करो जीवन ! बताओ तुम्हारे पास अँगूठी कहाँ से आई ?"

"डा० साहब ! अँगूठी वनिता के पास मिली है। मैं क्या उत्तर दूँ कि उसके पास अँगूठी कैसे चली गई ?"

"हूँ, तुम्हारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है; यही न ?

"जी" जीवन का धीमा-सा उत्तर था।

"देखो जीवन ! मैं नहीं चाहता कि बात बढ़ जाय। अँगूठी वनिता ने वापस लौटा दी है और मामला सब यहीं पर समाप्त होता है यदि तुम सारी बातें साफ़-साफ़ कह दो। इतना ध्यान रहे कि मैं अपराध से अधिक, अपराध की भावना से घृणा करता हूँ।"

"तो आप समझते हैं कि इस काण्ड में मेरी अपराधी भावनाओं का हाथ है ?"

"बिलकुल, जब तक कि तुम यह सिद्ध नहीं कर पाते कि वनिता का कथन मिथ्या है।"

"डाक्टर साहब ! मैं बता चुका हूँ कि अँगूठी वनिता को मैंने नहीं दी। मेरा उससे तनिक भी परिचय नहीं। यहाँ तक कि मैं उसको सूरत से भी नहीं

पहचानता। दुर्भाग्य यही है कि मैं कोई भी ऐसा ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता जिससे सिद्ध हो जाय कि अँगूठी किसी रहस्यमय ढंग से वनिता के पास गई है। मेरे कथन की सचाई केवल अब आपके विश्वास पर निर्भर है। मेरा अनुरोध है डाक्टर साहब कि मुझ पर विश्वास कर मुझे इस तीव्रतम ग्लानि से बचा लीजिये जिसमें मैं गला जा रहा हूँ।"

डाक्टर स्वरूप की कठोर मुखाकृति कुछ शान्त हो गई। मालूम पड़ता था कि जीवन की बातों का उन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा और जिस पक्की धारणा को लेकर वह आये थे वह मानो अब शंका में परिणत हो गई थी। लेकिन प्रेरणा की जिज्ञासा पूर्ववत् बनी रही। वह जिस बात को जानना चाहती थी उसका कोई भी सूत्र उसे नहीं मिला था। वह जानती थी कि उसके पिता बिना तथ्यों का संकलन कर एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं जो वास्तविक न हो। उन्हें क्या मालूम कि जिस अँगूठी का अपहरण हुआ था उसे जीवन को वह पहले प्रणय-दान में दे चुकी थी और अब तथ्य केवल इतना ही रह गया था कि वही अँगूठी अब पुनः प्रणय-दान का माध्यम बन कर वनिता के हाथ आ गई थी। वह कैसे अपने पिता को बताती कि यह घटना अँगूठी की चोरी से सम्बन्धित न होकर दिल की डकैती से सम्बन्ध रखती थी। डकैती इसलिये क्योंकि इसमें उसके प्रेम की हत्या हुई थी। चोर जब डाकू बन जाता है तो उसके अन्दर पाशविकता आ जाती है। प्रेरणा समझती थी कि जीवन के प्रेम में भी अब पाशविकता आ गई थी। अँगूठी एक मोह की कड़ी थी···प्रणय का बन्धन थी जिसको उसने तोड़ फेंका था और इस प्रकार उसके प्रेम का अपमान किया था।

लेकिन उसके पिता तो घटनाओं का दूसरा ही तारतम्य लगा रहे थे और वह जानती ही थी कि वह इस तारतम्य से सुरक्षित थी। पर यह अंदाजा गलत भी तो हो सकता था। झूठ पाप है और पाप से अपनी रक्षा हो, इसे प्रेरणा कभी सहन न कर सकती थी। वह चाहती थी कि सचाई यदि सामने आती है और इससे जीवन के साथ उसके सम्बन्ध भी प्रकाश में आते हैं तो वह आयें, उसे तनिक भी संकोच न होगा। अस्तु, अपने पिता को चुप

देख कर वह बोली, "जीवन बाबू ! आप पिताजी को बतायें कि आपके पास मेरी अँगूठी थी या नहीं और वह कैसे वनिता के पास गई। जीवन को लगा मानो डाक्टर साहब के खुण्डे तीरों को पैना कर प्रेरणा ने वह ब्रह्मास्त्र छोड़ा है, जिसके डर से वह घुला जा रहा था। दीन भाव से उसने प्रेरणा की ओर देखा मानो पूछ रहा हो कि जब युद्ध समाप्तप्राय था तो इस आक्रमण की क्या आवश्यकता थी और वह भी तुम्हारी ओर से। उसकी खोखली निगाहें दया की भिक्षा माँगती रहीं पर प्रेरणा की आँखों में कोई उत्तर न पाकर वह मुड़ीं और डाक्टर के मुँह पर मँडराने लगीं।

डाक्टर बोले, "उत्तर दो जीवन, क्या तुम्हारे पास अँगूठी नहीं थी ?"

जीवन ने फिर दुबारा प्रेरणा की ओर देखा मानो सहारा ढूँढ रहा हो पर उसने गरदन झुका ली थी। निराश हो प्रत्युत्तर में उसने गरदन हिला दी।

"तो तुम अँगूठी के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते ?"

"जी नहीं।"

प्रेरणा की आँखें आश्चर्य से चमक उठीं जिनमें तीव्र क्षोभ तैर रहा था। जीवन को घूरते हुए वह अपने पिताजी से बोली —

"झूठ।"

"क्यों ?" डाक्टर ने पूछा।

"हाँ-हाँ पिताजी, उठिये। सारी दुनिया की कायरता अपने में समेट कर ये लोग डकैतियाँ ही डालते हैं। चलिये पिताजी। मैं आप को सब बता दूँगी। मुझे सब मालूम है।"

"प्रेरणा उठकर कमरे से बाहर हो गई। डाक्टर साहब भी कुछ न समझते हुए प्रेरणा के पीछे चल दिये।

१२

डाक्टर परिवार में अभी तक अँगूठी की ही विशेष चर्चा थी पर जब प्रेरणा ने स्वयं यह कबूल किया कि जीवन के साथ उसके प्रणय के सम्बन्ध थे और उस अँगूठी को उसने स्वयं जीवन को प्रणय-दान के रूप में भेट किया था तो वातावरण अतिशय रूप से गम्भीर हो उठा। डा स्वरूप आश्चर्य मे आँखें मलते रहे। सारे परिवार पर मौत की सी खामोशी छा गई। प्रत्यक्ष में कोई भी अप्रिय घटना न हुई पर उस खामोशी के पीछे एकान्त पाकर डा० स्वरूप की पत्नी लड़की की हीनता पर आँसू बहाया करती। सब काम यथा-वत् चलता रहा पर मशीन की तरह ही। डा० डिस्पेन्सरी से घर लौटते तो न उनका आमोद गम्भीर स्वर सुनाई देता और न उनकी पत्नी की चुहलबाजी ही जिनसे कि परिवार की खुशी का आभास होता था। भोजन के समय भी न डाक्टर के मुँह पर कुछ शब्द आते न उनकी धर्मपत्नी के। एक तीव्र ग्लानि सबको जड़ बना चुकी थी। एक बड़े सम्मानित परिवार की मर्यादा पर कालिख लगी थी'''परिवार की इकलौती बेटी से, जो परिवार के समस्त आकर्षण का केन्द्र थी। डाक्टर स्वरूप की पत्नी पति की पीड़ा को जानती थी और डाक्टर भी जानते थे कि उनकी पत्नी कितनी आहत हुई है। लड़की की बेवकूफी को वाद-विवाद का विषय बनाकर उस पीड़ा को कोई भी द्विगुणित नहीं करना चाहता था। पर उस चिरमौन से परिवार के वातावरण में सुधार की अपेक्षा और अधिक निश्चेतना ही छा गई।

प्रेरणा इस खामोशी से तड़प उठी। उसे अपनी नादानी पर कितनी ही बड़ी प्रताड़ना क्यों न मिलती, वह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती, पर इन मौन

यातना और नैराश्य को सहन करने में उसका दम घुटता था। उसे कोई उपाय नहीं सूझता था कि कैसे अपनी पारिवारिक शान्ति को वापस लाये। प्रेरणा को लगता कि मानो उसका परिवार कुछ ऐसे सदस्यों का समूह बन गया है जो किसी समझौते के आधीन अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते जा रहे हैं—इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। कौन क्या सोच रहा है, किस विचार-प्रवाह में वह रहा है, यह जानने की मानो किसी को आवश्यकता ही नहीं है। वह देख रही थी कि माता-पिता का उसकी दिनचर्या से प्राय: हस्तक्षेप उठ-सा गया है। उसके पिता रोज की भाँति अब कभी उसके अध्ययन के विषय में भी कुछ पूछ-ताछ नहीं करते। उसकी माँ पहले बात-बात पर उसकी आलोचना करती थी, पर अब आलोचना तो दूर रही जो पैसे वह लेती है उसका हिसाब भी नहीं लेती ; मानो वह उनकी बेटी न होकर दूर की कोई नातेदार हो। अपने अध्ययन-कक्ष में लेटी हुई वह इन्हीं बातों को सोच-सोचकर फफक-फफककर रो पड़ती। वह चाहती थी कि उसके माता-पिता उसे कोई अवसर दें और वह उनकी गोद में मुँह ढाँपकर अपना दुखड़ा हल्का करले ; परन्तु माता-पिता ने तो ऐसी वृत्ति धारण करली थी कि उनके पास जाने की वह हिम्मत ही खो बैठी। वह अपने पिता के स्वभाव को जानती थी और खूब समझती थी कि उसके अनुनय-विनय का पिताजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। पिताजी को उसने किसी भी बात पर उत्तेजित होते नहीं देखा था, न कभी अधिक वाद-विवाद करते हुए ही। वह किसी से आग्रह भी नहीं करते थे और न किसी के आग्रह पर अपने निश्चय को ही बदलते थे। वह एक कठोर और स्थिर स्वभाव के व्यक्ति थे जो भावुकता से दूर प्रत्येक पहलू का वास्तविक रूप ही पहचानते थे।

उनका विवेक अनुभवों पर खड़ा था, जिसका उपार्जन निरन्तर के संघर्ष से हुआ था। अस्तु, स्वाभाविक था कि उनमें चपलता की मात्रा कम होती। यह सब कुछ होते हुए भी प्रेरणा जानती थी कि उसके पिता का हृदय कितना विशाल और वात्सल्यप्रिय था। यह कोई तभी जान सकता था जब उनके हृदय की अन्तरतम गहराई तक पहुँच सके। प्रेरणा को यह सौभाग्य प्राप्त था कि उसका प्यार पिता के हृदय के तारों को छूकर उस गहराई में छुपे

अनमोल रत्नों को बाहर निकाल लेता था जिनकी डा० साहब प्रेरणा पर नित्य बौछार करते थे। प्रेरणा रो उठी इन्हीं बौछारों से वंचित होने के दुर्भाग्य पर। यदि बिना कारण यह सब कुछ होता तो वह अपने पिता से टक्कर लेती, पर कारण उसके सामने था। उसने अपने पिता के विश्वास पर आघात किया था और यह ध्रुव सत्य था कि जब तक फिर ऐसे कारण उत्पन्न नहीं होते कि उस खोये हुए विश्वास का प्रतिष्ठापन हो सके—टक्कर लेना तो दूर पिता के सामने एक शब्द कहना भी फूल की कोमल पंखुड़ियों को लोहे की दीवार से टकराना मात्र था।

प्रेरणा को एकमात्र सहारा था माँ का जो उसके साथ इस दुःखद वातावरण को दूर करने में सहयोग कर सकती थी, पर माँ के अन्दर उस विचारशक्ति का अभाव था जो उसे सही रूप में समझने में सहायता देती। प्रेरणा जानती थी कि उसकी माँ उसे कभी समझ नहीं पायेगी। उसे भय था कि कहीं उसकी माँ उसके चरित्र पर लांछन न लगादे जिसको वह कदापि सहन न कर सकेगी और इस प्रकार बात सुधरने के स्थान पर और बिगड़ जायेगी।

इसी तरह का मानसिक द्वन्द्व कुछ दिनों तक चलता रहा। और प्रेरणा निश्चय न कर पाई कि आखिर वह किस प्रकार परिवार की अस्वस्थ मानसिक दशा में सुधार लाये। और तभी उसका ध्यान इस घटना की तह पर गया जहाँ मौन अंधकार में उसे जीवन खड़ा दिखाई दिया।

प्रेरणा का दिल रो उठा। जीवन उसे ऐसा छोटा-सा इन्सान दिखाई दिया जो पैदा होता है और मरता है, पर न जिसके पैदा होने पर चिराग जलते हैं और न मरने पर रुदन होता है। वह सोचती कि ऊपर आकाश में भी यही स्थिति तो है और शायद धरती पर भी उसी का प्रभाव पड़ा हो, कौन जाने। न जाने कितने उल्कापात प्रत्येक रात्रि में होते रहते हैं पर उससे किसी की नींद नहीं टूटती क्योंकि वे आसमान के छोटे जीव हैं। किन्तु यदि सूर्य और चाँद पर ग्रहण लगता है तो सारे जगत में तहलका मच जाता है। जीवन भी धरती के उन टिमटिमाते तारों में से था जो सूने जीवन को लेकर केवल इसलिये जी रहा था कि मौत अभी दूर थी। इसी जीवन को वह अपना हृदय दे बैठी थी और इसी बात पर उसके पिता अप्रसन्न थे। पर छोटा होना कोई अपराध

तो नहीं था और यदि था तो उसके लिये प्रकृति स्वयं दोषी थी। प्रेरणा को दु:ख था तो यह था कि उसके पिता इतने विवेकवान होते हुए भी इतनी-सी छोटी बात को नहीं समझ पाए थे। लेकिन क्या यह सच था कि उसके पिता जीवन के छोटा होने के कारण ही उससे घृणा करते थे। यदि हाँ तो फिर पहले स्वयं उन्हें अपने आप से घृणा करनी चाहिए थी क्योंकि वे भी छोटे ही पैदा हुए थे। यह अलग बात थी कि वर्षों के परिश्रम से वे बड़े बने थे। पर वह अपने पिता के विवेक और दृष्टिकोण पर क्यों सन्देह करे जबकि उसके जीवन में पहले कभी ऐसा अवसर नहीं आया था। तभी प्रेरणा का ध्यान अँगूठी वाली घटना पर केन्द्रित हो गया। अब उसे बड़े और छोटे का सही आभास हुआ और साथ ही अपने पिता के दृष्टिकोण का जिसका आधार उसे ठोस और वास्तविक-सा प्रतीत हुआ।

प्रेरणा ने अनुभव किया कि जन्म से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। मनुष्य का चरित्र और प्रतिभा उसे बाद में छोटा और बड़ा बनाती है। इसी-लिए बड़ा कभी निश्चय ही बड़ा न रहने पाया और न छोटा निरन्तर छोटा ही रहा। जीवन को उसने उन छोटे व्यक्तियों में पाया जो पहले अतिक्रमण तो कर जाते हैं पर पीछे परास्त मनोवृत्ति से अस्थिर हो उठते हैं। अपराध करना प्रेरणा की दृष्टि में उतना अपराध नहीं था जितना अपराध से डरना। यह मनुष्य की भीरुवृत्ति की परिचायक है जो उसे और अधिक अपराध करने को विवश करती है। जीवन उसे ऐसा ही भीरु स्वभाव का व्यक्ति लगा जो भीरुतावश अपने चरित्र को बनाये रखते हैं। जीवन उसे वह चोर प्रतीत हुआ जो चोरी को पाप समझता आया है इसलिये कि उसे पहले ही चोरी के परिणाम मालूम रहते हैं और सम्भवत: इसीलिये वह मन और हृदय के संघर्ष को पाप-पुण्य की कसौटी मानता आया है। प्रेम में भी उसने इसी सिद्धान्त का प्रयोग किया लेकिन उसे परास्त होना पड़ा। प्रेरणा ने एक ऐसी तीव्र जलन महसूस की कि मानो जलाशय की मछली की भाँति उसको पटक कर रेत पर फेंक दिया गया हो और यह फेंकने वाला और कोई नहीं जीवन था। पर इसमें जीवन कहाँ तक दोषी था जबकि वह पहले ही कई बार उसकी भ्रान्त मृगतृष्णामय धारणा के प्रति उसे सतर्क करता आया था। यदि

मरुस्थल में मृग जल-प्राप्ति की सुखद कल्पना कर बैठता है तो भूल मृग की है, किसी का छल नहीं। जीवन के अन्दर सत्य का सामना करने की शक्ति न पहले थी और न तब हुई जब डाक्टर साहब के समक्ष वह अपने प्रणय-सम्बन्ध प्रकट करने में संकोच कर गया। प्रेरणा को लगा कि उसके चिन्तनशील मानस-पटल पर बारी-बारी पहले उसके पिता और फिर जीवन अपराधी के रूप में आये पर दोनों ही अपने निर्दोष होने का प्रमाण देकर मुक्त हो गए एक सुसम्मानित और दूसरा पक्ष के मजबूत होने से। लेकिन नहीं, वह जीवन के विरुद्ध दूसरा मुकदमा चलायेगी। जीवन के विरुद्ध विश्वासघात का अभियोग अभी शेष था। उसने ही तो उसके चित्रों में नीले-पीले रंग डाल कर उसके रूप को बदला था, मृग के समान सुडौल नैनों में सावन की बरखा कर उसके काजल को धो डाला था। सोचते-सोचते प्रेरणा इसी प्रकार सो जाती। कॉलेज से घर और घर से कालेज —यही उसकी दिनचर्या थी। कालेज की गतिविधियों से वह संन्यास ले चुकी थी। पुस्तकों का ही उसका एकमात्र साथ था पर यह साथ भी अधूरा था। पुस्तकों के पृष्ठ हमेशा खुले रहते पर प्रेरणा की आँखें बन्द रहतीं। पुस्तकों में भरा ज्ञान स्थिर था, प्रेरणा का दिल डाँवाडोल और बेचैन। पुस्तकों का दर्शन और ज्ञान सब्ज़ काई की भाँति प्रेरणा के दिल को हरा और ठण्डा रख सकता था बशर्ते उसके हृदय में तूफ़ान न होता। मचलती हुई लहरों पर काई कब जमने पाई है ?

इसी तूफ़ानी स्थिति में एक जलजला और आया। प्रेरणा ने सुना कि उसके पिताजी उसकी मँगनी संघर्ष के साथ तय करने की सोच रहे हैं। पहले तो उसे इस समाचार पर विश्वास नहीं हुआ पर सच कितना भी कटु और अप्रिय क्यों न हो उसे पचाना ही पड़ता है। प्रेरणा ने अनुभव किया कि उसके थके-हारे पंखों पर अब कैंची चल रही थी। शायद ये पंख अब पिताजी को प्रिय न रहे हों क्योंकि जब कोई अङ्ग सड़ जाता है तो उसके पिताजी उसे काटा ही तो करते थे। अपनी चिकित्सा के अनुभवों का आज वह अपनी लड़की पर प्रयोग करने जा रहे थे। आँखों की कोर में बन्द हृदय की पीर फफक-फफककर बाहर निकल पड़ी। पर तभी उसका पीला मुख सहसा रक्ताक्त

हो उठा। महीनों का रोग एक पल में लुप्त हो गया और उसने अनुभव किया कि वह रोगिनी नहीं थी। यदि उसके पंख शिथिल पड़ गये हैं तो वह उनमें रक्त का संचार करेगी पर पिताजी की चिकित्सा कदापि स्वीकार नहीं करेगी। वह अपने पिताजी से कह देगी कि वह शरीर के रोग के चिकित्सक हैं हृदय के रोग के पारखी नहीं। और सचमुच प्रेरणा के इस निर्णय से एक और विस्फोट हुआ।

संघर्ष के पिताजी प्रोफ़ेसर स्वरूप के साथ अपने दो-चार सम्बन्धियों को लेकर डाक्टर साहब के घर संघर्ष की मँगनी करने आये थे। प्रेरणा को पता था कि उसकी माँ की हठ पर डा० स्वरूप ने मँगनी की सम्मति दे दी थी। प्रेरणा को प्रातः ही उसकी माँ आदेश के स्वर में समय पर तैयार होने को कह गई थी। घर में पकवान बन रहे थे, सम्भवतः आने वाले अतिथियों के लिये। नौकर-चाकर एवं स्वयं उसके माता-पिता सभी व्यस्त थे। केवल वही थी जिसे सिवाय बन ठन कर तैयार होने के और कोई काम नहीं सौंपा गया था। प्रेरणा को यह सारी स्थिति, सारा प्रबन्ध और जो कुछ होने जा रहा था, बड़ा हास्यास्पद-सा लगा। कितनी उपेक्षा से उसके भाग्य का निबटारा होने जा रहा था।

अपने कमरे में बैठी-बैठी उसने गली में मोटरों के आने की आवाज सुनी और फिर हल्ला-गुल्ला, सेवा-सलामी और नौकर-चाकरों की चहलकदमी। झट उसने भी माँ के आदेशानुसार नये कपड़े पहन लिये और तैयार होकर नये आदेशों की प्रतीक्षा करने लगी। लेकिन उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। अपनी चाची, दो दादियाँ और पड़ोस की दो-तीन स्त्रियों सहित उसकी माँ ने कमरे में प्रवेश किया।

आने वाली स्त्रियों ने प्रेरणा के सिर पर हाथ रखकर प्रथा के अनुसार उसके मंगल की कामना की।

प्रेरणा की पलकें नीचे झुक गईं। जब माँ ने उसका हाथ पकड़ा तो उसे साथ वाले कमरे में, जहाँ रस्म पूरी होनी थी, जाने का संकेत मिला। वह उठी और चल दी ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रस्सी से बँधी गाय अपने स्वामी के इशारों पर अनिच्छा से चल देती है।

कमरे में बीसियों थाल सजे-सजाये रखे थे जो मिठाइयों और फलों से भरे पड़े थे। पूजा की सामग्री, वस्त्र और ज़ेवरात पूजा वाली चौकी के पास रखे हुए थे। कमरा बहुत बड़ा था जो अन्य दिनों बैठक के रूप में प्रयोग किया जाता था, अब खचाखच भरा पड़ा था।

प्रेरणा ने जब कमरे में प्रवेश किया तो सबकी नज़रें उसकी तरफ घूम पड़ीं। डा० स्वरूप आगे बढ़कर प्रेरणा को अपने पास ले आये। प्रेरणा ने देखा—दूसरे अतिथियों के साथ संघर्ष भी अपने मुख पर भोलापन समेटे अपने पिता की बगल में बैठा हुआ था। पिता की आज्ञानुसार प्रेरणा ने सबको नमस्कार किया और फिर पिता की ओर कुछ क्षण एक टक देखने के बाद अपनी बड़ी-बड़ी आँखें नीची कर लीं।

डा० स्वरूप ने बहुत दिनों के बाद आज प्रेरणा को देखा था। उसके पीले मुख को देख उनकी सारी ममता लौट पड़ी। डबडबायी आँखों से उन्होंने प्रेरणा के मुख को देखा और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले, "बाप से इतनी रुष्ट हो गई थी बेटा कि बोलने के लिये भी निमंत्रण की चाह लगाये बैठी थी'''हठी कहीं की।"

प्रेरणा को मानों बिजली छू गयी। आँचल में मुँह छुपाये वह रो पड़ी। फिर संयम बटोर कर बोली—

"चाह नहीं पिता जी! आप बोल दिये इतना ही क्या कम है मेरे लिये? अच्छे कपड़े पहन कर आई थी। आप बोल दिये इनकी शोभा हो गई।"

प्रेरणा के शब्दों से डाक्टर साहब का संयम टूट पड़ा। आँखों से पानी छूटने लगा। उनकी धर्मपत्नी ने, जो पास ही बैठी हुई थी, प्रेरणा को गले लगा लिया।

स्थिति की गम्भीरता पर आवरण डालते हुये बड़ी दादी बोली, "बेटी का पापी मोह—ज्यों-ज्यों बड़ी हुई बस यही हाल शुरू हो जाता है।"

छोटी दादी बोली, "न जाने कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं पालने में, पर अन्त प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।"

और फिर रुँधे हुए गले से संघर्ष के पिता को सम्बोधित करते हुए माँ बोली, "कोख से पैदा हुई है इसीलिये अन्धी ममता के वशीभूत अभी तक इसे

कुछ सीख व गुण नहीं दे सकी। अब तो तुम्ही इसके पिता-तुल्य हो, जैसे भी रखोगे—तुम्हारी है।"

प्रेरणा के अन्तस्तल में सुरसुराहट-सी हुई। उसे फिर पिता के शब्द सुनाई दिये, "हमारी लड़की सब विवेक रखती है।"

'मेरे विवेक पर शंका तो नहीं करोगे पिताजी ?" तभी प्रेरणा ने म्लान मुस्कराहट के साथ पिता की ओर देखते हुए पूछा।

डा० साहब ने प्यार से प्रेरणा का गाल छुआ और स्वीकृति में गरदन हिला दी। प्रेरणा फिर उसी स्वर में बोली, "आप का विश्वास पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई पिताजी और इसी विश्वास के बल पर मुझे यह पूछने की प्रेरणा हो रही है कि आज संघर्ष अकेले न आकर दलबल सहित आये हुए हैं, इसका कारण ?"

आश्चर्य में इस अप्रत्याशित प्रश्न से सबकी आँखों की भौंवें ऊपर चढ़ गईं। विस्फोट हो चुका था।

डा० स्वरूप ने आश्चर्य और कौतूहल से पूछा, "क्या मतलब ?"

"यही कि एक छोटा-सा टीका करवाने या राखी बँधवाने के लिये संघर्ष अकेले भी तो आ सकते थे और फिर आज न तो रक्षाबन्धन का पुण्य पर्व ही है न भैया दूज की ही उल्लासमय घड़ी।"

पहले वाक्य से जो विस्फोट हुआ था, दूसरे वाक्य से उसका धुँआ सब तक पहुँच गया।

डाक्टर स्वरूप पहले तो विस्फारित नेत्रों से प्रेरणा को देखते रहे पर फिर भृकुटियों को तान कर बोले—

"प्रेरणा, मालूम पड़ता है तुम अपना विवेक खो बैठी हो। अब तुम अपनी जीभ का नियंत्रण भी खो बैठी हो। मालूम है एक अनियन्त्रित दिमाग़ और असंयत जीभ से तुम अपना कितना बड़ा नुक़सान कर बैठोगी, कुछ अनुमान है इसका तुम्हें ?"

संघर्ष के पिता, प्रोफ़ेसर स्वरूप और दूसरे लोग, जो वहाँ बैठे हुए थे, प्रेरणा की इस फुफकार से ऐसे घबरा गये कि उन्हें लगा मानो प्रेरणा नहीं कोई नागिन कपड़ों में छुपी सक्रिय हुई हो। संघर्ष का मुख तमतमा उठा।

दाँतों को भींचते हुए उसने जीभ से अपने होंटों को तरल किया और प्रेरणा की चोट की प्रतिक्रिया देखने लगा।

डाक्टर स्वरूप प्रेरणा को कोस रहे थे, "लाड़-प्यार ने तुम्हें बिलकुल निरंकुश बना दिया है, इतना निरंकुश कि तुम कुल की प्रतिष्ठा पर भी चोट करने में संकोच न कर सकी। अच्छा होता यदि तुम्हारी इस चोट से पूर्व मैं तुम्हारी चोट करने की शक्ति का अनुमान लगा लेता। मालूम पड़ता है प्रेरणा, तुमने मुझे सावधान होने का भी मौका नहीं दिया।"

प्रेरणा दृढ़ शब्दों में बोली, "यह ठीक है पिताजी ! पर अब यह समय चर्चा का नहीं रहा। अब तो आप अपने अतिथियों को विदा कीजिये। पारिवारिक मामलों में न मैं और न आप ही यह पसन्द करेंगे कि अन्य दूसरे व्यक्ति भी उसमें हस्तक्षेप करें या हमारी चर्चाओं को सुनें।"

डाक्टर स्वरूप कुछ कहते पर इससे पूर्व ही प्रेरणा उठ कर कमरे से चली गई।

प्रो० स्वरूप, डा० एस० स्वरूप की प्रकृति को जानते थे। स्थिति की भयानकता को लक्ष्य कर वे संघर्ष के पिता से बोले, "मँगनी को फिलहाल स्थगित किये देते हैं। बच्ची है···होता ही है···सहमत हो जायगी। जो कुछ अपराध अनजाने में हमसे हो गया उसके लिये हमारी गरदन पहले ही बहुत झुक गई है।"

संघर्ष के पिता का मुख अपमान से लाल हो उठा पर कुछ न बोलते हुए वे उठ खड़े हुए कि तभी संघर्ष बोल पड़ा, "बड़े होने का यह अर्थ नहीं है कि दूसरों को अपने घर पर बुला कर आप उनका अपमान करें। आपका बड़प्पन हमने देख लिया। अब हमारा बड़प्पन देखना आपको बाकी है······"

संघर्ष बोल ही रहा था कि प्रो० स्वरूप फटकारते हुए बोले, "चुप रहो संघर्ष।"

"कमाल कर रहे हैं आप भी। मैं तो चुप ही था भाई साहब पर अपनी भतीजी को भी चुप करने का साहस किया होता। बड़े घरों की बेटियाँ इतनी बेलगाम होती हैं, यह हमने आज ही देखा। बेलगाम लड़कियाँ, बेटियाँ बन कर बाप के घर तो भले पड़ी रहें, बहू बनकर वे एक पल भी घर के अन्दर

नहीं रह सकतीं। अठारह साल तक आप की भतीजी इस मूल सत्य को नहीं समझ पाई है। मुझे डर है कि विलम्ब होने पर कहीं वह इतनी अयोग्य न समझी जाय कि उसे सारी जिन्दगी फिर इसी घर में रहना पड़े........"

संघर्ष बोल ही रहा था कि डा० स्वरूप की गर्जना सुनाई दी, "मिश्रजी! अपने लड़के को ले जाइये और इस रिश्ते को समाप्त हुआ समझिए।"

संघर्ष को लगा कि डाक्टर स्वरूप 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली बात चरितार्थ कर रहे थे कि तभी डा० स्वरूप की एक और गर्जना ने उसे चौंका दिया और वह अपने पिता और सम्बन्धियों के साथ उठकर चल दिया।

सबके चले जाने के बाद डा० स्वरूप ने अपने आपको संयत किया और घटना का आद्योपान्त बारीकी से पर्यवेक्षण करने लग गये। उन्हें और उनकी पत्नी को स्वप्न में भी ऐसी अप्रिय और अनिष्ट की आशा नहीं थी।

उनकी पत्नी तो माथे पर हाथ देकर जोर-जोर से कुल की मर्यादा का आलाप करने लगी। प्रेरणा यदि उसके सामने होती तो सम्भवतः वह उसका गला ही घोट देती। अँगूठी वाली घटना को वह भूली नहीं थी कि इस घटना ने वे जख्म और गहरे कर दिये। डा० स्वरूप का संकेत पाकर पो० स्वरूप भावज को सान्त्वना देने लगे, पर जैसे-जैसे प्रोफेसर घटना पर आवरण डालते वह उतने ही आवेश में आकर प्रेरणा को कोसती, उस पर गालियों की बौछार करती और उसके मर जाने की दुआ माँगती।

डा० स्वरूप को लगा कि प्रेरणा के कारण सारे परिवार की खुशी लुप्त हो चुकी है। उसके और जीवन के मध्य स्थापित प्रणय-सम्बन्ध को अभी तक उन्होंने गुप्त ही रखा था। यहाँ तक कि प्रो० स्वरूप तक भी यह बात फैलने नहीं पाई थी। डा० स्वरूप जानते थे कि इस ताजी घटना के, जो प्रेरणा के मँगनी के सिलसिले में हुई थी, लोग कई अर्थ लगा सकते हैं और सम्भव था कि उन्हें इस घटना से सम्बन्धित वास्तविक सूत्र मिल जाय। अब उन्हें अपनी भूल महसूस हुई कि अपने निर्णय को प्रेरणा पर थोपने में उन्होंने उसके मानसिक स्तर की उपेक्षा की थी और इस प्रकार प्रेरणा द्वारा उठाये गये ग़लत क़दमों का वह सही उपचार न कर पाये। प्रेरणा को मार्ग पर लाने के लिये यह श्रेयस्कर था कि वह प्रेरणा पर पहले बौद्धिक विजय प्राप्त करते

क्योंकि तब यह स्वयं अपने आपको पिता के निर्णय पर छोड़ देती। वस्तुतः डा० स्वरूप ने प्रेरणा के मन में अपनी शिक्षा और देखरेख से ऐसे ही संस्कार पैदा किये थे पर इस बार स्वयं उन्होंने इसके विपरीत उसकी बौद्धिक चेतना की अवहेलना की। फिर स्पष्ट था कि प्रेरणा दो बातों में से एक बात ही करती···या तो बग़ैर चूँ-चपट किए पिता की खुशी के लिए पिता के निर्णय को स्वीकार कर अपनी मानसिक दासता का परिचय देती या फिर अपने विवेक पर विश्वास कर प्रचलित रूढ़ियों पर लात मार देती, भले ही ऐसा करने में उसे अपने प्रियजनों के क्षणिक रोष को सहना पड़ता। प्रेरणा ने वही किया जिसकी प्रेरणा स्वयं डा० साहब सदैव अपनी पुत्री को देते आये हैं।

मँगनी वाली घटना से क्षुब्ध होते हुए भी डाक्टर प्रेरणा से इस बात पर प्रसन्न थे कि उसने मँगनी के मामले में पिता के लादे हुए निर्णय को ठुकरा कर अपने उसी पुष्ट व्यक्तित्व का परिचय दिया था जिसका सृजन वह प्रेरणा में देखना चाहते थे। अब वे उत्सुक थे तो केवल यह जानने के लिए कि विचारों की स्वतन्त्रता और पर्याप्त चारित्र्य-बल रखते हुए भी उनकी पुत्री व्यावहारिक ज्ञान और विवेक में कितनी प्रौढ़ है ?

जीवन को हृदय में स्थान देने से प्रेरणा के विवेक के प्रति डाक्टर स्वरूप को शंका थी। वह समझते थे कि अपने व्यवहार से वे प्रेरणा को इस बात का संकेत दे चुके थे कि जीवन, जीवन-साथी के रूप में उसके सर्वथा अयोग्य था। उन्होंने महसूस किया कि प्रेरणा ने उनके संकेतों को या तो समझा नहीं या फिर समझते हुए भी पिता को विश्वास में लिए बिना, भावना में बह कर ग़लत क़दम उठाया था। इसीलिए उनको अपनी शंका निर्मूल नहीं लगी। पर यहाँ पर डाक्टर साहब को अपनी एक और भूल अखर गई। अँगूठी वाली घटना का उन्होंने तुरन्त ही स्पष्टीकरण नहीं करवाया। यहाँ तक कि वे महीनों तक प्रेरणा से बोले तक नहीं। परिणाम यह हुआ कि उनके और प्रेरणा के मध्य खाई बनती गई जिस पर कि मँगनी वाले दिन परिवार की इज़्ज़त लुड़क पड़ी। यह ठीक था कि पिता होने के नाते वे उस मामले पर पुत्री के साथ चर्चा करने में संकोच कर गए। पर फिर यह भी तो सच था कि प्रेरणा भी अपने प्रणय-सम्बन्ध को पिता के समक्ष प्रकट करने में संकोच

कर गई हो। डाक्टर ने महसूस किया कि प्रेरणा का संकोच उनके संकोच से अधिक उचित और अवसरयुक्त था ; बल्कि उनको लगा कि जीवन के साथ अपने प्रणय-सम्बन्ध स्वीकार करने में प्रेरणा ने अपने उसी इच्छित चारित्र्य-बल का परिचय दे दिया था और इस प्रकार अपने पिता को अपने विवेक पर विश्वास अथवा अविश्वास व्यक्त करने का अवसर भी दे दिया था। पर यह वह स्वयं थे जो हर मौक़े पर मूक रहे। डाक्टर साहब अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि सारे अपवाद के लिए वे ही उत्तरदायी हैं और उन्होंने निश्चय किया कि अब अधिक प्रतीक्षा न कर वे खुल कर प्रेरणा से घटनाओं की सारी कड़ी पर बात करेंगे।

और रात को जब वे भोजन से निवृत्त हो चुके तो प्रेरणा के अध्ययन-कक्ष में चले आए। प्रेरणा विचारों के प्रवाह में आँखें मूँदे आरामकुर्सी पर बैठी हुई थी। पिता को बेमौके कमरे में पाकर समझ गई कि वह घड़ी आखिर अब आ गई जब उसको अपने पिता के विश्वास पर आघात करने का दण्ड मिलेगा। वह अकुला कर कुर्सी से खड़ी हो गई। डाक्टर स्वरूप पास की कुर्सी पर बैठते हुए प्रेरणा को बैठने का इशारा कर बोले, "अध्ययन कैसा चल रहा है प्रेरणा ?"

प्रेरणा ने ग़ौर से अपने पिता के मुख पर देखा मानो इस भूमिका का अर्थ समझ सके और बोली, "ठीक ही है जी।"

"जीवन का क्या हाल है ?" डाक्टर उसकी पोयट्री की पुस्तक को खोलते हुए बोले, "आजकल कवि या लेखक जीवन को सफल बनाने में प्रायः असफल रहते हैं क्योंकि वे उन बातों को ही प्रकाश में लाते हैं जो व्यक्तियों या समाज के अन्दर विद्यमान हैं। भले ही वे प्रकाश में न आई हों पर वे किसी नवीन वस्तु का सृजन नहीं करते। मोटर का कोई हिस्सा ले लो। जो बिल्कुल नया होगा उसकी क़ीमत पचास रुपये या साठ रुपये है पर जिस पर पालिश कर चमक पैदा की जाती है—पाँच-दस रुपए में ही आसानी से मिल जायेगा। भरपूरिया अभी एक टायर ऐसा ही लाया कम दामों का। साधारण लेखक ऐसे ही कम दामों पर बिकने वाले चमकदार मनुष्य हैं। यदि जीवन अपनी

कविताओं और लेखों से अपनी प्रतिभा को पूर्ण समझता है तो वह भूल कर रहा है—तुमने कभी सोचा प्रेरणा ?"

प्रेरणा पिता की अनर्गल बातों को सुन कर डर गई। उससे कोई उत्तर देते न बन पड़ा। डाक्टर स्वरूप बोले, "वह लड़की जिसके पास तुम्हारी अँगूठी मिली थी जीवन के साथ काफी सामीप्य रखती है—प्रकृति और स्वभाव में जीवन की ही तरह है—लेकिन क्या तुम समझती हो प्रेरणा ! कि जीवन की भावुकता उसके लिए अभिशाप नहीं बनेगी ? जीवन भावुक व्यक्ति जो ठहरा।"

प्रेरणा की आँखें भय और आश्चर्य से चमक उठीं। अब उसे पता लगा कि उसके पिता परोक्ष में उसकी जवाबदेही माँग रहे थे। उसकी जीभ तालु से सिमट गई।

"तुम बोलती क्यों नहीं हो ?" डाक्टर स्वरूप ने पुस्तक से ध्यान हटाकर उसकी तरफ देखा।

"जी···क्या बोलूँ ?" प्रेरणा का भय बाहर निकल पड़ा।

"यही कि जीवन असफल व्यक्ति है और उससे भी बढ़कर यह कि वह भावुक है जो अपनी पसन्द की अन्य लड़की को तुम्हारी अँगूठी दे सकता है।"

प्रेरणा बात करने के उस नए ढंग से, जिसे आज उसके पिता ने चुना था, घबरा गई थी और अपने पक्ष की उन तमाम बातों को अपने मन में ठीक एक सूत्र में नहीं बाँध पाई थी जिनसे उसे अपना बचाव करना था। पर पिता के अन्तिम वाक्य ने उसकी विचार-श्रृंखला को ठीक रूप से रख दिया। सँभल कर बोली—

"यह बात सत्य नहीं है पिता जी कि अँगूठी वनिता को जीवन से प्राप्त हुई थी। यह केवल मेरा संदेह था जिसे आज शाम को ही मैं मिटा कर आई हूँ।"

"क्या मतलब ?"

"वनिता स्त्री-जाति के लिए स्वयं एक अभिशाप है। वह जीवन को पहचानती तक नहीं। आज शाम अपना एलबम लेकर मैं उसके पास गई थी

इस प्रयास में कि उसकी परीक्षा करूँ और हुआ वही जिसकी मुझे आशंका थी। वनिता जीवन के चित्र को पहचान भी न पाई। फिर यह सोचना कि वह जीवन को समीप से जानती होगी निरर्थक सन्देह करना है।"

"रुको,।" डाक्टर बोले, "तुम्हें आशंका थी यह तुमने कैसे कहा ?"

प्रेरणा सटपटाई, फिर बोली, "जीवन पर अविश्वास कर मुझे पश्चात्ताप होता है। वह मुझसे और शायद किसी से भी झूठ नहीं बोलता।"

"ठहरो प्रेरणा !" डाक्टर फिर बोले, "तुम्हारी धारणा प्रभावित है क्योंकि तुम उस पर विश्वास करने लगी हो, इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि तुम्हारा निश्चय सही हो। अँगूठी के सम्बन्ध में भी जीवन आधा झूठ बोल गया—सम्भव है उसी प्रकार जीवन पूरा झूठ बोल गया हो। आखिर अँगूठी वनिता के पास कैसे गयी ?"

प्रेरणा ने एक बार पिता को देखा और आँखें नीची कर ली जिनमें लज्जा भरी पड़ी थी। कैसे बताती वह अपने पिता को वे सारी बातें जिनका ओट में रहना ही अच्छा था।

डाक्टर बोले, "प्रेरणा ! तुमने उत्तर नहीं दिया वेटी !"

प्रेरणा ने उचट कर पिता की ओर देखा और फिर आँखें नीची कर बोली, "पता नहीं पिताजी। जीवन को भी तो स्वयं पता नहीं।"

डाक्टर ने क्रोधित दृष्टि से घूर कर प्रेरणा की ओर देखा और बोले, "हूँ ! तो तुम जीवन की ही वाणी में बोलोगी। अँगूठी को तुमने उसे उपहार के रूप में दिया और हार ? तुम समझती होगी कि तुम्हारे कृत्यों को कोई देखने नहीं पायेगा क्योंकि तुम अन्धी बन गई हो और समझती होगी कि सारी दुनिया अन्धी है। मेरे और तुम्हारे बीच का व्यवहार आज तक सभ्य बाप-बेटी का सा रहा है—पर तुमने उसका विचार न कर चोरों का रास्ता लिया। जानती हो इस छुप-छुप कर जाने में तुम कितना नुकसान उठा सकती हो ? किसी ऐसे गड्ढे में गिर जाओगी कि निकलना आसान न होगा। मैंने तुम्हें बहादुर बन कर जीने की सीख दी थी। चाहा था कि खुली रोशनी में फिरो और दुनिया तुम्हें देखे, पर तुम दुनिया से ओट कर उस अँधेरे स्थान पर पहुँच गई हो जहाँ अपयश ही अपयश है।"

प्रेरणा दाँतों में अँगुली दबाये फफक-फफककर रो पड़ी। गिड़गिड़ाती हुई बोली, "मुझ पर सन्देह न कीजिए पिताजी, मैं आपकी शिक्षा के बाहर नहीं जा सकती। मैं ऐसा कोई काम न करूँगी जिससे आपको ठेस पहुँचे। आप यह कभी न भूलें कि मेरे अन्दर आपका ही तो प्रतिबिम्ब है।"

"ठीक है, पर जो कुछ तुमने किया क्या वह इसी शिक्षा के अनुकूल है जो मैंने तुम्हें दी ?" बीच ही में असन्तोष व्यक्त करते हुए डाक्टर साहब बोले।

"इसे दुर्भाग्य समझिए पिताजी कि परिस्थितियों ने आपको मुझे ठीक से समझने नहीं दिया वरना मुझसे ऐसी कोई भूल नहीं हुई जिस पर आपको पश्चात्ताप हो। मैं महसूस करती हूँ कि जीवन के प्रति आपकी धारणा अच्छी नहीं है, पर विश्वास कीजिये इसमें उसका कोई दोष नहीं है। ऐसा कोई अवसर आया ही नहीं कि उसे आप ठीक से समझ पाते। बल्कि जब कोई ऐसा अवसर आया भी तो उस समय दोनों पक्षों का स्वाभिमान दीवार बन कर बीच में खड़ा हो गया। आपने नीचे देखने में संकोच किया और उसे मुँह ऊपर उठाने में याचक बनने की सी अनुभूति हुई। दोषी कोई भी नहीं है—स्थिति में ही दोष है। आपने उसे बिना कारण के मकान खाली करने को कहा और उसने बिना आपत्ति के मकान छोड़ दिया। उसे दुःख अवश्य हुआ होगा और सम्भव है कि वह आपसे इस सम्बन्ध में बातें भी अवश्य करता क्योंकि दुःख के अतिरिक्त उसकी व्यवस्था का भी प्रश्न था जोकि वस्तुतः जड़ से उखड़ गई थी, पर इस अनुभूति से कि मकान मालिक के रूप में नहीं बल्कि संघर्ष को बसाने की चिन्ता में आपने उसे मकान खाली करने को कहा था··· उसके स्वाभिमान ने आपके सामने गिड़गिड़ाने की आज्ञा नहीं दी। जीवन में कोई दोष न हो, ये मैं नहीं कहती। दोष तो प्रायः सब में ही होते हैं। उस का स्वभाव संकोचशील है और संकोचशील व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रखर रूप से तभी सामने आता है जब उसका संकोच दूर हो जाता है। आपको सम्भवतः दुःख हो या नहीं पर आश्चर्य अवश्य होगा कि मेरा हार मुझसे अलग तब हुआ था जब मेरा उससे अधिक सामीप्य भी नहीं था।

उसको नये मकान में व्यवस्थित करने में मैंने वह हार बेच डाला यह बात

मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। जीवन को यदि यह पता लग जाए तो सम्भव ही नहीं, बल्कि निश्चित ही समझिये कि वह किसी मूल्य पर भी वह हार मुझे वापस लाकर देगा।"

"तुम्हें हार बेच कर उसकी सहायता करने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी ?"

"आवश्यकता नहीं है, जो संस्कार मैंने आपसे लिए हैं और जिनमें पल कर मैं इतनी बड़ी हुई हूँ, उनकी ही माँग पर मेरा उस समय यह कर्त्तव्य हो गया था कि किसी भी मूल्य पर मैं जीवन को पुनः व्यवस्थित करती ''न केवल मकान की व्यवस्था कर, अपितु मानसिक रूप से भी। और इसीलिए जब वह प्रायः दिल्ली छोड़ ही सा चुका था, मैंने उसे पुनः दिल्ली में रहने की प्रेरणा दी''' मैं कह सकती हूँ पिता जी कि यह सब कुछ एक प्रकार से एक कठपुतली का सा खेल रहा जिसके धागे अनजाने में आपकी अँगुलियों से गूँथे जाते रहे और दुर्भाग्यवश जिस धागे से जीवन का पुतला जुड़ा हुआ था, वह एक दूसरे धागे से उलझ कर टूट गया और जीवन मंच से दूर जाकर गिर पड़ा।"

"और दूसरा पुतला सम्भवतः संघर्ष था'''यही कह रही हो न ?"

"जी हाँ'''मैंने धागे पर गाँठ देकर फिर जीवन को मंच पर लाकर रख दिया और उसके बाद जो कुछ हुआ—ऐसा प्रतीत होता है कि धागों को खींचने की क्रिया का संचालन अनजाने में ही आप के हाथों से मेरे हाथों में आ गया।"

"अनजाने में नहीं, तुमने मेरे हाथ को काट कर धागे अपने हाथ में लिये।"

"आपका हाथ बिल्कुल सुरक्षित है पिता जी'''"

"और मेरी प्रतिष्ठा ?"

"उस पर भी कहीं आँच नहीं आने पाई।"

"आँच नहीं आने पाई ? वचन देकर किसी को अपने घर आमन्त्रित करना और फिर इस नाटकीय ढंग से दिये हुए वचन को तोड़ कर उसका अपमान करने में मेरी प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आई ? क्या कह रही हो ?"

प्रेरणा कुछ सटपटाई पर फिर बोली, "यह कुछ समय के लिए अपवाद का विषय बन सकता है पिता जी, पर अन्ततः इसमें आँच आने वाली कोई बात नहीं। आप पर समाज इस समय वचन भंग का आरोप लगा सकता है पर जब बात बढ़ती है तो फिर 'क्यों' जैसे प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं, और जब वह 'क्यों' का प्रश्न उठेगा तो फिर समाज आपको इस आरोप से मुक्त कर आपके विपक्षियों के प्रति ही शंका प्रकट करेगा।"

"संघर्ष लड़की नहीं है प्रेरणा। लड़कों के विषय में शंका प्रकट करने की बात मैं समझ नहीं पाया। और यदि संघर्ष के विषय में कोई ऐसी शंका वाली बात भी हो तो मैं आरोप से कैसे मुक्त हो जाता हूँ। क्या मुझे वचन देने से पूर्व ही अपनी शंकाओं का समाधान नहीं कर लेना चाहिये था? मैंने वचन भंग किया है इस आरोप से मैं कैसे मुक्त होता हूँ?"

प्रेरणा हँसी और बोली, "ईश्वर की कृपा है पिता जी कि आपको अपनी भूल की अनुभूति हो गई पर भूल करना अपराध नहीं है, यह तो मानविक विशेषता है। हाँ, यदि आप इस भूल की उपेक्षा करते तो वह अपराध ही नहीं—पाप भी था और उससे आपकी प्रतिष्ठा को ऐसा खतरा पैदा हो जाता कि न जाने उसके प्रवाह में बह कर मैं और आप कहाँ अपने को पाते?"

डा० स्वरूप ने गहरी दृष्टि प्रेरणा पर डाली और फिर चिन्तनशील मुद्रा में नीचे फ़र्श को देखने लग गये। उन्होंने महसूस किया कि वास्तव में प्रेरणा के शब्दों में काफी सत्य छुपा हुआ था। पर प्रेरणा समाज से 'क्यों' वाले प्रश्न को उठाने की आशा रखती है—उसका भी तो ठोस आधार होना चाहिये। क्या प्रेरणा के पास उसका ठोस आधार है? इसी प्रकार एक पुतले की तुलना में दूसरे पुतले को ऊपर उठाने वाली बात की भी चर्चा हुई। तो क्या प्रेरणा का यह समझना ठीक है कि पिता की अपेक्षा उसका चुनाव अधिक उचित और विवेकपूर्ण है? डा० स्वरूप के समक्ष ये सारे प्रश्न मूर्तिमान हो उठे। उन्होंने फिर एक बार प्रेरणा को देखा और कमरे से उठकर चले गये। अपनी निर्णायक शक्ति पर विश्वास कर शायद उन्होंने प्रेरणा के निर्णय को अन्तिम निर्णय की मान्यता देने से इन्कार कर दिया।

———

१३

संघर्ष और प्रेरणा की मँगनी टूटने पर डा० परिवार में उतना कोलाहल नहीं हुआ जितना बाहर और विशेषकर संघर्ष तो इतना तिलमिला गया कि यदि उसकी इच्छा पर ही जन्म और मरण निश्चित होता तो वह समस्त डा० परिवार को इस लोक से दूसरे लोक में भेज देता।

मँगनी की उस घटना से न केवल उसका वैयक्तिक जीवन हास्यास्पद बना बल्कि उसका परिवार भी समाज की उन गरम आलोचनाओं का शिकार हुआ जिनमें उन्हें लोभी, महत्वाकांक्षी और कृतघ्न कहा गया। कामताप्रसाद जी प्रकट में तो कुछ नहीं बोले थे पर अन्दर से संघर्ष के पिता को वचन-भंग करते हुए देखकर बिरादरी के कुछ ऐसे व्यक्तियों के समक्ष उन्होंने अवश्य अपना ज़हर उगला था। और प्रायः देखा गया कि सबकी सहानुभूति उनके साथ थी। जब मँगनी टूटी तो सबने मानो सन्तोष की साँस ली—उस सन्तोष में कुछ ऐसी भी भावनाएँ थीं जो किसी व्यक्ति को उसके बुरे कामों के परिणाम पर मिलने से प्रायः समाज में हुआ करती हैं। शान्ति के चाचा कान्ताप्रसाद जी ने सुना तो ऐसा अनुभव किया कि उनकी ओर से कोई उनका पक्ष लेकर मानो मुकदमा जीतकर आया हो। प्रेरणा के प्रति मन ही मन में उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की। प्रो० पी० स्वरूप और उनका परिवार प्रेरणा के उस अद्भुत व्यवहार से पहले तो चकित हो गया, पर बाद में एक अजीब उदासीनता उनके मन और हृदय

में घर कर गई। उन्हें विश्वास हो गया था कि संघर्ष और प्रेरणा का सम्बन्ध अब एक कोरी कल्पना रह गई थी जिसको साकार करने के प्रयत्न में एक ओर तो उनका परिवार प्रेरणा और सम्भवतः डा० स्वरूप का भी मोह खो बैठा था और दूसरी ओर स्वयं संघर्ष और उसके पिता जी का भी विश्वास गँवा बैठा था। समाज की और विशेषकर कान्ताप्रसाद जी की ओर से अन्दर ही अन्दर उन्हें बातें सुनने में आ रही थीं, उनसे भी उनकी परेशानी बढ़ती ही जा रही थी।

प्रो० स्वरूप को लगा मानो व्यर्थ ही बीच में पड़कर उन्होंने स्वयं अपने आप को बदनाम किया। श्रेय-प्राप्ति के लोभ में वह अपयश कमा बैठे। ये तो थे उनकी उदासीनता के कारण पर उदासीनता के अतिरिक्त उन्हें क्रोध भी था और वह था संघर्ष के पिता जी पर जो अब उल्टे उन्हें बदनाम कर रहे थे। सारा समाज, मित्र और सम्बन्धी उन पर छींटे कसते तो वह यही कहते कि प्रो० पी० स्वरूप के कहने में आकर ही शान्ति के चाचा कान्ताप्रसाद जैसे सज्जन व्यक्ति का साथ छोड़कर वे डा० स्वरूप को समधी बनाने का विचार कर बैठे थे। बात फैलती गई और फैलते-फैलते इतनी विकट बन गई कि संघर्ष के पिता मिश्रजी के साथ प्रो० पी० स्वरूप की जोरदार झड़प हो गई। उस झड़प की भी कुछ दिनों तक समाज में खूब चर्चा रही और उसके कुछ विशेष परिणाम सामने आये। मिश्र जी ने डा० स्वरूप पर कीचड़ उछालना शुरू किया और जिस मात्रा में उन्होंने डा० स्वरूप पर कीचड़ उछाला उससे कहीं अधिक कीचड़ प्रो० पी० स्वरूप ने उत्तर में उन पर फेंका। परिणाम-स्वरूप मिश्र जी और प्रो० पी० स्वरूप के मध्य जो गुप्त वार्ताएँ संघर्ष और प्रेरणा की मँगनी के सम्बन्ध में हुई थीं, वह विस्तृत रूप से समाज के सामने आ गईं और उनकी जो प्रतिक्रिया हुई उससे प्रो० पी० स्वरूप और मिश्र जी दोनों सन्तुष्ट हुए प्रतीत होते थे। प्रो० पी० स्वरूप प्रयत्नशील थे कि डाक्टर परिवार के साथ उनके सम्बन्ध वैसे ही मधुर बने रहें जैसे पहले थे। अतएव जब मिश्र जी ने डा० स्वरूप की निन्दा की तो प्रो० स्वरूप को अवसर मिल गया कि वह डा० स्वरूप के प्रति अपनी निष्ठा, आदर और स्नेह प्रदर्शित कर अपने बिगड़े हुए सम्बन्धों में सुधार ला सकें—अतः उन्होंने इस ढंग से उन

शब्दों में डाक्टर परिवार का पक्ष लेते हुए मिश्र जी को लताड़ दी जिससे उसके उपरान्त एक ओर मिश्र जी डा० परिवार के प्रति कुछ और कहने में सहम से गए और दूसरी ओर डा० स्वरूप को यह विश्वास हो गया कि उनके चचेरे भाई की निष्ठा उनके प्रति ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। इसी प्रकार मिश्र जी को भी इस झड़प से वह अवसर मिल गया कि वह कान्ताप्रसाद जी के प्रति अपना स्नेह व्यक्त कर तनातनी को कम करने में सफल हो सकें जो उनके और कान्ताप्रसाद जी के बीच उत्पन्न हो गई थी। वे चाहते थे कि डा० स्वरूप से सम्बन्ध टूट जाने पर संघर्ष का रिस्ता शान्ति के ही साथ हो जैसा कि दो-तीन साल पूर्व तय हो चुका था। पर अब किस मुँह से वे कान्ताप्रसाद जी के पास जाते। अतः आवश्यक था कि इसके पूर्व कि उस टूटे हुए सम्बन्ध को जीवित करने के लिये कोई बात करते, वे बातचीत को प्रश्रय देने लायक थोड़ा-बहुत वातावरण बना लेते या ऐसी थोड़ी भूमिका तैयार कर लेते ताकि उन्हें लज्जित न होना पड़ता। अतः सारा दोष प्रो० पी० स्वरूप पर मढ़ कर उन्होंने कान्ताप्रसाद जी और उनके परिवार के साथ अपने पुराने सम्बन्धों का इस ढंग से बखान किया कि सचमुच जो घृणा और कटुता कान्ताप्रसाद जी को मिश्र जी के प्रति हुई थी वह पर्याप्त रूप से कम हो गई। मिश्र जी के सम्बन्ध प्रो० पी० स्वरूप के साथ अवश्य कटु हो गये थे पर परिस्थितियों को देख कर उन्हें इसका विशेष दुःख नहीं था। एक-दो माह इसी तरह बातें चलती रहीं और वह समाप्त तब हुईं जब कि यह सुनाई दिया कि संघर्ष और शान्ति की शादी तय हो गई। समाज के दो-चार प्रमुख व्यक्तियों को लेकर जब ब्याह का दिन तय करने मिश्र जी कान्ताप्रसाद जी के घर गये तो उन्हें कुछ तीखी बातें सुननी पड़ीं, पर उनमें तीव्रता नहीं थी। वह केवल उलाहने थे जो अपनों को ही दिये जाते हैं। इसे मिश्र जी ने भी अनुभव किया और उन व्यक्तियों ने भी जो मिश्र जी की ओर से ब्याह का दिन तय करने गये थे।

और आखिर वह दिन भी आ पहुँचा जब गाजे-बाजे के साथ घोड़ी पर सवार वर की वेष-भूषा में संघर्ष को लेकर मिश्र जी दल-बल सहित कान्ताप्रसाद जी के घर पहुँच गये। पिछली बातों को भुलाकर वधू-पक्ष अपने सारे

उत्साह को समेटे उस मंगल-बेला में सगे-सम्बन्धियों के साथ गले मिलने के लिये आतुर पूरी तैयारियों के साथ—शहनाइयों की गूँज में—वर-पक्ष का स्वागत करने उमड़ पड़ा। मुहल्ले की छतों और खिड़कियों से स्त्रियों के सिर बाहर निकल गये। बाजार का कोना-कोना बरातियों और बरात के दर्शकों से भरा हुआ—ऐसा आगे बढ़ रहा था मानों बाढ़ आ गई हो। सिनेमा के रिकार्ड और बाजों की ध्वनि विवाह के उस आह्लादमय वातावरण में उन्माद भर रहे थे। संघर्ष घोड़े पर चढ़ा हुआ उस पागलपन को देख रहा था और शान्ति अन्दर कमरे में वधू के वेष में सिमटी हुई उस कोलाहल को सुन रही थी।

सारी रात्रि उत्सव की चहल-पहल में गुज़र गई। युवकों के क़हक़हे, ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण, स्त्रियों के मांगलिक गीत और बरातियों की नज़ाकतों ने घड़ी की सूई को घूमते नहीं देखा। समय का आभास उस समय हुआ जब बरात बिदा होने को आई। हर्ष का स्थान विषाद ने ले लिया। वधू के प्रति मंगल-कामनाएँ व्यक्त होने लगीं।

बिरादरी के प्रायः सारे सदस्य उपस्थित थे। कुछ तो बारात के साथ आये थे और कुछ कान्ताप्रसाद जी के निमन्त्रण पर। इन्हीं में डा० स्वरूप, उनकी पत्नी और प्रेरणा भी थे जो पिछले दिन कान्ताप्रसाद जी के निमन्त्रण पर बारात का स्वागत करने आये थे और अब पुनः बारात बिदा करने आ गये थे।

प्रांगण में मण्डप बना हुआ था जहाँ सब बाराती बैठे हुये बिदाई का सत्कार प्राप्त कर रहे थे तथा सामने सजाये गये दहेज को देख रहे थे। तभी सिसकियाँ लेती हुई वधू को वहाँ लाकर वर की बग़ल में बिठाया गया। संघर्ष की आँखें अकस्मात् ऊपर को उठ गईं जब उसने वधू के वेश में शान्ति को सहारा देते हुए कई लड़कियों के साथ प्रेरणा को अपने पास आते देखा। शान्ति प्रेरणा के गले से लिपट रही थी और प्रेरणा की आँखों में आँसू थे। संघर्ष अपलक नेत्रों से देखता गया। ब्याह के वातावरण में जिस अलौकिक सुख और उन्माद को वह अनुभव कर रहा था वह प्रेरणा को देखते ही लुप्त हो गया—उसे लगा मानों वह एक बड़ी बाज़ी हार बैठा और उस हार की अनुभूति कराने मानों प्रेरणा जान-बूझकर साक्षी के रूप में वहाँ आई हो। सिर

Hardayal Singh Jalal

का मुकुट, पीत परिधान और एक लम्बी पल्टन आखिर किसलिए उसके साथ आई थी ? इसीलिये न कि अब उसकी उच्छृंखल वृत्तियों को तनिक अव-सर न मिले कि वह सक्रिय होकर कोई उत्पात कर सके ।

संघर्ष को लगा कि प्रेरणा शान्त हो वहाँ बैठी मानो यह समझ रही हो कि अब वह पिंजरे के अन्दर बन्द समाज का क़ैदी हमेशा के लिये उसके रास्ते से अलग हो गया है । अब वह एक साधारण गृहस्थी के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया था जिसकी दुनिया घर की चारदीवारी तक ही सीमित होती है । संघर्ष ने गर्दन नीचे झुका ली कि कहीं प्रेरणा उसकी दयनीय अवस्था को भाँप न ले । सिर झुकाये वह यही सब कुछ सोच रहा था कि कान्ताप्रसाद जी के सम्बोधित किये जाने पर वह उठ खड़ा हुआ । सामने डा० स्वरूप पत्नी सहित वर-वधू को आशीर्वाद देने आये थे । संघर्ष ने क्षोभ एवं ग्लानि से सिर झुका लिया ।

डाक्टर स्वरूप बोले, "तुम्हें क्या उपहार दूँ संघर्ष ? तुम्हारे लिये तो यही कामना करता हूँ कि खूब उन्नति कर सको ।"

फिर शान्ति की ओर मुड़ कर बोले, "पर बेटी ! तुम्हारे लिये एक मामूली सा उपहार है ।" और यह कहते हुये उन्होंने एक पैकेट प्रेरणा की ओर बढ़ाया । प्रेरणा ने पैकेट खोला और एक जगमगाता हुआ हार शान्ति के गले में पहना दिया ।

प्रेरणा बोली, "शान्ति जीजी ! मैं क्या उपहार दूँ तुम्हें ?" और यह कहते ही दोनों एक दूसरे के गले लिपट पड़ीं ।

उपहार देने का क्रम आरम्भ हो गया और वर-वधू के समक्ष उपहारों का ढेर-सा लग गया । उनमें कपड़े थे, जेवरात थे और भी मूल्यवान वस्तुएँ थीं । तभी चन्द भरपूरिया आगे बढ़ा ।

गद्गद् होकर कान्ताप्रसाद बोले, "डाक्टर साहब का ड्राइवर भी उपहार लाया है ।"

चन्द भरपूरिया बोला, "संघर्ष बाबू और बहन जी जुग-जुग जियें—बस मैं तो यही दे सकता हूँ । उपहार तो जीवन बाबू की ओर से है ।"

सब के कानों में एक झनझनाहट सी हुई। संघर्ष ने मुँह पर की झालरें उठा दीं। शान्ति का घूँघट भी थोड़ा हिला। कान्ताप्रसाद जी, मिश्र जी, डा० स्वरूप और प्रेरणा सहसा गम्भीर हो उठे।

कान्ताप्रसाद जी ने पैकेट खोलते हुये एक लिफाफा बाहर निकाला। लिफाफे को देखकर सब के अन्दर एक अजीब उत्सुकता उमड़ पड़ी और साथ ही में शंका। कान्ताप्रसाद जी ने लिफाफा फाड़ कर अन्दर का पत्र पढ़ा और फिर एक मुक्त साँस लेते हुये प्रेरणा से बोले, "ये पढ़ दो बेटा।"

पत्र में लिखा था—

"संघर्ष भाई और तुम्हें कोटि-कोटि बधाई। ईश्वर तुम्हारे दाम्पत्य-जीवन को सुखी रखे। इस समय कोई उपहार भेंट करने योग्य नहीं हूँ। पर यह मेरे ऊपर एक कर्जा रहा। इस कर्जे से यही लाभ होगा कि तुम्हारे प्रति अपने उत्तरदायित्व को न भूलूँ क्योंकि छोटी बहन के रूप में भी तो केवल तुम्हीं हो। कभी-कभी याद करने में संकोच न करना और इस समय इस पत्र को ही उपहार समझना।"

तुम्हारे बड़े भाई के समान ही—
तुम्हारा
छोटा जीजा

प्रेरणा ने पत्र पढ़ कर कान्ताप्रसाद जी को लौटा दिया। कुछ क्षणों तक सब मौन रहे और फिर बारात की बिदाई के लिये तैयार हो गये। जब शान्ति डोली में चढ़ी तो एक बार फिर प्रेरणा उसके गले लिपट गई। संघर्ष और शान्ति के चारों ओर पैसों की बौछार की गई जिनको उठाने भिखारी टूट पड़े। बैण्ड की ध्वनि फिर आकाश में गूँज उठी और शान्ति पिता का घर छोड़ संघर्ष की पत्नी बन कर संघर्ष के घर के लिये प्रस्थान कर गई।

शान्ति के मन में क्या-क्या विचार उठ रहे थे वह स्वयं नहीं जानती थी। उसके अन्दर आह्लाद था, मन में कौतूहल, आँखों में अश्रु और देह में सिहरन। सब भावनाएँ पुंजीभूत हो अतीत की याद और भविष्य का अन्दाज लगा रही थीं। अतीत की याद कर उसका मन रो रहा था। भविष्य की कल्पना कर उसका हृदय उछल रहा था। एक जीवन को छोड़कर वह दूसरे जीवन में प्रवेश

कर रही थी। चाचा का आश्रय छोड़ वह पति का आश्रय ले रही थी। न मालूम कैसा जीवन होगा अब उसका ? सब भविष्य के गर्भ में छुपा हुआ था। कौन कह सकता था कि अब उसके जीवन में पीयूष की वर्षा हो, उसका तन और मन उस सुखी दाम्पत्य की रिमझिम में नहाकर हरा हो जाय—उसकी वाटिका में पुष्प खिलें—पराग लुटे या फिर कहीं तूफ़ान आ जाय—बिजलियाँ गिरें और उसकी सारी दुनियाँ प्रलय की गोद में लुप्त हो जाय। शान्ति डोली में बैठी हुई प्रार्थना कर रही थी कि हे भगवान—उसके सारे पुण्य, बड़ों के सब आशीर्वाद उसके सौभाग्य की रक्षा करें, उसके नये जीवन को सुखी बनायें। और शान्ति का नया जीवन यथार्थ में तब आरम्भ हुआ जब उसके सास, श्वसुर एवं अन्य सम्बन्धी शादी के १५-२० दिन बाद अपने-अपने गाँव या घरों को चले गए। तब तक ये बीच के दिन शादी की ही धूम-धाम में गुजर गये। वह नवेली वधू की भाँति गहनों से लदी कभी किसी के पाँव छूती, किसी का आशीर्वाद प्राप्त करती या तो फिर किसी से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनती। घर की भीड़-भाड़ में न तो यह सम्भव ही था कि उसको संघर्ष के साथ कुछ बातें करने का अवसर मिलता, न संघर्ष के अन्दर ही उसने ऐसी उत्कंठा पाई कि वह किसी बहाने उसे देख लें या उससे मिलने का अवसर ढूँढ निकालते। फिर भी शान्ति को इससे कोई दुःख नहीं हुआ। न तो संघर्ष उसके लिए नया था और न वह ही संघर्ष के लिए नई थी। लखनऊ में तो वह प्रायः इतने समीप रहते थे कि लगते थे मानो दोनों एक ही परिवार के सदस्य हों। अतः नवेली वधू की झलक लेने की या उसके साथ सहवास की जैसे प्रबल उत्कंठा कुछ पतियों में होती है—वैसी ही उत्कंठा संघर्ष में न पाकर शांति को तनिक भी क्लेश न हुआ। बल्कि सास-श्वसुर के रहते हुए शान्ति ने उस परम सुख की अनुभूति की जो भरे परिवार की चहल-पहल में नई वधू को होती है।

जब शान्ति के सास-श्वसुर चले गये तो उसे घर यकायक सूना-सूना लगा। कहाँ तो पहले इतनी भीड़ थी कि वह कभी भी संघर्ष से दो मिनट बातें करने को सुखद अवसर भी नहीं निकाल पाती थी और अब कहाँ केवल दो प्राणी ही घर में रह गये थे। यदि अब वह बातें भी करें तो किस से ? संघर्ष

दस बजे घर से चला जाता था और शाम को यदि देर न की तो छः-सात बजे लौटता था, वरना आठ-नौ बजे ही प्रायः आता था। सारा दिन अकेली घर पर वह बेचैन हो उठती। घर का काम भी इतना नहीं था कि वह व्यग्र रहे। शुरू-शुरू में पाँच-सात दिन के बाद वह अपने चाचा जी के यहाँ चली जाती और एक-दो दिन वहाँ रहकर वापस लौट आती। पर यह भी तो नित्य नहीं चल सकता था। संघर्ष के खाने-पीने की व्यवस्था बिगड़ जाती थी और फिर संघर्ष को भी यह पसन्द नहीं था कि शान्ति इस प्रकार चाचा के घर जाती रहे। अतः शान्ति के लिये दिन में समय काटना एक समस्या सी बन गई। शान्ति जानती थी कि उसके सास-श्वसुर ने उसे गाँव ले जाने का प्रस्ताव रखा था पर संघर्ष ने अपनी सहमति नहीं दी थी। उसने अपनी खाने-पीने की व्यवस्था का ही बहाना बनाया था। शान्ति भी चाहती थी कि कुछ दिन संघर्ष के ही साथ रहती। गाँव फिर पीछे कभी चली जाती। अस्तु, उसके सास-श्वसुर ने अधिक ज़ोर नहीं दिया था। लेकिन अब शान्ति उस एकाकी जीवन से इतनी उब गई कि एक दिन वह संघर्ष से गाँव जाने का प्रस्ताव कर ही बैठी।

संघर्ष कुछ सोचकर बोला, "घर भेजने में मुझे तो कोई आपत्ति नहीं पर शादी हुए अभी दो महीने भी तो नहीं हुए। यदि जाओगी तो पिता जी ही क्या सोचेंगे? इससे अच्छा तो यही था कि उन्हीं के साथ चली जातीं।"

शान्ति शरारत के स्वर में बोली, "अजी उस समय चली जाती जैसे कि तुम सचमुच जाने देते। कुढ़-कुढ़ के रह जाते।"

संघर्ष हंसा और बोला, "मैंने तुम्हें रखा है? ये क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हारा अपना ही हाल बुरा हो रहा था। जब माता-पिता थे तब तो दुआ करती रही होगी कि कब वे जायें और कब तुम अपनी भरी जवानी का आनन्द ले सको।"

संघर्ष ने ठहाका लगाया और शान्ति दाँतों से जीभ दबाते हुए बोली, "बेशर्म कहीं के! शर्म भी तो नहीं आती बोलने में।"

"शर्म किस की? ठीक ही तो बोल रहा हूँ।"

"अच्छा बस जाने दो। ये बताओ कि तुम मुझे भेज रहे हो या नहीं?"

"देखो शान्ति ! जो मैंने कहा है वह ठीक ही है। मैं समझता हूँ कि तुम्हें यहाँ अकेला अच्छा नहीं लग रहा, पर धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाओगी। और फिर अभी तो तुम्हें किसी ने देखा भी नहीं। एक दिन यहाँ शानदार पार्टी होगी। तुम पड़ोस की स्त्रियों से अपना परिचय बढ़ाओ। गृहस्थ जीवन तो ऐसा ही होता है। सभी मियाँ-बीबी बनकर गृहस्थी का श्रीगणेश करते हैं, पड़ोस वाले बनते हैं—फिर माँ-बाप और फिर दादा-नाना आदि-आदि जाने क्या-क्या बनते रहते हैं। इसमें घबराने की कौन-सी बात है ?"

"आंऽऽ ! घबराऊँ नहीं ? तुम चले जाते हो सुबह नौ बजे और फिर आते हो चार घड़ी रात बीते। मर्दों का क्या है ? तफ़रीह रहती है। ऐसे घुटे-घुटे रहना पड़ता तुम्हें जैसा स्त्रियों को रहना पड़ता है तो पता चले।"

"ऐसी बात नही शान्ति, यह तो क्रम है विधाता का। उसे मिटाया थोड़ा जा सकता है ? तुम्हारा तो यह प्रयत्न होना चाहिए कि समय कैसे ठीक से व्यतीत हो। तुम्हारा यदि कुछ शौक़ है तो उसे पूरा करो। यदि ऐसी बात नहीं तो कोई शौक़ पैदा करो। समय काटना कौन सी कठिन बात है ?"

शान्ति बोली, "अच्छा ऐसा क्यों नहीं कर लेते कि माता जी को यहीं बुला लो ? वह रहेंगी तो उनकी भी सेवा करने का सौभाग्य मिल जायेगा और साथ भी हो जायेगा। आखिर वह भी तो कुछ महसूस करेंगी कि बेटे-बहू से कुछ सुख मिल रहा है।"

संघर्ष बोला, "सब हो जायेगा। माँ भी आ जायेगी और जो तुम्हारी इच्छा हो वह भी पूरी होती जायेगी पर उतावलापन अच्छा नहीं। ठाट से रहो। आप भी खुश रहो और हमें भी खुश रखो। अरे यही तो हैं मौज के दिन इस समय कह रही हो कि माँ को बुलाओ, पिताजी को बुलाओ और एक दिन आयेगा जब इन दिनों के लिये तरसोगी।"

शान्ति हँस पड़ी। फिर हँसते हुए संघर्ष ने शान्ति की ठोड़ी पकड़ी और मुस्कराते हुए पूछा, "अच्छा ये तो बताओ कि माँ कब बन रही हो ?"

"छी" शान्ति ने संघर्ष का हाथ झटकते हुए उसकी ओर देखा और फिर हँसते हुए गर्दन नीची कर ली।

इसके बाद शान्ति ने गाँव जाने का विचार छोड़ दिया। संघर्ष के शब्दों

ने उसका उत्साह बढ़ा दिया था। वह ऐसे काम ढूँढ निकाल लाती जिससे एक तो उसका समय व्यतीत हो जाता और दूसरे घर व्यवस्थित सा दिखाई देता। उसने कमरे के एक कोने पर ठाकुर जी की प्रतिमा लाकर रख दी, जिसकी वह नित्य सुबह और शाम पूजा किया करती। दो-चार गमले लाकर उनमें तुलसी और फूलों के छोटे-छोटे पेड़ लगा दिए। रहने और खाने-पीने की भी उत्तम व्यवस्था कर दी। एक कमरा अपने शयन और अन्य गृहस्थ के उपयोग के लिये बना लिया और एक कमरा अतिथियों के लिए। कमरों में सब सामान उचित ढंग से रख दिया। और यथोचित जिस साज-सजावट की आवश्यकता थी वह सब पूरी कर दी। दोपहर बाद यदि कुछ समय मिल जाता तो वह पड़ोस की स्त्रियों में जाकर काट आती जिनसे उसने थोड़ा-बहुत सम्पर्क बना लिया था। संघर्ष के कहे अनुसार उसने इस प्रकार अपनी दिनचर्या बना ली थी कि जो सूनापन उसे अखरने लगा था। उसका उसे अब विशेष आभास नहीं होता था। हाँ, संघर्ष से उसे यह शिकायत रहने लगी थी कि वह पूर्ववत् ही कभी भी समय पर घर नहीं आता था और जब आता था तो नित्य कोई न कोई मित्र अवश्य उसके साथ होता। परिणाम यह होता था कि जिन मधुर घड़ियों को वह संघर्ष के साथ बिताती, वह घड़ियाँ अब संघर्ष अपने मित्रों के साथ हास-परिहास में नष्ट कर देता था। कभी-कभी तो यहाँ तक होता कि संघर्ष के मित्र रात को भी वहीं सो जाते। शान्ति का विरोध इस बात पर नहीं था कि उसका घर संघर्ष के मित्रों के लिये बन्द रहे, अपितु इस बात से कि मित्रों का हस्तक्षेप इतना न बढ़े कि वह उनके पारिवारिक जीवन से टकरायें। इसके अतिरिक्त एक और भी बात थी। संघर्ष ने अभी तक कभी भी पूरा का पूरा वेतन लाकर शान्ति को नहीं दिया था। जब कभी शान्ति को पैसों की आवश्यकता होती उसे संघर्ष से माँगना पड़ता था। पैसे माँगने में उसका कोई अपमान नहीं होता था, पर इस प्रकार माँगने से उसे अपनी आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाना असम्भव हो जाता था। उसे नहीं मालूम था कि उसके पति की मासिक आय क्या थी और उसे कितने रुपयों के अन्दर गृहस्थी का खर्च चलाना था। गाँव से पिता जी के पत्र आ रहे थे कि संघर्ष उन्हें यथाशक्ति जो कुछ बन पड़े अवश्य महावारी कुछ न कुछ भेजे। पर आजकल

तो यह स्थिति थी कि उसे घंटा आध घंटा संघर्ष से बात करने का भी समय नहीं मिल पा रहा था।

एक दिन संघर्ष जब घर आया और उसके साथ शान्ति ने कोई मित्र नहीं देखा तो बोली, "आज मित्रों ने तलाक तो नहीं दे दिया ?"

संघर्ष ने शान्ति को देखा और हँस दिया। बात वहीं पर समाप्त हो गई, पर रात को काम से निवृत्त हो जब शान्ति संघर्ष के पास बैठी तो फिर पूछ ही बैठी—

"तुम पिता जी के पत्रों को पढ़ते भी हो या नहीं ?"

"पढ़ता क्यों नहीं हूँ।"

"क्या पढ़ते हो ?"

"जो कुछ लिखा रहता है।"

"मैं ये पूछ रही हूँ कि क्या लिखा था उनमें ?"

संघर्ष ने घूर कर शान्ति की ओर देखा और फिर बोला, "शान्ति तुम पूछना क्या चाहती हो, साफ़-साफ़ बताओ।"

शान्ति ने भी ज़रा मुँह फुलाया और बोली, "देखो जी ! अब तुम्हारी शादी हो चुकी है। पहले तुम चाहे जितनी मनमानी करते रहे वह, अब नहीं चल सकती। तुम्हारा हाथ पहले चाहे जितना ही खुला क्यों न हो, अब वैसा नहीं हो सकता। तुम सच-सच बताओ कितना कमाते हो महीने में ?"

"जितना तुम्हारे पास आता है।"

"वेतन कितना है ?"

"दो सौ।"

"तो पहली तारीख को दो सौ रुपये मेरे हाथ में रख दिया करो और जो भी तुम्हारे मित्र आदि तुम्हारे घर पर आयें, उसकी पूर्व-स्वीकृति तुम्हें मुझ से लेनी होगी, समझे ?"

संघर्ष को चुप देख शान्ति फिर बोली, "पिता जी के इतने पत्र आ गये, तुम्हें उनकी कोई चिन्ता नहीं। सोचते होंगे कि बहू ही शैतान है। उन्हें क्या मालूम कि बहू को यदि एक रुपये की आवश्यकता हुई तो उसके लिये भी उसे उनके सुपुत्र के आगे हाथ फैलाने पड़ते हैं। तुम ये कर लिया करो, वो

कर लिया करो, शौक पैदा करो—न मालूम कितने उपदेश रोज़ के सुनती हूँ । पर मैं पूछती हूँ तुम पर भी कोई उपदेश असर करेगा कि नहीं ? अब के यदि उसी दिन तुमने मुझे पूरा वेतन नहीं दिया तो सच कह रही हूँ, घर लिख दूँगी ।"

"अच्छा बाबा अच्छा, और कुछ ?"

"और इन मित्रों का सिलसिला कम हो ।"

"ये नहीं हो सकता ।"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

संघर्ष कुछ गम्भीर हो बोला, "देखो शान्ति ! जो चीज़ मानने योग्य है, उसे मैं मान चुका ; पर जिन बातों पर तुम व्यर्थ हठ कर रही हो, वे मुझे पसन्द नहीं । मेरे मित्रों से तुम्हें क्या चिढ़ है ? और यदि है तो उसका मैं कुछ नहीं कर सकता । तुम्हें क्या मालूम कि इन मित्रों से मुझे क्या-क्या लाभ हैं ? और किसको नहीं होते ? ऐसा व्यक्ति तो मैं हूँ नहीं कि ऑफ़िस से घर आकर खटिया लगा कर सो जाऊँ । दस जान-पहचान के हैं, उनसे मिलना होता है—काम-धाम की बातें होती हैं । दुनियाँ में रहना है तो दस-पाँच अपने बनाने पड़ते हैं, ताकि जब मरो तो दो-चार मरघट तक तो जायें । तुम ये सब कुछ नहीं समझतीं और यदि समझतीं तो ऐसा नहीं कहतीं ।"

शान्ति बोली, "मैं कब कह रही हूँ कि तुम किसी से मित्रता न रखो । प्रश्न तो यह था कि खर्चा-पर्चा जरा ठीक ढंग और व्यवस्थित रूप से हो ताकि यदि कुछ बच सके तो थोड़ा-बहुत गाँव भी भेज सकें । आखिर उधर भी तो कुछ हमारा कर्त्तव्य है ।"

"ठीक है, पर सारी बातों को सोच कर ही तो कुछ किया जा सकता है । तुम तो ऐसे आदेश के स्वर में बोल रही हो मानो मैं मूर्ख हूँ और तुम ही जैसे सब कुछ जानती हो या सब सोच-विचार कर ही जैसे किसी निर्णय पर पहुँची हो । तुम क्या जानो कि यह अवस्था बुनियाद जमाने की है और बुनियाद जमाने में सब ओर देखना पड़ता है । यदि कुछ बच नहीं पाता तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं । अन्ततः जिसमें हित हो—इस समय तो उसी की ओर देखना है । घर में ये बात तो नहीं कि वे लोग

किसी संकट में हों। हमसे अच्छा खा-पी रहे हैं। जमी हुई व्यवस्था है। माता-पिता तो आशा लगाये ही रहते हैं कि पुत्र कमाऊ बने और उसके मनीआर्डर आते रहें, चाहे वे रुपये फिर तिजोरी में सड़ते रहें। और मुझे इसमें कोई आपत्ति थोड़ी ही है। कमाने लग जाऊँगा तो भेजूँगा ही, पर पहले ज़रा व्यवस्थित तो हो लूँ। अब तुम्हीं बताओ शान्ति ! ये जो मेरे मित्र हैं, मेरी कितनी सहायता करते हैं। आज यदि मेरे ऊपर कोई संकट आ जाए तो सच कह रहा हूँ—सम्बन्धियों और पड़ोस में से कोई भी आगे नहीं आयेगा—ये ही लोग होंगे जिनसे कुछ आशा रखता हूँ। अब यदि इन्हें ही घर पर न आने दूँगा तो क्या अच्छी बात होगी ?"

"क्या सहायता करते हैं ये तुम्हारी ?"

"यही तो कहता हूँ कि तुम्हें कुछ पता हो तो समझो। आज मेरा दिल्ली में इतना बड़ा सर्किल है—वह कैसे है ? कौन-सा विभाग है जहाँ मेरा कोई न कोई परिचित न निकले। डा० स्वरूप इतने बड़े व्यक्ति हैं, ज़रा उनसे कहो कि अमुक काम करवा दें। खिसिया जायेंगे। रुपये से ही तो कोई बड़ा नहीं बनता। पर आज तुम कहो कि कोई परमिट लेना है, किसी की मामूली नौकरी लगानी है या कुछ और। संघर्ष के दिमाग़ में बात आनी चाहिए—कोई कारण नहीं कि बात न बने। मैं पूछ रहा हूँ शान्ति ! तुम समझती क्यों नहीं हो कि तुम किसी हीरे के पल्ले पड़ी हो, हीरे के। लेकिन यह हीरा, हीरा कैसे बना ? दुनिया को अपना बना कर। इसमें सफलता तभी मिल सकती है जबकि तुम तनिक उदार बनो। ये नहीं कि रुपये ख़र्च हो गए। घर की सहायता नहीं कर पा रहे। रुपया तो हथेली का मैल है। कहाँ जाएगा ? ज़रा हाथ में पहले सफाई आनी जरूरी है और···कुछ समझ रही हो या नहीं ?"

"समझ रही हूँ बाबा !"

"हाँ ! अब कभी इस स्वर में बात न करना कि मानो मैं मूर्ख हूँ। पतिदेव पर विश्वास रखो और मौज करो, समझीं ?"

शान्ति ने प्रफुल्लित होकर गर्दन हिला दी और हँसती हुई बोली, "बड़े नटखट हो तुम। न जाने क्या-क्या बातें कर तुम मेरे सारे इरादों को बदल देते हो। सच कह रही हूँ, फ़ुसलाना तो तुम्हें इतना आता है कि न पूछो।"

संघर्ष बिलकुल क़रीब आकर बोला, "ये बात है ? तो फिर दो कुछ इनाम।" और कहते हुए वह आगे को झुक गया। शान्ति तपाक से उठ खड़ी हुई। मुँह चढ़ाके बोली, "बेशर्म !"

इसी प्रकार शान्ति कई बार इरादे बना चुकी कि ख़र्च के मामले में वह कुछ व्यवस्थित होकर चले, पर संघर्ष की बातें सुनकर वह फिर फिसल कर रह जाती। विवाह के दिन से वह यह संकल्प कर चुकी थी कि संघर्ष के साथ कभी उसका गतिरोध उत्पन्न न हो। वह संघर्ष की आदतों को जानती थी। उसके स्वभाव से भी परिचित थी। उसे डर था कि यदि उसने प्यार और नम्रता से काम न लिया तो संघर्ष के साथ उसकी निभनी मुश्किल ही थी। अतः आरम्भ से ही वह इस ओर सतर्क थी कि कभी भी उसके मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय जो संघर्ष को अप्रिय लगे। उसने कभी भी प्रेरणा या जीवन का संघर्ष के सामने ज़िक्र न किया, न कभी उसने प्रेरणा के प्रति संघर्ष की रुझान की बात ही प्रकट की। वह समझती थी कि ये सब बातें उसके विवाहित जीवन को दुखी बना सकती थीं। अतः उन सब बातों से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद कर उसका केवल एक ही प्रयत्न रहता था कि प्यार से अथवा आग्रह से वह संघर्ष के साथ यथासम्भव मिलकर सुखी जीवन बिताये। इसकी एक ही कुञ्जी थी और वह यह कि वह संघर्ष को अपनी बात मनवाने में उसे कोई कठिनता न हो। अभी तक संघर्ष के व्यवहार से वह सन्तुष्ट थी और इतनी सन्तुष्ट थी कि उसे विश्वास हो चला था कि संघर्ष के साथ उसका जीवन सुखमय बीतेगा। खर्च-पर्च के मामले में उसे असन्तोष था पर वह जानती थी कि ऐसा असन्तोष तो कितने ही परिवारों में रहता है और उसका इतना महत्व नहीं था कि पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में वह विशेष कटुता पैदा कर सके।

पर ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गये शान्ति ने महसूस किया कि उसके और संघर्ष के पारस्परिक सम्बन्ध चाहे कितने ही मधुर क्यों न हों—उसका संघर्ष पर वह अधिकार नहीं हो सका जिसे पाने के लिये उसका भावुक मन निरन्तर संघर्ष कर रहा था। उसका प्यार इतना बलवान् न बन सका कि वह संघर्ष की इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सके—संघर्ष को झुका सके।

विपरीत इसके, उसने लक्ष्य किया कि उसका आग्रह कभी भी संघर्ष को अपनी हठ या निर्णय से न डिगा सका। उसके कितनी ही सौगन्धें दिलाने पर भी संघर्ष कभी समय पर घर नहीं आया।

वह अब अवश्य महीने की पहली तारीख को दो सौ रुपये उसके हाथ में रख देता था पर उसका कोई अर्थ नहीं था, क्योंकि कभी भी संघर्ष ने उसे इतना अधिकार नहीं दिया कि वह पति की किसी ऐसी माँग को ठुकरा दे जिसे वह फ़िज़ूल समझती हो। शान्ति ने अनुभव किया कि संघर्ष एक सिद्धान्त पर चल रहा था। वह यह कि जब तक वह पति की इच्छाओं के अनुकूल चलती रहे—उसके पति का उससे कोई गतिरोध नहीं, पर जिस दिन वह उसकी स्वतन्त्रता पर कोई आघात कर बैठी, सम्भव है—उसका पति उस स्थिति को सहन न कर सके। और हुआ भी यही। उसने अपने सन्देह का परीक्षण करना चाहा। अपने प्यार को पति की इच्छा के विरुद्ध लाकर खड़ा कर दिया,यह देखने के लिए कि अपना सर्वस्व देकर भी उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिये एक और साधन मात्र बनकर उसके आश्रय में पल रही है। इस सन्देह को दूर करने का अवसर उसे शीघ्र ही मिल गया।

संघर्ष ने शान्ति से साठ रुपये माँगे तो उसने स्वाभाविक रूप से उसका कारण पूछा। संघर्ष से सन्तोषजनक उत्तर न पाने पर इतनी बड़ी राशि को देने में उसे स्वाभाविक संकोच हुआ और उसने साफ़ मना कर दिया। दो-एक दिन इसी तरह आग्रह करता रहा पर शान्ति अपनी बात पर अड़ी रही कि जब तक उसे साफ़-साफ़ नहीं बताया जाता वह एक कौड़ी भी नहीं देगी। आख़िर संघर्ष ने बताया कि विवाह के उपलक्ष में उसने जो पार्टी का मित्रों को वचन दे रखा है, उसके आयोजन में उसे रुपये चाहिये थे। शान्ति कृत्रिम क्रोध के साथ बोली, "तो पार्टी कहीं घर से बाहर करोगे ?"

"हाँ, गेलार्ड में होगी—बस यही कोई पाँच-छः मित्र होंगे।"

शान्ति कृत्रिम हँसी में बोली, "अच्छी रहेगी भई पार्टी। वास्तव में होटल के अतिरिक्त तो ऐसी पार्टियों का अन्यत्र प्रबन्ध होना मुश्किल ही है।"

फिर गुस्सा करते हुए बोली, "मैं पूछती हूँ कि यह सब तुम क्या सोचे

रहते हो जी। पार्टी करनी है जनाब ने गेलार्ड में। क्या पार्टी घर पर नहीं हो सकती जो तुम व्यर्थ इतने रुपयों पर पानी फेरने के लिए तुले बैठे हो? बताओ साठ रुपये में कितने पकवान बना दूँ और कितने व्यक्तियों को खिला दूँ? पार्टी करेंगे आप विवाह के उपलक्ष में और वधू आपके लिये घर पर रोती रहेगी। कुछ समझते भी हो कि किसे कहते हैं पार्टी?"

"क्या मतलब?" संघर्ष ने पूछा।

"विवाह के उपलक्ष में पार्टी देंगे आप बग़ैर मेरे?"

"लेकिन घर पर भी तो व्यवस्था नहीं हो सकती। तुम हो कि किसी से मिलना ही पसन्द नहीं करतीं। मैं कब चाहता हूँ कि पार्टी में तुम सम्मिलित न होओ। होटल पर इसीलिये कर रहा हूँ कि वहाँ कोई यह न कह सके कि कहाँ है भई तुम्हारी बीवी।"

"हाँ जी, हम तो गँवार हैं न बिल्कुल। आपने कभी मिलाया किसी से? इतने अवसरों पर आपके मित्र आये हैं, कभी किसी से शिष्ट ढंग से परिचय कराया आपने? मित्र मानो संसार में तुम्हारे ही हैं और किसी के नहीं। लखनऊ में हमारे चाचा जी के मित्र ही नहीं थे और शायद तुम यही सोचते होगे कि कभी उनके मित्र हमारे घर आते ही नहीं थे। ढंग होता है जी इन सब बातों का।"

"छोड़ो शान्ति लखनऊ की बातों को। जानता हूँ तुम्हारे चाचा जी को और उनके मित्रों को भी। हर एक बात पर यूँ तुलना नहीं किया करते। तुम्हारे चाचा जी का क्या स्तर है, ये मुझे भी मालूम है; पर मैं किस स्तर का व्यक्ति हूँ, ये तुम्हें मालूम नहीं। उनके जो मित्र थे उनको भी मैं जानता हूँ।"

"हाँ, वे तो मनुष्यों में ही नहीं थे, यही न?"

"इसमें भी कोई सन्देह है? कुएँ के मेंढक—करली कभी उछल-कूद और वह भी दो-चार गज़। उनकी तुलना कर रही हो मुझ से?"

"बस रहने दो। जानती हूँ तुम्हारे मित्रों को। मित्र कहते लज्जा भी तो नहीं आती। दो-चार अवारा इकट्ठे कर लिये होंगे और फिर कीचड़ उछाल रहे हो उन व्यक्तियों पर जो जानते हैं कि क्या होती है मित्रता और क्या होती है मित्रता की मर्यादा।"

"मेरे मित्र अवारा हैं ?"

"मैं तो यही अनुमान लगाती हूँ, वरना जिस पार्टी की तुम बात कर रहे हो वह आज नहीं विवाह के तुरन्त पश्चात् ही होती और वह भी होटल में न होकर घर पर ही होती, जिसमें ये पाँच-छः व्यक्ति ही नहीं, बल्कि उनके माता-पिता या भाई-बहिन और कुछ सम्बन्धी आते और आशीर्वाद देते—अथवा जैसे मित्रता में चलता है, कुछ उपहार देकर परिचय बढ़ाते। पर आपके मित्र हैं कि न जाने कितने अवसरों पर आ गये होंगे। और अब कुछ मज़े लूटने के लिए विवाह के नाम पर पार्टी को बदनाम कर रहे हैं, फिर उल्टा आप कहते हैं कि इनसे मैंने परिचय प्राप्त नहीं किया। इनको भला जानती ही क्या हूँ और यदि आप मुझे होटल में ले जायें तो भला इनके साथ मेरा जाना ही कैसे होगा ? घर की बहू क्या इतनी सस्ती होती है कि चलतों के साथ चलती बने ?"

शान्ति बोल ही रही थी कि संघर्ष गुस्से में बोल उठा, "मुझे नहीं है शान्ति तुम्हारी आवश्यकता। मैंने इसीलिये पहले कह दिया था कि मैं जो कुछ भी करूँगा, होटल में करूँगा। तुम सस्ती हो या कुलीन, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

"तो फिर सीधे कह देते कि मज़े लूटने हैं।"

"हाँ, बस यही समझ लो।"

शान्ति कुछ रुकी और फिर बोली, "मेरे पास ऐसे कामों के लिये पैसे नहीं हैं।"

संघर्ष का मुख गुस्से में लाल हो गया। कुछ क्षणों तक वह शान्ति की ओर घूरता रहा, फिर ऐंठता हुआ बोला, "अच्छी बात है" और कमरे से बाहर हो गया।

१४

डा० स्वरूप और प्रेरणा अँगूठी की चोरी के सम्बन्ध में जब यकायक गर्म होकर उसके मकान से चले गये तो जीवन शान्तचित्त होकर, जो स्पष्टीकरण उसने डा० स्वरूप को दिया था, उसकी प्रतिक्रिया का अनुमान लगाने लग गया। उसे प्रेरणा का वह रूप और वह शब्द याद आ गये जिन्हें कह कर वह उठ गई थी। क्या सोच कर उसने यह कहा था कि सारी कायरता इकट्ठी कर ये लोग डकैतियाँ डालते हैं? क्या वह उसे डाकू समझने लगी थी? क्या प्रेरणा को विश्वास हो चला था कि वह वनिता से प्रेम करता था और उस प्रेम को प्रकट करने में वह संकोच कर गया? उसके शब्दों का तो यही अर्थ निकलता था। तो क्या प्रेरणा उसको इतना ही समझ पाई थी? उसके चरित्र के प्रति क्या उसका विश्वास इतना स्थिर और चलायमान निकला? प्रेरणा के सम्बन्ध में उसकी तो धारणा कुछ और ही बन गई थी। वह समझता था कि प्रेरणा का उसके प्रति गंगाजल के समान पावन प्रेम है, जिसमें अविश्वास, सन्देह अथवा विरक्ति जैसे मैले विचार कभी भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। उसे प्रेरणा की बौद्धिक क्षमता, निर्भीक स्वभाव के प्रति जो आस्था हो गई थी वह यकायक इस घटना से विचलित हो गई और उससे भी अधिक दुःख हुआ उसे अपने प्रणय के अपमान पर। प्रेरणा ने संयम का परित्याग कर बगैर स्थिति का सही तौर पर पर्यवेक्षण किये घटना से प्रभावित होकर यकायक एक भ्रमात्मक धारणा बनाकर केवल अपनी बौद्धिक

निष्पक्षता को ही कलंकित नहीं किया, अपितु उस आत्मिक प्रेम की नैसर्गिकता पर भी एक जोर का प्रहार कर दिया था जिस पर परिस्थितियों की इन प्रतिकूल चालों को विफल करने की क्षमता का उसे पूरा विश्वास था। प्रेम एक न्यायालय की कार्यवाही तो नहीं है कि उसका मोड़ गवाहों के बयानों से निश्चित हो। वह तो मनुष्य की अन्दर की खूबियों का मन्थन किया हुआ वह पावन अमृत होता है, जो मृत्यु को जीवन देता है—सन्देह और प्रतिकार की सीमा के बाहर, बलिदानों पर पल कँर पृथ्वी को स्वर्ग बना देता है। जीवन को लगा कि प्रेरणा का प्रेम स्थायी और स्वच्छ भी हो पर इतना सरल और व्यापक नहीं होने पाया था कि उसके दम्भ को निमज्जित कर उसके स्वभाव को विनम्र और सामान्य बना सके। प्रेरणा के अन्दर अभी अमीरानापन था। वह जीवन को अपना चुकी थी पर उसका अमीर स्वभाव अभी ग़रीबी से घृणा करता था। उसे ग़रीबी के प्रति अभी सहानुभूति थी, प्यार नहीं था। और जीवन समझता था कि जब तक इस समदृष्टि का प्ररणा मे अभाव रहेगा उसका प्यार पूर्ण न हो पायेगा। लेकिन कौनसा व्यक्ति उसने ऐसा देखा था जो पूर्ण हो। उसके अन्दर ही क्या कोई कमी नहीं थी? वह डा० स्वरूप से सच बात कहने में संकोच कर गया था; इसलिये कि उसका विश्वास झूठा था। वह ग़रीब था और प्रेरणा अमीर की लड़की। वह इतना साहस न कर सका कि अपने और प्रेरणा के प्रेम को डाक्टर साहब के समक्ष प्रकट कर सके; क्योंकि अपने को वह इस योग्य नहीं समझता था कि उसे प्रेरणा का प्रणयपात्र कहा जा सके। उसके अन्दर भी तो गरीबी की भावना ठूँस-ठूँस कर भरी हुई थी, जो अमीरी के प्रति मेल-जोल रखती थी पर अमीरी को अपना न सकी थी। क्या फिर वह अपने को समदृष्टि वाला कह सकता था? और यदि नहीं तो उसका प्यार भी तो अपूर्ण था।

अब जीवन की विचारधारा प्रेरणा के प्रति चिन्तन करने की अपेक्षा ग़रीब और अमीर के बीच की उस खाई की ओर चली गई जो पहले से ही पर्याप्त गहरी चली आयी है और कालान्तर से जिसके पाट और चौड़े होते चले गये हैं। स्वयं उसके अनुभव ही बता रहे थे कि गरीब-अमीर की चर्चा परिणामों से चाहे उतनी खतरनाक न रही हो, पर लोगों ने उसको ऐसा रूप

दे दिया था कि आज का वातावरण किसी महामारी से उतना विषाक्त नहीं था जितना कि वर्गभेद से। न जाने कितनी विचारधाराएँ आज संसार में चल रही थीं, पर ज्यों-ज्यों नवीन विचारों को लेकर इनकी संख्या बढ़ रही थी, त्यों-त्यों वह खाई बजाय तंग होने के और चौड़ी होती दिखाई दे रही थी, मानो इन विचारों का उद्गम इसलिये नहीं हो रहा था कि वह तथाकथित वर्गभेद को समाप्त करे बल्कि इसलिये कि इस वर्गभेद से उत्पन्न खराबियों का नये नारों और नये प्रयोगों से प्रचार करे। आज वह पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद और न जाने कितने ही ऐसे वर्गभेदों को मिटाने वाली उग्र विचार-धाराओं को पैदा होते देख रहा था पर किसी एक विचारधारा को भी तो उसने ऐसा नहीं पाया जिसके प्रसार से वर्गभेद कुछ मिटा हो। अपितु वास्त-विकता तो यह थी कि भले ही जिस चीज का प्रभाव चाहे कुछ रहा हो पर जो अस्तित्व में कतई नहीं थी वह अब इतनी विकराल बनकर खड़ी हो गई थी कि सारा समाज उसके क्रूर जबड़ों में जकड़ा जाकर आज मुक्त होने की मौन कामना कर रहा था। आज की ये विचारधारायें उसे ऐसी लगीं मानो एक छोटी-सी मंजिल तय करने के लिये कुछ मार्गों के निर्देश करने में वे सब समाप्त हो गई हों। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये मानो वे साधनों का ही अनुसन्धान कर मूक हो चली हों अथवा रोग को नष्ट करने की चिन्ता में वे औषधियों की छान-बीन को ही अपना ध्येय समझ चली हों। परिणाम वह क्या देख रहा था कि जिस रोग की पीड़ा का रोगी को आज तक आभास नहीं था आज इन विचारधाराओं से प्रभावित होकर वह उनके कारण चिल्ला रहा था। भला यही यदि इन विचारधाराओं का परिणाम था तो क्या आव-श्यकता थी उनके ढोल पीटने की? किसी चीज की अच्छाई या बुराई तो उसके परिणामों को देखकर आँकी जाती है। कई विष भी बोतलों के अन्दर बन्द औषधियों के बीच रखे जाते हैं, क्योंकि वह भी औषधियों के जैसे परि-णाम देते हैं।

जब जीवन लेने वाले विष भी जीवन-दान दे सकते हैं तो क्या गरीब और अमीर में ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता कि वह प्रेम और सद्भाव से रह सकें? यह तो केवल प्रयोग का विषय था। मनुष्य जैसे विषों का प्रयोग

करना सीखा है क्या वैसे ही आज का विचारक अपने ही सम्बन्ध में यह खोज नहीं कर सका ? विष तो ऐसे भी होते हैं जो आदि से ही विषैले होते हैं पर मनुष्य तो आदि में साक्षात् भगवान् का रूप रहा है, गरीब और अमीर तो वह बाद में बनता है। जीवन ने अपने पर नज़र डाली और अपने समाज पर तथा उसे लगा कि वह सारा धंधा मनुष्य ने अपनी ग़लतियों से बना रखा है। वह भी तो स्वयं इसी विषैली विचार-धारा में बह कर बाज वक्त प्रेरणा से दूर हो जाता था। डा० स्वरूप का परिवार कब उससे पृथक् हुआ। इस पार्थक्य की अनुभूति तो उसकी हीन भावनाओं की ही देन थी जिसे यदि इस तरह विकसित होने दिया जाए, तो कालान्तर में उसके और डाक्टर स्वरूप के परिवार के बीच वही खाई पैदा कर देती जिसे आज की विचारधारायें वर्गभेद कहती हैं। यही क़िस्सा आज उस बृहत्तर समाज का भी था जो ग़रीब और अमीर में बँटी हुई थी। ग़रीबों ने अमीरों को अमीरी का आभास करा कर उनमें उस अमीरी के प्रति लोभ भर दिया था और फिर उल्टे वही उस लोभ से जनित अमीरों की प्रतिक्रिया पर बग़ावत करने को उठ पड़े थे—अमीरों की तिजोरियों में बन्द संचित धन-राशि का वितरण करने की माँग खड़ी किए बैठे थे। यह ग़रीबी मिटाने और अमीर बनने का कौनसा विधान था ? साम्य-वाद लाठी के बल पर उत्पादन के साधन अमीरों से छीनना चाहता था, समाजवाद क़ानून के बल पर उसे सरकार के हाथ में देना चाहता था; पर इन बातों से कौन यह आश्वासन दे सकता था कि वर्ग-भेद मिट जाता है ? लक्ष्य तो यह था कि जनता प्रसन्न रहे और अपने को दीन न समझे। उसे अमीरों से कोई द्वेष न था। ये विचारधारायें बग़ैर यह सोचे हुए कि सरकार इस मूल लक्ष्य को कहाँ तक प्राप्त कर सकती थी, अमीरों को समाप्त करने की चेष्टा में वर्गभेद को प्रोत्साहन दे रही थी और इस प्रकार मनुष्य की उस अद्भुत क्षमता का अपमान कर रही थी जिसने प्रत्येक कमी को अपने अनु-सन्धानों से पूरा किया; अपने चमत्कारों से स्वर्ग के देवताओं को भी नीचे धरा की ओर देखने को लालायित किया।

जीवन का मन इन विचारों के प्रति छी-छी करता हुआ फिर अपनी ओर घूम पड़ा। वह अपनी स्थिति से क्यों विशेष अशान्त रहता था ? शायद

इसलिए कि छोटी-सी बात को तूल देने की उसकी आदत हो गई थी। उसके मन में खिलाड़ियों की अठखेलियों के स्थान पर दार्शनिकों की छाप अधिक थी। वह कर्मठ कम, किन्तु चिन्तनशील अधिक था। पर दिल्ली का वातावरण ही उसे ऐसा लगा। उसका क्या दोष था ? कुछ भी क्यों न हो उसे अपना मन इतना बोझिल नहीं रखना चाहिए था। जीवन ने निश्चय कर लिया कि अब वह भावनाओं के वितान न बनाकर अपने को किसी न किसी गतिविधि में उलझाए रखेगा ताकि व्यर्थ का मानसिक कष्ट न सहकर वह अपने सोचने की शक्तियों को पुष्ट कर सके।

एक दिन समाचार-पत्र में एक विज्ञापन पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसे आशा की एक धुँधली सी किरण दिखाई पड़ी। विज्ञापन आई० ए० एस० की प्रतियोगिता के सम्बन्ध में था।

जीवन को अपने निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर मिल गया। उसने फार्म भर दिया और परीक्षा में बैठ गया। परीक्षा जब समाप्त हो गई तो वह पूरे तीन महीने का अवकाश लेकर नैनीताल चला गया। इसी बीच दिल्ली में उसे संघर्ष और शान्ति के विवाह की खबर मिली। संघर्ष की ओर से तो कोई निमंत्रण नहीं मिला था, पर कान्ताप्रसाद जी का अवश्य एक पोस्टकार्ड उसके पास आया था। न मालूम क्यों, जीवन की इच्छा नहीं हुई ब्याह में सम्मिलित होने की और उसने केवल एक पत्र लिख कर उपहार के तौर पर चन्द भरपूरिया को दे दिया कि वह जाकर शान्ति को दे दे। उसे विश्वास था कि शान्ति उसे क्षमा कर देगी।

दिल्ली से नैनीताल जाते हुए मुरादाबाद पर जीवन को रात गुज़ारनी पड़ी, क्योंकि वहाँ से उसे दूसरी गाड़ी पकड़नी थी जो अब दूसरे दिन ही जाती थी। उत्तर प्रदेश सरकार की रोडवेज की बसें भी चलती थीं पर जीवन जब मुरादाबाद पहुँचा तब सभी बसों के छूट जाने का समय हो चुका था। निराश उसको उस रात का पड़ाव मुरादाबाद ही डालना पड़ा। स्टेशन के बाहर ही पंजाब रेस्टोराँ नामक एक साधारण सा होटल था--वहीं जाकर उसने एक कमरा अपने नाम करा लिया। अभी वह अपना बिस्तरबन्द खोल ही रहा था कि

एक सिख युवक को उसने कमरे के बाहर खड़ा पाया। बिस्तरबन्द वैसे ही रखते हुए जीवन आगे बढ़ा और बोला—

"कहिए मुझसे कुछ काम है ?"

"जी, काम तो है पर कुछ ऐसा है कि कहने में संकोच हो रहा है।" वह युवक बोला।

जीवन हँसा और बोला, "नहीं-नहीं, कहिए।"

"आप इस कमरे में अकेले हैं न ?"

जीवन ने सिर से पैर तक उसको देखा। उस युवक की बात उसकी समझ में नहीं आयी थी। वह युवक जीवन को असमंजस में देखकर बोला, "यह इस लिए पूछ रहा हूँ कि मैं भी अकेला हूँ और अलग एक कमरा किराये पर लेने का मतलब है अपने को पूरे आठ रुपयों से महरूम करना। यदि आप आज्ञा दें तो हम दोनों चार-चार रुपए बचा सकते हैं। आप विश्वास कीजिए, मैं निहायत शरीफ़ आदमी हूँ।"

जीवन हँस पड़ा और उसकी ओर देखते हुए बोला, "लेकिन आपके पास कुछ सामान तो होगा ?"

"जी हाँ, आप की तरह एक ट्रंक और एक बिस्तरबन्द है। बड़ी देर से देख रहा था कि अपने ही जैसा आदमी आये तो कॉन्ट्रैक्ट करूँ। अब यदि आप आज्ञा दें तो सामान ले आऊँ।"

"लेकिन होटल वाले···?"

"आपने अभी रजिस्टर में पूरा विवरण तो नहीं दिया होगा। दोस्त के तौर पर मेरा हवाला भी दे देना। मेरा नाम कुलवन्त है।"

"अच्छा आप सामान ले आइये", जीवन बोला।

सिख युवक जीवन को बड़ा बेतकल्लुफ़ और स्पष्टवादी लगा। वह भी दिल्ली से ही आ रहा था और संयोगवश नैनीताल को ही दो महीने की छुट्टी गुज़ारने जा रहा था। जीवन के और उसके बीच दिल्ली में अपने निवास, व्यवसाय आदि के विषय में बातचीत होती रही, जब तक कि सोने का समय नहीं हो गया। वह विनय नगर में एक सरकारी क्वार्टर में रहता था और सरकारी दफ़्तर में ही काम करता था।

दूसरे दिन सुबह जब जीवन उठा तो उसे कुलवन्त की कॉन्ट्रेक्ट वाली बात याद आ गई। वह रात जैसे गुज़री थी उसको देखते हुए तो आठ रुपये वास्तव में बहुत थे। पहले तो कमरे में पंखे ही नहीं थे; उस पर खटमल और मच्छरों ने ऐसा तंग किया कि नींद लेनी हराम हो गई थी। दो ढाई बजे कुछ नींद भी आने लगी थी कि कमरे पर वानर-सेना का आक्रमण हो गया। मेज़ पर एक थैले में जीवन की कुछ मौसम्बी और सेब रखे थे। जब एक मेज़ से लुढ़क पड़ा तो जीवन की नींद खुली। देखा भूरे-भूरे बाल लिए कोई कपिराज स्वयं थैले को सामने रख डटकर भोग लगा रहे थे। बड़ा अजीब-सा लगा उसे वानरराज का यह शौक़। क्या तो उन फलों को वह बड़ी हिफ़ाजत के साथ दिल्ली से लाया था कि मोटर में सफ़र करते समय ज़रा उनसे तबियत तर रहे और यह कपिराज इतने बेलिहाज़ निकले कि उन फलों से अपनी ही तबियत तर कर रहे थे। जीवन ने इसी आशा में कि उसके अनुनय-विनय से सम्भवत: कपिराज फलों के साथ अधिक अत्याचार न करें, उसने थोड़ा मौखिक अनुरोध किया; पर इस मौखिक अनुरोध का जब उन पर कोई प्रभाव पड़ता दिखाई न दिया तो जीवन ने सोचा कलियुग है, शायद कपिराज बल-परीक्षा लेने ही आये हों। उसने हाथ में छड़ी उठाई और सचमुच छड़ी को देखते ही वानरराज प्रसन्न मुद्रा बनाकर फलों के थैले और एक 'नीलम' की बुशशर्ट को साथ लेकर चलते बने, मानो जाते समय जीवन के शौर्य की मूक प्रशंसा कर गये हों। बड़ा नुक़सान हो गया था। उधर कमरे के दूसरे कोने में पड़ा कुलवन्त ऐसे खर्राटे ले रहा था कि आस-पास बरामदे में जीवन को शेर के उपस्थित होने का भी सन्देह होने लग गया।

"अरे भई सरदार जी! उठो न," जीवन ज़ोर से चिल्लाया, "ग़ज़ब की नींद है भई तुम्हारी। यहाँ किष्किन्धा काण्ड से लेकर लंका काण्ड तक की घटना घट चुकी, छाती पर तुम्हारी खटमलों की कई रेसें हो चुकीं और तुम हो कि विष्णु भगवान की तरह प्रतिज्ञा किये बैठे हो कि कोई भृगु आये, तुम पर ज़ोर की लात मारे और तब तुम उठो।"

और जब हड़बड़ा कर कुलवन्त उठा तो जीवन रोना-सा मुँह बनाते हुए बुशशर्ट और फलों के अपहरण की घटना का उल्लेख करते हुए बोला, "सर-

दार जी ! आज रात के किराये के चार रुपये भी महँगे पड़े। किसी तीसरे व्यक्ति के साथ भी कॉन्ट्रेक्ट किया होता भाई।"

दोनों खूब हँसे, फिर सामान आदि तैयार कर सुबह होते ही रोडवेज़ की बस से हल्द्वानी को प्रस्थान कर गये। मार्ग में कुलवन्त जीवन का खूब विनोद करता रहा। कुलवन्त में उसे एक गुण विशेष दिखाई दिया और वह यह कि किसी भी प्रसंग को लेकर वह बातों का एक ऐसा तारतम्य बना लेता था कि विषय से बिलकुल अनभिज्ञ होते हुए भी अपनी बात को इतने प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता था कि किसी को भी, जो उसे बहुत नज़दीक से न जानता हो, उसकी बात पर सन्देह नहीं हो सकता था। हल्द्वानी से जब नैनीताल जाने की बातें होने लगीं तो उन्होंने प्रस्ताव रखा कि यह यात्रा पैदल ही की जाय। प्रस्ताव के पक्ष में उसने वह दलीलें पेश कीं कि जीवन वास्तव में घबरा गया। वह बोला, "मोटर से जाने का परिणाम होगा पाँच-सात रोज़ के लिये नैनीताल के किसी हौस्पिटल में अपने को बन्द करना। कच्ची सड़क, उस पर ग़जब की धूल और सौ-सौ गज़ पर खतरनाक मोड़—ये सब मुसाफिर की तबियत को इतना हैरान कर देते हैं कि वह उल्टियाँ करते-करते बेहोश हो जाता है।" लेकिन पच्चीस-तीस मील की चढ़ाई चढ़ने की जीवन हिम्मत न कर सका। लाचार हो यात्रा मोटर से ही करनी पड़ी। जब मोटर सोलह मील तय कर उन्हें ज्यूलिकोट ले आई तब जीवन को पता लगा कि कुलवन्त के कथन में कितनी सचाई थी। उसने पूछा, "कुलवन्त जी ! आपने तो मुझे डरा दिया था पर जितना सफ़र हम तय कर पाये हैं उससे तो कहीं भी आपकी बातों का समर्थन नहीं होता।"

कुलवन्त बोला, "मेरा भी तो नैनीताल आने का पहला ही अवसर है। मैंने जैसा सुना था आपको बता दिया। कुछ भी हो दो-तीन रुपयों पर तो पानी फिर ही गया।"

जीवन को कुलवन्त की बात पर इतनी हँसी आई कि हँसते-हँसते वह लोटपोट हो गया। पर कुलवन्त ज़रा भी खिसिआया नहीं, जीवन की हँसी में साथ देता हुआ बोला, "एक भूल हो गई है भाई साहब ! मेरे बयान का अन्दाज़ ग़लत था। किसी ऐसे स्थान के सम्बन्ध में, जहाँ तत्काल आपके जाने

की सम्भावना न होती, मैं चाहे कितना ही झूठ क्यों न बोल देता, आपको हँसने का मौक़ा न मिलता।"

"अच्छा !" जीवन हँसते हुए ही बोला।

"आप पूछ लीजिये।"

"पैरिस की मुख्य विशेषता बताइये।"

"दीवाना शहर है—कपड़े साफ़ करने के इतने विशाल कारखाने हैं कि आधी दुनिया के कपड़े धुलने वहाँ आते हैं।"

"आधी दुनिया के ? पर हमारे कपड़े तो कभी नहीं गये धुलने।"

"अजी जवाहरलाल जी के तो जाते सुना होगा आपने।"

जीवन को फिर जोर से हँसी आई। मज़ाक में बोला, "सरदार जी ! स्वीजरलैण्ड में सुना है गर्मी बहुत होती है।"

"मरुस्थल है सारा प्रदेश। गर्मी होनी स्वाभाविक है।" जीवन को तपाक उत्तर मिल गया और वह भी कारण सहित। उसे बड़ी हँसी आई। कितना अल्हड़ स्वभाव पाया था कुलवन्त ने। बस, जब ज्यूलिकोट और बीर भट्टी को छोड़ती हुई और ऊँवाई पर चढ़ी तो जीवन कुलवन्त की हँसी-मज़ाक को छोड़कर ऊँचे पहाड़ों की चोटियों को देखने लग गया। मुग्ध हो प्रकृति के सौन्दर्य को निहारता हुआ साँय-साँय की ध्वनि के मध्य चीड़ के वृक्षों को चीरती हुई वह बस की सवारी का आनन्द ले रहा था। उसे लग रहा था मानो वह गन्धर्वों की नगरी—अलकापुरी की ओर अभियान कर रहा था। अब न तो मैदानों की असह्य गर्मी थी और न वह ऊबड़-खाबड़ बस्तियाँ जो सूर्य के ताप से तप्त उस बुढ़िया की भाँति प्रतीत होती थीं जिसके साजश्रृङ्गार के दिन चले गये हों। वह एक अजीब-सी खुमारी अनुभव करने लगा और वह खुमारी अधिकाधिक बढ़ती गई, ज्यों-ज्यों बस और ऊँचाई पार करती चली गई। मैदानों के प्रति एक दयनीय भावना से उसका हृदय भर गया। गगन-चुम्बी पर्वतश्रृंखलाएँ, शस्य, श्यामल परिधान से अलकृत प्रकृति का सौन्दर्य और उसके प्रांगण में अटखेलियाँ करता हुआ यहाँ का भाग्यशाली मानव। मृगतृष्णा में भटकता हुआ इन्सान और उसके पीले मुख पर तप-तप करती हुई पसीने की बूँदें न थीं। पेट की ख़ातिर होड़ लगाकर जहाँ ईश्वर की सुन्दर

सृष्टि को मनुष्य ने कुरूप बना दिया था—ऐसी राक्षसी माया यहाँ न थी। छः हज़ार फुट की ऊँचाई पर जब बस पहुँची तो जीवन को गर्मी के दिनों में ठण्ड लगने लगी। सर-सर हवा के ठण्डे थपेड़ों से उसके कान सुन्न हो गये और उसे लगा मानो उसकी श्रवण-शक्ति आधी हो चली हो। कुछ ही देर में आखिर बस नैनीताल पहुँच गई और वहाँ सब से पहले उनका स्वागत किया नैनीताल की नगरपालिका के कर्मचारियों ने जिन्होंने टोल-टैक्स के रूप में प्रत्येक यात्री से एक-एक रुपये वाला साफ़-सुथरा बेदाग़ नोट ले लिया। जब एक-एक रुपया दोनों ने दे दिया तो जीवन ने मज़ाक में कुलवन्त से पूछा—

"ये किस बात के रुपये लिये गये सरदार जी ?"

"घूँघट कढ़ाई के।" वह बोला।

"किसकी घूँघट कढ़ाई के ?"

"विवाह में जैसे बहू का घूँघट खोलने के लिए कुछ भेंट करनी पड़ती है वैसे ही नैनीताल-सुन्दरी के दर्शन प्राप्त करने के लिए एक रुपया देना अनिवार्य है," और जब नैनीताल ने अपना घूँघट उठाया तो सचमुच जीवन मन्त्रमुग्ध-सा हो चला। नीले रंग का विशाल जलाशय आँखों के सामने था, जिस पर छोटी-छोटी लकड़ी की नावें तैर रही थीं, मानो कलाकार को भाव देने को प्रकृति ने अनुपम मॉडल दे रखा हो।

"क्या मनोहर छवि है जलाशय की!" जीवन का कण्ठ आलाप कर उठा, "सारा सौन्दर्य मानो एक स्थान पर एकत्रित किया गया हो और इस सौन्दर्य पर किसी की नज़र न लग जाय, इसीलिए मानो तीनों ओर से पहाड़ अपनी ओट किये हैं।"

जीवन और कुलवन्त के समक्ष अब प्रश्न था कि कहाँ निवास किया जाय ? दोनों पहली बार ही नैनीताल आये थे। नैनीताल में जीवन के बड़े भाई भुवन की श्वसुराल थी; अतः वह तो पहले से ही निश्चय कर चुका था कि वहीं कुछ दिनों के लिए रहेगा पर अब जो एक साथी और उसके साथ था—उसके रहने की क्या व्यवस्था की जाय ? अन्त में यही तय हुआ कि कुलवन्त को भी हाल में वह अपने साथ ले चले। शायद श्वसुराल वालों की सहायता से सस्ते भाव कोई कमरा किराये को मिल जाय और जैसा उन्होंने सोचा था—ठीक

वैसा ही हुआ। भुवन की श्वसुराल के पास ही कुलवन्त को २० रु० माहवार पर एक कमरा मिल गया। जीवन का खाना-पीना तो श्वसुराल में ही होता रहा—रहने के लिए वह कभी-कभी कुलवन्त के पास आ जाया करता था और कभी श्वसुराल में ही सो जाता था। जीवन की खुशी में चार चाँद लग गये, जब उसने देखा कि उसकी भाभी पहले से ही पीहर आई हुई थी।

नैनीताल में जीवन को लगा मानो उसको नया जीवन मिला हो। छोटा सा कस्बा, शान्त और मधुर वातावरण, स्फूर्तिदायक आबोहवा और प्राकृतिक सौन्दर्य का उपभोग—कौनसे बुलन्द सितारों ने उसको यहाँ आने की प्रेरणा दी। एक नए उल्लास और नई चेतना से उसका अन्तर भर गया मानो सब कुछ नया-नया था—बसन्त छाया हुआ था—बाहर भी और अन्दर भी। वह मानसिक द्वन्द्व, जो मैदान की 'हाय-तोबा' देख कर प्रायः उसे चाटता रहता था, सब समाप्त हो गया था, ठीक उसी तरह जैसे पावस की घोर गर्जन-तर्जन के बाद शरद् ऋतु का आकाश साफ़ हो जाता है।

जीवन सच्चे अर्थों में अपनी छुट्टियों का आनन्द ले रहा था। घर पर भाभी और उनके माता-पिता जी का मीठा स्वभाव, घरेलू बातें, हँसी-मजाक और उन सब के पीछे अपनत्व की भावना और घर से बाहर नाव की सैर, ऊँची-ऊँची चोटियों पर चढ़ना, घुड़-सवारी एवं कुलवन्त के साथ का आमोद-प्रमोद। एक नियमित दिनचर्या बन गई थी उसकी पर नियमित होने के साथ-साथ उन्मुक्त और स्वतन्त्र भी थी।

कुलवन्त के समीप आकर जीवन को पता लगा कि उसका साथी इतना व्यावहारिक था कि मन बहलाने के लिए वह पैसों का आश्रय न लेकर अपने स्वभाव में ही लोच पैदा कर अपनी साधारण स्थिति में इतना प्रसन्न रहता था कि वह प्रसन्नता किसी बिरले ही साधन-सम्पन्न व्यक्ति को प्राप्त हो।

कुलवन्त का मत था कि प्रसन्नता तो मन की सन्तुष्ट अवस्था का ही दूसरा नाम है, जो झोंपड़ियों में रहने से भी मिल सकती है अथवा जिसे बढ़ाओ तो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं और महलों में रह कर भी दुर्लभ ही हो जाती है। वह इसीलिये आडम्बर में विश्वास न रख जो कुछ भी सही और वास्तविक दिखाई दे उससे ही सन्तोष कर लेता था।

"कुलवन्त ! क्या तुम्हारी इच्छा नहीं होती कि उत्तम कपड़े पहनो, किसी अच्छी-सी कार में सैर-सपाटा करो और शानदार बंगलों में रहो ?" जीवन कभी उससे प्रश्न कर देता था।

"तुम इच्छा की कह रहे हो, यदि सचमुच ही कहीं ऐसा भाग्य हो जाय तो कार क्या हवाई जहाज लूँ—लकड़ी, पत्थर के महलों को छोड़ सोने का महल बनाऊँ। इच्छा किसे नहीं होती जीवन ! बगैर इच्छा के तो मनुष्य जीवित होकर भी मुर्दा है। पर इच्छा सभी की तो पूरी नहीं होती। बल्कि यूँ कहो कि इच्छा तो पूरी किसी की भी नहीं होती। इसमें भी आने पाइयों का हिसाब है। किसी की इच्छा दो आने पूरी हो गई, किसी की चार आने। प्रायः ऐसे भी हैं कि पाई दो पाई भी अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाते। यह मनुष्य की इच्छाओं का परिणाम ही तो है कि ताँगे से मोटर, मोटर से हवाई जहाज और आगे पता नहीं कौन-सा आविष्कार निकलता है। जो कुछ भी तुम देख रहे हो—उसकी जड़ पर यही इच्छा तो है। मैं इस इच्छा से कैसे मुक्त हो सकता हूँ पर मैंने इसके साथ समझौता किया हुआ है कि यदि यह पूरी नहीं भी हुई तो मुझे दुःख न दे। मैं दूसरों की इच्छा पूरी होते देख कर ही आनन्द ले सकूँ।" कुलवन्त हँसा, फिर बोला, "हैं न जीवन पागलों जैसी बातें ? पर सच कहता हूँ, जब से मेरे अन्दर यह पागलपन आया है, इस जिन्दगी के प्रति तब से मोह बढ़ गया है। यही अरमान पलते रहते हैं कि लम्बी आयु तक जी सकूँ और अगर अपनी इच्छाओं को पूरी होते न पाऊँ तो दूसरे के स्वप्न साकार होते देखता रहूँ। देखो, मैं एक मामूली क्लर्क हूँ; अभी तक कुछ नहीं कर सका और कैसे कहूँ कि आगे कुछ कर सकूँगा, लेकिन यह बात नहीं कि जो आनन्द भाग्यशाली उठाते हैं, मैं उनसे वंचित रहूँ। उनको तो यही आनन्द रहा कि वे जो चाहते थे वह पूरा हो गया पर उस इच्छित वस्तु से उन्हें कितना सुख मिला यह एक विवादास्पद विषय है। मैं समझता हूँ कि सुख की मात्रा उनसे अधिक हमें प्राप्त है। जिस वैज्ञानिक ने हवाई जहाज का आविष्कार किया, वह न मालूम कितने सालों तक निरन्तर अनुसन्धान करता रहा हो। सम्भव है, विवाह कर वह अपनी नवविवाहिता बीवी की सौन्दर्य-सुधा का पान करना भी भूल गया हो। हाँ, जिस दिन उसका

हवाई जहाज़ आसमान में उसकी आशाओं के अनुकूल उड़ा होगा, उस दिन उसका जीना सफल हो गया। बस उसी क्षण उसने आनन्द उठाया। अधिकतम के हिस्सेदार तो दूसरे व्यक्ति रहे। ये तुम अच्छे-अच्छे मकान देख रहे हो। सच कह रहा हूँ कितना कष्ट उठाया होगा इनके बनाने वालों ने और अभी भी उठाते ही होंगे। सोचते होंगे कि इन मकानों का चूना पुराना न पड़ जाय कि कल इनकी छत न गिर जाय। पड़ौस में उनसे अच्छी यदि कोई और हवेली खड़ी हो गई तो फिर उनका सोचा हुआ दुःख चेतन हो उठता है। बस इनको भी उन कुछ क्षणों में आनन्द आता है, जब कोई इन्हें याद दिलाता है या इन्हें स्वयं आभास होता है कि ये मकान इनके हैं। रहते उनमें हम हैं, नित्य का आनन्द हम उठाते हैं। इनकी क्रिया तो यह है कि इन मकानों के किराये से जो धन प्राप्त होगा उससे वह और मकान बनवायेंगे और फिर उन्हें भी तुम्हारे जैसे व्यक्तियों के आनन्द के लिये किराये पर उठा देंगे।"

जीवन कुलवन्त की बातें सुनकर अवाक् रह जाता था। कितना सरल और सुलझा हुआ दृष्टिकोण था। उसे उसकी वह बात याद आ जाती जो उसने बस में कही थी कि मरुस्थल होने के कारण स्वीजरलैण्ड गर्म प्रदेश था। उस बात का और ऐसे भावपूर्ण विचारों का तो कहीं समन्वय नहीं होता था। एक दिन जब वे दोनों 'टिफन टौप' पर चढ़ रहे थे तो जीवन पूछ ही बैठा, "कुलवन्त! भाई तुम्हें मैं समझ नहीं पाया। आज क़रीब एक माह हो चला है तुम्हारा साथ हुए। देखता हूँ कि तुम बहुत ही मिलनसार, जिन्दा-दिल और समझदार मित्र हो। प्रतिभा भी तुम्हारे अन्दर काफ़ी दिखाई देती है। और वह प्रतिभा खोखली नहीं, बल्कि एक खास साँचे में ढली हुई। पर बस में जो तुमने ऊट-पटांग बातें कीं, उनका मैं आज तक कोई मतलब न निकाल सका।"

कुलवन्त हँसा और बोला, "वही पैरिस और स्वीजरलैण्ड वाली बात कर रहे हो न? वह भी बताता हूँ। वह एक ढंग है जीवन! जिसे अपनाकर मनुष्य बातों का सिलसिला बना लेता है। तुम्हीं बोलो—आज तुम्हारा मेरे प्रति इतना प्रेम हो गया है, यदि मैं वैसे बातें न करता तो तुम्हारे साथ मेल कैसे होता? तुम सोचते होगे कि विद्वत्तापूर्ण बातें करके भी तो मैं तुम्हें

प्रभावित कर तुमसे मेल कर सकता था। पर यहाँ पर अन्तर है। वह जो मेल होता, वह मन का मेल होता, हृदय का नहीं और मन का मेल स्थाई नहीं होता क्योंकि यह निश्चित नहीं कि किन्हीं दो व्यक्तियों का मानसिक स्तर बिलकुल ही बराबर हो। तुम एम० ए० हो और मैं केवल मैट्रिक हूँ। तुम्हारे मन में न जाने कितने प्लेटो और आरिस्टोटल की थ्योरियाँ भरी पड़ी हों, कितने युटोपिया के स्वप्न बन्द हों, पर मेरी शिक्षा तो अगले चौराहे तक ही सीमित है। अन्ततः तुम्हारे और मेरे बीच क्या आकर्षण रह सकता है? कभी नहीं। पर अपने मानसिक स्तर का सहारा न लेकर मैंने अपनी प्रकृति की दी हुई सरल वृत्तियों का आश्रय लिया, जो मानवीय हैं और जिनके प्रति चाहे कोई पढ़ा लिखा हो या अनपढ़—सबका ही आकर्षण होता है। तुम देखते होगे कि एक अशिक्षित ग्रामीण के प्रति तुम अधिक आकर्षित होते हो, बजाय एक नगर में रहने वाले के; क्योंकि उसकी प्रकृति सरल है। वह तुम्हें अपने अधिक समीप लगता है। मेरी बातें चाहे बे सिर-पैर की रही हों पर मैं तुम्हें मजेदार व्यक्ति जरूर लगा। मेरी बेवकूफी तो मेरे सम्पर्क से स्वयं मिट जायेगी, यदि मैं वास्तव में बेवकूफ न हुआ।"

जीवन कुलवन्त की व्यावहारिकता पर मुग्ध हो उठा। कितने अनुभवी विचार थे उसके। इतना ज्ञान छुपाये हुये भी वह बालकों की तरह हँसता-खेलता रहता था। कभी भी उसने उसके मुख पर प्रौढ़ता नहीं देखी थी, पर विचार उसके कितने प्रौढ़ थे।

वह अब 'टिफन टौफ' पर पहुँच गये थे, जहाँ से एक ओर तो वर्फ से ढकी हुई हिमालय की चोटियाँ दिखाई दे रही थीं और दूसरी ओर भाभर की तराई। और भी कई स्त्री-पुरुष वहाँ खड़े थे पर जीवन का ध्यान विशेष आकर्षित हुआ एक क्रिश्चियन महिला से, जो अपनी बच्ची द्वारा सम्भवतः पहाड़ों के सम्बन्ध में की गई शंकाओं का समाधान कर रही थी।

कुलवन्त बोला, "वह बच्ची कितनी प्रकृति-प्रेमी है! तुमने गौर किया जीवन? सुना है वर्ड्ज़वर्थ प्रकृति का बड़ा उपासक था। मालूम पड़ता है।

मिलेंगे, जो मैट्रिक तक तो ज्योमेट्री की थ्यौरियाँ और एलजबरा के फ़ैक्टर पढ़ते रहते हैं पर बाद में जब समाज में अपने लिये स्थान बनाने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं तो पेट काट कर पाँच-पाँच पैसों का गोल्ड फ्लैक का सिगरेट पीते हैं और उसके धुँये के गुब्बार में वैसी ही उड़ती हुई बातें कर वे शिक्षित वर्ग के अंग बन पाते हैं। तुम मुझसे कहते हो कि इस कृत्रिम व्यवहार को छोड़ दूँ; पर अकेला तो मैं एक विचारधारा को नहीं मोड़ सकता और उसके लिये मेरे अन्दर प्रतिभा ही कितनी है ? फलतः इसी शिक्षित वर्ग का अंग बनने के लिये मुझे अनेक-अनेक वाटिकाओं के फूल तोड़ने पड़ते हैं—बहुरंगी बनना पड़ता है। यह सब-कुछ चाहे भ्रम हो या धोखा, पर यही वास्तविकता है और इसीलिये सच है।"

"कुलवन्त, तुम्हारी प्रत्येक बात पर पहले तो मुझे हँसी आती है पर जब तुम उसकी व्याख्या करते हो तो मालूम पड़ता है कि पुस्तकों में पढ़ा हुआ ज्ञान बिलकुल अधूरा है। मनुष्य और समाज का कितना बारीक अध्ययन है तुम्हारा। आजकल पुस्तकें पढ़ो या भाषण सुनो—कहीं भी तो इन व्यावहारिक बातों को किसी ने नहीं छुआ। फल ये होता है कि जीवन से सम्बन्ध न रखने वाली बातों को दिमाग में ठूँस कर हमारे युवक विश्वविद्यालयों से बाहर निकलते हैं और एक कृत्रिम बड़प्पन के शिकार होकर धक्के खाते रहते हैं। क्योंकि विद्यालयों के अन्दर का कोरा आदर्श—बाहर की दुनिया के कठोर सत्य से टकराता रहता है और इस टक्कर में वह ग़रीब युवक पिस कर ऐसा लाचार हो जाता है कि वह अपने को स्थितियों के अनुकूल नहीं बना पाता।"

"हाँ जीवन ! अब तुम कुछ समझ रहे हो और तुम्हारे अन्दर मुझे यह विशेष खूबी दिखाई पड़ती है कि तुम्हारे विचार जड़ नहीं हैं, उन्हें तुम अनुभवों से माँगते रहते हो। आज के शिक्षित वर्ग में सोचने और समझने के ऐसे लचीले दृष्टिकोण का अभाव है। तुम यदि थोड़ा चुस्त बनो तो आश्चर्यजनक उन्नति कर सकते हो।"

जीवन और कुलवन्त अब बेलजली स्कूल से होते हुये नीचे ताल के तट पर आ गये थे जहाँ पर पाषण देवी का मन्दिर बना हुआ था। ताल के तट के साथ-साथ जाती हुई सड़क पर आगे बढ़ते हुये फ्लैट पर पहुँच गये, जहाँ

एक लम्बा-चौड़ा मैदान, एक सिनेमा घर, देवी का मन्दिर और एक कोने पर खेल-कूद के लिये स्थान सुरक्षित था।

कुलवन्त बोला, "देखा जीवन तुमने नैनीताल का ठाठ ? क्या रासलीला लगी हुई है ! तुम्हारा दिल्ली का कैनोट प्लेस भी मात खा गया। तुम्हारे जैसे व्यक्ति, जो पाश्चात्य वेश-भूषा में सौन्दर्य-वृद्धि के समस्त उपकरणों का प्रयोग कर 'किसे मैं देखूँ और कौन मुझे देखे' के उद्देश्य को लेकर यहाँ नित एकत्रित हो जाते हैं—व्यंग में भ्रमर और तितलियाँ कहेंगे। पर नहीं यह भी एक सत्य हैं। दुनिया में सब साधु और दार्शनिक नहीं होते और न ही सब मनचले, आवारा ही—सब को मिलाकर ही हमारा समाज बनता है, हमारे अनुभव बढ़ते हैं और यह दुनिया भी रँगीली लगती है।"

जीवन जब रात को घर लौटा तो बड़ी गम्भीर मुद्रा में था, उसकी गम्भीरता भाभी ने लक्ष्य की और बोली, "लाला ! आज कुछ सोच रहे हो, दिल्ली से क्या कोई पत्र आया है ?"

"नहीं भाभी ! कोई खास बात नहीं। मेरा साथी है न कुलवन्त ? असाधारण व्यक्ति है। इतनी मार्के की बातें करता है कि कभी-कभी सुनकर यह गम्भीरता अनायास ही आ जाती है। वैसे बड़ा विनोदप्रिय है। कभी उदास नहीं रहता। जब देखो तब होंटों पर हँसी होती है और उस हँसी को जो भी उसके पास जाय—बाँटता रहता है। इसे तो एक संयोग समझो कि ऐसा मित्र मिल गया।"

और जीवन ने आरम्भ से सारी बातें भाभी को सुना दीं।

भाभी बोली, "ये बातें तो होती ही रहती हैं, कुछ और भी तो सुनाओ। इतने दिन हो गये तुम्हें आये हुये, कभी भी तो दिल्ली की चर्चा नहीं करते।"

जीवन मुस्कराया और बोला, "क्या बात करूँ ? कोई विशेष बात होती तो अवश्य बताता।"

"हाँ जी, बताते तुम ! न मालूम कितने पत्र लिखे हैं तुमने। अच्छा ये बताओ, शान्ति तो मजे में है ?"

"हाँ भाभी ! अब तो दुल्हन बन गई है।"

"हाँ निमन्त्रण तो आया था, पर उस समय इनके आफिस में बजट चल रहा था। छुट्टी मिलनी मुश्किल हो गई थी। नाराज़ हो रहे थे क्या ?"

जीवन सकुचाया और बोला, "मैं स्वयं ब्याह में सम्मिलित न हो सका—एक परीक्षा देनी थी सो जाना न हो सका।"

भाभी ने थोड़ा भौंहों पर बल दिया और बोली, "ये आपने अच्छा नहीं किया। उन्होंने बहुत बुरा माना होगा। गाँव की बात भी है। संघर्ष ही न जाने कितनी खरी-खोटी सुनायेगा।'

"सुनायें भाभी ! अपने को तो उनका कोई निमंत्रण नहीं मिला। वह भी बुआ का लड़का था बल्कि नाते में तो संघर्ष ही नज़दीक का था।"

"अजी छोड़ो इनकी बात। ये तो घर के सम्बन्धों को देखते हैं। गाँव में तो ये हमारे साथ बोलते तक नहीं, तुम्हें निमंत्रण कैसे देते ? पता नहीं क्या समझ कर चाचा जी ने शान्ति वहाँ दी ?"

भाभी फिर गौर से जीवन की ओर देखने लग गई मानो उससे कुछ पूछना चाहती थी, पर पूछने में सकोच कर रही थी। भाभी के होंटों पर थोड़ी हँसी भी आ रही थी जिसे न मालूम क्या सोच कर वह दबा रही थी।

"क्या सोच रही हो भाभी ?"

भाभी की हँसी अब मुक्त हो चली, बोली, "कुछ नहीं।"

"नहीं, कुछ तो है ?"

"क्या करूँ ! यदि हो भी तो तुम कुछ बताओगे थोड़ा।"

जीवन चुप हो गया। भाभी फिर हँसती हुई बोली, "बताओगे यदि कुछ पूछूँ ?"

जीवन उत्तर में फिर चुप रहा केवल मुस्करा दिया भाभी के पूछने के ढंग पर। भाभी सकुचाती और मुस्कराती हुई शर्मीली आवाज़ में बोली, "ये जो डाक्टर साहब हैं न दिल्ली में—उनकी लड़की का नाम प्रेरणा है न ? बड़ी अच्छी है क्या ?"

"हे भगवान् !" जीवन मन में बोल उठा, "तो ये बात है। अब पता चला भाभी के संकोच का कारण क्या था ? किस अदा के साथ उन्होंने बात छेड़ी

थी, शायद कोई गहरी बात ही पूछना चाहती हैं।" जीवन शरमा के रह गया।

भाभी छेड़ती हुई बोली, "लजा क्यों गये ? उत्तर दो न।"

जीवन ने भाभी की ओर देखा और हँस पड़ा। भाभी के मुख पर शरारत थी। हँसती हुई फिर बोली, "मालूम पड़ता है काफ़ी गहरी उतर चुकी है तुम्हारे दिल में। काफी दिनों की मुहब्बत है क्या ?"

जीवन लजाता हुआ केवल हँसता गया और भाभी उसी लहजे में बोलती गई, "ये न समझो लाला कि हम कुछ जानते नहीं। सब पता है। यह भी पता है कि संघर्ष को जो रिश्ता तय होने जा रहा था वह इसीलिये न हो सका कि वहाँ मन-मन्दिर में तो पहले से ही कोई देवता विराजमान था।"

"ये झूठ है भाभी।" जीवन को भाभी की बात पर वास्तव में आश्चर्य हो रहा था।

"हाँजी झूठ है। सच्चे तो तुम्हीं हो। अब बनाओ मत ज्यादा। शान्ति के पत्रों से सब मालूम हो गया है—न केवल मुझे बल्कि तुम्हारे भाई साहब को भी। वरना बताओ तो सारी बातों के तय हो जाने पर उसने मना क्यों कर दिया ?"

"इसका उत्तर तो वही दे सकती है, मैं क्या दूँ ?"

"उसने तो जो उत्तर देना था, दे दिया और उसका सार यही है जो अभी मैंने तुम्हें बताया। क्योंकि तुम शंका कर रहे थे, इसीलिये तुम से पूछा है।"

जीवन मौन रहा।

भाभी फिर बोली, "जो भी हो, ये तो मानना ही पड़ेगा कि जैसा रूप-रंग में सुन्दर सुनते हैं वैसा ही विवेक भी पाया है उसने, वरना कौन सी लड़की है जो इतनी बहादुरी से तय किया हुआ रिश्ता तोड़ दे ?"

उस दिन बात यहीं पर समाप्त हो गई पर उसका एक परिणाम यह हुआ कि जीवन के मन में जिन विचारों का आना बन्द-सा हो गया था वह भाभी की बातों से आज फिर इस तरह मन पर छा गये कि सारी रात उसकी चिंतन में ही गुजर गई। जिस आग को वह दबा चुका था, वह मानो पहले से भी तीव्र होकर प्रज्ज्वलित हो उठी थी।

उसका रोम-रोम प्रेरणा का चिन्तन करने लग गया। तो क्या सचमुच ही प्रेरणा ने उसके लिये ही संघर्ष का रिश्ता लौटाया ? तो क्या उसे विश्वास हो चला था कि मेरा वनिता से कोई सम्बन्ध नहीं और मैंने अँगूठी वनिता को नहीं दी थी ?

जीवन प्रायः सोने को कुलवन्त के पास चला जाता था। उस दिन वह ससुराल ही सो गया। अगले दिन वह उन्हीं विचारों में खोया लेटा रहा। रात को भी जब वह कुलवन्त के पास नहीं गया तो तीसरे दिन सुबह-सुबह कुलवन्त वहीं आ धमका।

जीवन सो रहा था। उसने भाभी से पूछा, "तबियत तो ठीक है जीवन की ?"

"हाँ-हाँ आप घबराये हुये क्यों हैं ?"

"तीन दिन से दिखाई नहीं दिया। सोचा कहीं बीमार न पड़ गया हो।"

भाभी हँस दी। कुलवन्त ने जीवन को जगाया और बोला, "नमस्कार गुरू। नींद मुबारिक हो।"

जब जीवन उठा तो कुलवन्त ने तानों की बौछार कर दी। जीवन को कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि क्या उत्तर दे। रात को जब कुलवन्त के कमरे में वह सोने की तैयारी करने लगे तो जीवन बोला, "कुलवन्त ! आज तुमसे कुछ विशेष बातें करनी हैं। आज तक कई क्षेत्रों का तुमने अपना अनुभव बताया। आज कुछ प्रेम के सम्बन्ध में तुम से पूछना चाहता हूँ, बताओगे ?"

कुलवन्त सुनकर जीवन को देखता ही रहा। उसे जीवन के इस आकस्मिक परिवर्तन पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। आख़िर आज की बातों के लिये उसे इस प्रकार विषय चुनने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी ?

कुलवन्त को चुप देखकर जीवन बोला, "मेरा अनुमान है कुलवन्त ! तुमने दुनिया के तीखे व्यंग सहे होंगे पर प्रेम के पैने बाणों से कभी तुम्हारा हृदय छलनी नहीं हुआ होगा। यह भी दुष्ट ऐसा रोग है, जिसके कीटाणु भावुक मन में पलते हैं। तुम्हारे जैसा राजा आदमी कैसे इनसे ग्रसित हो सकता है।"

कुलवन्त का कौतूहल और बढ़ गया। वह बोला, "यह बताओ जीवन !

ख़ैर तो है ? ये तीन दिन का जो नागा किया, क्या इन्हीं दिनों कहीं ज़ख़्मी तो नहीं हो गये ? यदि यही बात है तो बता दो वह कौन सा खंजर था जिसकी पैनी धार पर तुम चोट खा बैठे ?"

"ऐसी कोई बात नहीं। केवल एक चर्चा है। और चर्चा इसलिये कर रहा हूँ कि जितने विषय आज सुनने में आते हैं कोई ऐसा नहीं कि बिना प्रेम के आगे बढ़ा हुआ दिखाई दे रहा हो। मनुष्य का बाह्य रूप आज यदि पैसे की पराधीनता स्वीकार कर चुका है तो अन्दर के विचारतन्तु उसके प्रेम से परिचालित होते हैं। उसकी चाहे कितनी ही परिभाषायें क्यों न की गई हों, पर तथ्य ये है कि उसकी महिमा किसी भी काल में कम न होने पाई।" जीवन और कुलवन्त दोनों लिहाफ़ ओढ़कर अपने-अपने बिस्तरों पर लेट गये थे। जीवन छत की ओर मुँह किये भावपूर्ण मुद्रा में बोल रहा था और कुलवन्त विस्मय से उसकी बात सुन रहा था।

कुछ रुक कर जीवन ने कुलवन्त की ओर मुँह किया और खीझ कर बोला, "तुम चुप हो, कुछ बोलोगे भी या नहीं ? मेरा मन भारी-भारी हो रहा है।"

"पर बोलूँ क्या ? मुझे कुछ तो पता लगे कि ये जो तुम बहकी-बहकी बातें कर रहे हो उनकी पृष्ठभूमि क्या है ?"

"ओह कुलवन्त ! काश तुमने ग़म भी खाया होता। इस समय तुम मुझे कितने नीरस व्यक्ति लग रहे हो ! ये पहला अवसर है जब तुमसे मुझे निराश होना पड़ा।"

कुलवन्त मार्मिक हँसी हँसा और बोला, "सो जाओ, साढ़े दस बज चुके हैं।" फिर आधे घण्टे तक कमरे में निस्तब्धता रही। जीवन करवटें बदलता रहा। और कुलवन्त चुपचाप उसकी ओर देखे जा रहा था मानो कुछ अनुमान लगा सके कि क्यों जीवन आज यकायक इतना भावुक हो उठा था।

"कुलवन्त ! सो गये क्या ?" आखिर जीवन ने वह निस्तब्धता तोड़ी।

"नहीं।"

"तो फिर सुनो ! दो पंक्तियाँ कविता की कहता हूँ।" और वह गुनगुनाने लगा—

"मेरे अरमान यहाँ जलते ········

मुझको कौन पुकार रहा ?
पीड़ा बन किसका प्यार रहा ?
इस चिन्तन में धीरे-धीरे ।
करुणा के क्षण मेरे पलते········मेरे अरमान यहाँ जलते ।"

"कुलवन्त ! पसन्द आ रही है न ?"

कुलवन्त चुप रहा ।

जीवन भभक उठा, "काठ के बने हो यार ! रात्रि की यह नीरवता और इतना दर्द भरा गीत भी तुम्हें पसन्द नहीं आया । तुम हमेशा एक ही लहर पर बहते चले आये हो, न कभी तुम्हारे जीवन में ज्वार उठा न कभी कसकर तुम धरती से ही चिपक सके । कहाँ से फिर तुम्हारे अन्दर ऐसी अनुभूतियाँ होंगी जिनमें कभी-कभी जलने में भी एक अद्भुत आनन्द आता है ? तुम्हारा मन चाहे कितना ही मँजा हुआ क्यों न हो, पर हृदय में वह सरलता नहीं है जिसकी ताल-तरंगों में कँपकँपी उठ सके, वह तार नहीं है जो झंकृत होकर मधुर संगीत की रचना कर सके, वह बर्तिका नहीं है जिसकी लौ पर जल जाने को मन मतवाला हो उठे······"

जीवन बोले ही जा रहा था कि कुलवन्त ने उसे टोक दिया । बोला, "तुम्हारा भाषण सुन लिया है जीवन ! उसमें कुछ तत्व नहीं है । ज्वाला-मुखी के सामने यदि एक छोटी-सी आग जलती है तो उसका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । तुम्हारे अन्दर इस समय एक छोटी-सी चिंगारी जल रही है और वह तुम्हारी कविता और बातों में तिड़-तिड़ कर बाहर आ रही है । इस प्रकार उसके बुझने के साधन हैं पर मैं अपने अन्दर एक ज्वाला-मुखी समेटे हुए हूँ, न जाने कितनी आग अन्दर है । यदि फूट पड़े तो उसके आर-पार का कुछ पता भी न चले । पर फूटने के कोई साधन नहीं । मेरा भी यही प्रयत्न रहा कि इस आग को दबाये रखूँ पर तुमने कुरेद-कुरेद कर उसके ऊपर की मिट्टी को इतना कमजोर कर दिया है कि उस आग का तुमको अब आभास हो जायेगा । आज तक हम डेढ़-दो महीने आनन्द से रहे । हँसने, खेलने और घूमने में ही दिन बिता दिये । जाते समय अब यदि अपनी-अपनी राम कहानी भी सुनाते जायें तो मलाल न रहेगा कि पास होते हुए भी हम

कितनी दूर थे। ये सच है कि यदि तुम अगवानी न करते तो आज की रात भी सोने में ही गुज़र जाती और न मालूम फिर कभी ऐसी बातें होती भीं ? तुम अब अपनी चारपाई बिल्कुल पास ले आओ।"

जीवन भौंचक्का रह गया। उसने अपनी चारपाई कुलवन्त के पास लगा ली।

"सारी रात जागने को तैयार हो न ?"

"हाँ, हाँ !"

"तो सुनो ! जिस प्रेम की तुम रट लगाये बैठे हो उसके भी कई रूप और अवस्थाएँ होती हैं। एक समय ऐसा होता है जब वह मदिरा का सा नशा देता है। विस्मृति की धुन्ध में यदि मनुष्य का मन कुछ देख पाता है तो केवल अपने ही मन की उपज को। बाक़ी सब कुछ दूर चला जाता है और उसका मन एक सुन्दर क्रीड़ास्थल बन जाता है जहाँ बहारें होती हैं—वीरानी नहीं। वह हर वाटिका में हरियाली देखता है—सूखा नहीं। फूलों के सौरभ से विभोर हो उठता है। काँटों की ओर उसका ध्यान तक नहीं जाता। दुनिया गुलाल के रंग में नहाई हुई होती है। मिलन की चाह में बाँहें उठीं की उठी रहती हैं। आँखें अधखुली और विवेक परित्यक्त रहता है। इस प्रेम पर तब तक कोई गाँठ नहीं होती। पर जब इस पर गाँठें पड़ती हैं तब वह वैसी ही बेचैनी भी देता है और तभी प्रेमी को समय मिलता है कि वह ठंडे दिमाग़ से भले-बुरे का बहीखाता देखे। अब उसका प्रेम प्रौढ़ हो जाता है। प्रेयसी या प्रियतम एक नशे की गोली न होकर अपनी ही आत्मा का एक अंश बन जाते हैं, जिसके आह्वान में हृदय के तार तो झंकृत होते हैं पर उनमें शब्द नहीं होता। मिलन में आह्लाद और विरह में आँसू भी होते हैं, पर उनमें संकोच और लज्जा होती है। यही प्रेम की प्रायः दो अवस्थाएँ होती हैं और यही उन अवस्थाओं में उसका रूप होता है। प्रायः आज का मानव इससे ऊपर नहीं उठता। इसके आगे अध्यात्मवाद आ जाता है जो सुन्दर और असुन्दर दोनों को देखता है पर उनमें भेद नहीं करता। दोनों को एक-दूसरे का पूरक समझ कर उन से प्यार करता है। यह प्रेम का उत्कृष्ट रूप है और सम्भवतः तीसरी अवस्था। तुम, जहाँ तक मेरा अनुमान है, पहली अवस्था में हो। क्योंकि

उसके लक्षण तुम्हारे अन्दर विद्यमान हैं। तुम कविताओं में बात करते हो, दूध के उफान की तरह मचल उठते हो। तुम्हारे प्रेम के अन्दर अभी संकोच और सयंम नहीं है और यदि है तो कृत्रिम—तुम्हारे संकोचशील स्वभाव की प्रतिक्रिया स्वरूप। मेरा प्रेम तुमसे भिन्न है—उस पर इतनी गाँठें पड़ चुकी हैं कि वह दूसरी अवस्था को पहुँच गया है। मेरे मन से चाहे कितना ही हाहाकार क्यों न हो, पर मुँह से बिलकुल हल्ला नहीं होगा। नियति का अभिशाप समझ कर उसे पिये रहूँगा—ठीक उसी तरह जैसे शिवजी ने हलाहल धारण कर रखा है। हो सकता है एक अवस्था ऐसी आ जाय जब इस यातना से मुक्त होकर सुख-दुःख की सीमा के बाहर आ जाऊँ। पर ऐसी सम्भावनाएँ कम ही दिखाई देती हैं क्योंकि मेरी आत्मा अभी इतनी ऊँची नहीं उठ पाई कि मैं अनुराग और विराग दोनों को एक रूप में ले सकूँ। दुनिया की वीरानी से मेरा मन काँप उठता है। अभी दिल यही चाहता है कि उन अँधेरी गलियों से दूर रहकर, जहाँ जीवन की विभीषिकाएँ छुपी पड़ी हैं, खुले खेतों में ही विचरण करता रहूँ जहाँ खुली साँस लेने को मिलती है। मेरी बातों को सुनकर अनिवार्य रूप से तुम्हारे अन्दर एक उत्सुकता उत्पन्न हो गई होगी। अतः मैं दर्शन के गूढ़ विषयों में न उलझ कर पहले तुम्हें अपनी कहानी सुनाये देता हूँ जिसे सुनकर शायद तुम अनुमान लगा सको कि मेरी बातों में कितनी सचाई है।"

१५

कुलवन्त बोलता गया, "मैं भी एक स्त्री से प्रेम करता हूँ जीवन और वह स्त्री और कोई नहीं मेरी विधवा भावज है। देश के बँटवारे से पहले की बात है जब हम गुजरात शहर में रहते थे। मैं तब छात्र था और मेरे बड़े भाई दर्जी की दुकान चलाया करते थे। हम बहुत अमीर तो नहीं थे पर इतनी आय हो जाती थी कि पास-पड़ोस में हमारी अच्छी प्रतिष्ठा थी। मेरे भाई पढ़े-लिखे भी अधिक नहीं थे पर पैसा मनुष्य को चमका देता है। पैसे की ही चमक-दमक पर पड़ोस के एक परिवार ने अपनी मैट्रिक पास लड़की का मेरे भाई के साथ सम्बन्ध तय कर दिया था। ब्याह के बाद वह लड़की मेरी भाभी बनकर हमारे घर आई तो ऐसा मालूम पड़ा कि अब घर में दीप की कोई आवश्यकता ही नहीं रही हो। ऐसा सौन्दर्य पाया था भाभी ने। मेरी अवस्था तब २२ साल की थी और मैं मैट्रिक की परीक्षा दे रहा था। आरम्भ से ही पढ़ाई की व्यवस्था ठीक नहीं रही, अतः इतनी बड़ी अवस्था में मैट्रिक तक ही पहुँच सका। भाभी मुझसे दो साल छोटी थी, पर वह कभी की मैट्रिक हो गई थी। उसके सामने मुझे पुस्तकें खोलते लज्जा आती थी। सोचता था—क्या सोचेगी मनमें कि अभी तक मैट्रिक भी न कर पाया। लेकिन ज्यूँ-ज्यूँ दिन बीतने लगे मेरी वह लज्जा भी मिटती गई। भाभी ने जैसा सौन्दर्य पाया था वैसा ही उसका स्वभाव भी मीठा था। मुझे पढ़ते हुए देख उसका चाव भी उभर आता। वह मुझसे खुल कर बातें करती। ये तो मानोगे जीवन कि उस समय का पढ़ाई

का स्तर आज के स्तर से काफी ऊँचा था। हम बहुत ऊँचे विचारों तक तो नहीं जाते थे, पर सामयिक चर्चाओं पर खूब टिप्पणी कर लिया करते थे। मैं भाभी को इक़बाल और ज़ौक़ की शायरी सुनाता था और उनसे उसका बहुत मनोविनोद होता था। तुम्हें आश्चर्य होगा कि वह उर्दू बिल्कुल भी नहीं लिख सकती थी और न ही पढ़ सकती थी पर उर्दू वह इस तरन्नुम से बोल लेती थी कि मानो ऊँचे दर्जे की शायरा हो। मेरी और उनकी खूब जमती थी। उन दिनों पंजाब में हिन्दी का खूब प्रचार हो रहा था और उसे सीखने में स्त्रियाँ ही अगवानी कर रही थीं।

"भाभी भी उन्हीं अग्रणियों में से थी, जो हिन्दी पढ़कर उसमें विशेष रुचि रखने लगी थीं। वे मुझे सवैये और छन्द सुनाती थीं। तुम्हारी प्राचीन कविताओं में अलंकार और शब्दावली जैसे चुन-चुन कर पिरोई जाती थी उसका थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे भाभी से हुआ। अब तो हिन्दी की कविताओं में काफी व्यापकता आ गई है। मालूम पड़ता है, उर्दू का भी प्रभाव उस पर पड़ा है। कई दिशाओं में कवियों की विचारधारा दौड़ चली है। आकाश के उन्मुक्त पंछी की भाँति कवि अब एक पिंजरे में बन्द न होकर स्वतंत्र विचरण कर रहे हैं। पर जैसा मैं भाभी की सुनाई कविताओं से अनुमान लगा सका—पहले ऐसा न था। उनकी आँखें यदि किसी फूल पर पड़ जाती थीं तो वह उसके रूप-रंग-सौरभ में खो जाते थे। उनके सारे शब्द और अलंकार फूल के सौन्दर्य को चित्रित करने में समाप्त हो जाते थे। आज का कवि फूल को देखकर उसे केवल मात्र सूँघ लेते हैं और फिर फूल से प्रेरणा प्राप्त कर दीर्घ चिन्तन में खो जाता है। फिर वह बजाय फूल पर कविता करने के सौन्दर्य पर कविता करता है—यौवन के चढ़ाव और उतार चित्रित करता है। विश्व की सारी सुन्दर वस्तुओं को फूल की पंखुड़ियों में बन्द कर वह फिर काँटों को देखता है और न मालूम फिर कहाँ-कहाँ की उड़ाने भरता रहता है। खैर, जो भी हो, मैं ज़रा कुछ प्रसंग के बाहर चला गया। मैं भाभी की बात कर रहा था। मुझे साहित्य के प्रति यदि कुछ प्रेरणा मिली तो उसका सारा श्रेय उन्हीं को जाता है। उनका वैवाहिक जीवन भी बड़ा मधुर गुज़रता था। किसी चीज़ का अभाव नहीं था। मेरे भाई कुछ अधिक

पढ़े-लिखे नहीं थे, पर आय इतनी अच्छी थी कि शिक्षा के अभाव में जो कमी उनके अन्दर थी वह पूरी तरह ढक गई थी। भाभी उन्हें बहुत प्यार करती थी, जैसा कि एक पत्नी को पति से होता ही है। देवर होने के नाते मेरा उनसे हास-परिहास चलता ही था। किसी अवसर पर मेरा मज़ाक उनको ऐसा काट कर रख देता था कि वह पहले तो चुप रहती थीं पर थोड़ी देर बाद जब उस मज़ाक का अर्थ उनकी समझ में आता था तो वह पैनी दृष्टि मुझ पर डाल कर, झेंपकर मुस्करा जाती थीं। भोजन के समय मुझे यह सुध नहीं रहती थी कि मैं कितनी रोटियाँ तोड़ गया। वह खिलाती, जाती थीं और मैं खाता जाता था। परिवार में तुम जानते ही हो कि बहू की क्या स्थिति होती है। उसे प्यार से पति को प्रसन्न रखना पड़ता है, निष्ठा और आदर से सास-ससुर की सेवा करनी पड़ती है, बच्चों को दुलार और मित्र-सम्बन्धियों का सत्कार करना पड़ता है। तभी उसे गुणवती सुलक्षणी, घर की लक्ष्मी आदि विशेषणों से सम्मानित किया जाता है। भाभी बड़ी विवेक वाली स्त्री थीं। उनका सारा दिन घर के काम-काज में या खाना बनाने में ही व्यतीत होता था।

"भाई साहब के साथ वह घूमने जाती थी पर तब जब माँ और पिताजी भी आग्रह करते थे। उसने सबके दिलों में ऐसा स्थान बना लिया था कि बिना उसके घर सूना-सूना लगता था। प्रत्येक परिवार का सदस्य उसका आश्रय लेता। यदि कभी घर में कोई विवाद उठ खड़ा होता तो वह तभी शान्त होता जब भाभी अमृत उँडेलती हुई हस्तक्षेप करती। मुझे याद है एक दिन वाली घटना, जब किसी बात पर भिन्नाकर मैं सोने को चला गया था। माँ दूध का गिलास लेकर आई पर मैंने पीने से मना कर दिया। इस पर भाई और पिता जी और बिगड़े। न मालूम कितनी बातें सुनाई उन्होंने। उन्होंने स्पष्ट आदेश दे दिया था कि यदि मैं खाना भी न खाऊँ तो मुझे खिलाने न जावे। पर तभी छम-छम करती हुई, अधरों पर मंजुल हास्य लिए, चारों तरफ अपनी रोशनी छिटकाते हुए हाथ में दूध का गिलास लिये भाभी मेरे कमरे में पहुँच गई। मैंने उनकी ओर देखा तो वह हँस कर बोली—

"ज्यादा बच्चे न बनो। बहुत रूठ चुके, अब दूध पी लो।"

"नहीं भाभी ! मैं कुछ नहीं लूँगा ।" मैंने रुँधे स्वर में उत्तर दिया ।

"मेरा लाया हुआ दूध भी नहीं पीओगे, देखो मैं लाई हूँ ।" उनके स्वर में अभ्यर्थना थी ।

"किसी के भी नहीं भाभी ! मुझे माफ़ कर दो ।"

भाभी कुछ क्षण तक मुझे देखती रहीं फिर दूध का गिलास आगे बढ़ाती हुई बोलीं, "लो पी जाओ । तुम्हें मेरी सौगन्ध ।"

मैं झल्ला गया था पर अपने को नियंत्रित कर बोला, "मैं नहीं पीऊँगा भाभी, कतई नहीं पीऊँगा । तुम समझती क्यों नहीं हो ?"

"उनका मुख पीला पड़ गया मानो किसी भारी हथौड़े से मैंने उन पर चोट की हो । असीम ग्लानि उनके मुख पर उतर आयी थी । वह तुरन्त मुड़ी और कमरे से बाहर हो गईं । मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि क्योंकर उनका इतना अनादर कर बैठा । पश्चात्ताप की गहन कालिमा से मेरा सर्वस्व पुत गया । मैं हड़बड़ा कर उठा और दौड़ता हुआ चौके में पहुँचा । उनके हाथ से दूध का गिलास छीन कर मैं एक साँस में सारा दूध पी गया । तत्क्षण उनके मुख पर क्षोभ का स्थान सन्तोष ने ले लिया पर मुझे इतने से ही शान्ति नहीं मिली । मेरे व्यवहार से जो क्षणिक वेदना उन्हें मिली थी उसका मुझे प्रायश्चित करना था । भावुकता में बह कर मैंने उन्हें बाहुपाश में कस लिया और उनके कपोलों पर एक दीर्घ चुम्बन अंकित कर दिया । यह सब इतना अकस्मात् हुआ कि मेरे पास अभी तक उसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं है । मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस सारी क्रिया में कहीं भी मेरे मस्तिष्क में किसी भी अंश में कोई विकार नहीं था । सम्भवतः अपने पश्चात्ताप को व्यक्त करने का केवल वही ढंग रह गया हो । खैर, जो कुछ भी हुआ वह अनजाने में हो गया, पर यह घटना एक विशेष प्रतिक्रिया छोड़ गई ।

"मैं जब वापस अपने बिस्तर पर पहुँचा तो भाभी के अलकों से निकला हुआ सौरभ मेरी नासिका से मेरे रोम-रोम में पहुँच गया था, मानो कभी इन्टरावेन्स इंजेक्शन से मेरे अन्दर मधु संचार किया गया हो । मेरा कण्ठ इस क़दर सूख गया कि मुँह का थूक घूँटकर मुझे उसे तरल करना पड़ रहा था । वही दिन था जब प्रत्यक्ष में मौन आकर्षण की मुझे अनुभूति हुई । मैं कह

नहीं सकता उस घटना की भाभी पर क्या प्रतिक्रिया हुई, पर इतना स्पष्ट है कि दूसरे दिन सुबह जब हम पुनः मिले तो मेरी तो लज्जा से पलकें झुक गई पर भाभी के अधरों में केवल वही मुस्कान थी जिससे वह नित्य मेरा स्वागत करती थी। हमारा पारस्परिक व्यवहार वैसा ही चलता गया। केवल यही अन्तर आया कि मेरा मन अब हर समय, हर घड़ी ऐसे मज़ाकों की खोज में रहता जिनसे वह कटती रहे, और मैं उसकी लजीली मुस्कान, भृकुटि-विलास और उसके अन्तर में चल रहे इन हास-परिहास की प्रतिक्रिया का आनन्द लेता रहूँ। पहले मैं अवसर की खोज नहीं करता था पर अब बहाने बनाकर मैं किसी-न-किसी प्रकार उनसे बातें करने का अवसर खोज ही निकालता था। उस घटना की खुमारी मस्तिष्क के किसी पिछले गर्त में छिपी हुई मुझे उनके पास ले जाती रहती और क्योंकि भाभी ने कभी भी मुझे टोका नहीं, मेरी रसिकता बढ़ती ही गई। जीवन! एक सुन्दर स्त्री का साथ, जो विचारों से से भी मेल खाती हो और स्त्री-सुलभ लज्जा और करुणा से लबालब भरी हुई हो, कितना आनन्दप्रद होता है। आरोग्य आश्रमों में यदि रोगियों को कोई औषधि न दी जाय, केवल ऐसी ही सुन्दर युवतियों को सेवा के लिये रखा जाय तो रोगी कितना शीघ्र रोग-मुक्त हो जाय। भाभी मेरे मन में ऐसे ही छा गई थी कि उसकी सूरत से ही मैं एक ठण्डी बयार का अनुभव करता। वह हँसती थी तो मैं नहा जाता था, वह बोलती थी तो मुझे संगीत सुनाई देता था। वह इस कमरे से उस कमरे में जाती तो मेरी इच्छा होती थी कि हाथ में डोने लिये उसके पीछे-पीछे फिरता रहूँ कि कहीं छत्ते से मधु चूकर नीचे गिरे तो मैं उसे डोने में भर लूँ।

"आह कैसे दिन थे वे जीवन! याद कर आँखें स्वतः बन्द हो जाती हैं। अब वह दिन न रहे पर उनकी याद कर आज भी मैं अपने कड़वे दुःखों को मिटाता हूँ। यदि उस बनाने वाले ने हमसे द्वेष कर हमारी सम्पूर्ण शक्ति को पशुओं की भाँति नष्ट कर दिया होता तो कहाँ से ऐसे नज़ारे दिमाग़ के अन्दर बन्द रह पाते। लेकिन स्मरण-शक्ति के प्राप्त होने से वह विभीषिकायें भी तो हमारे दिमाग़ों में भरी पड़ी हैं, जिन्हें याद कर आत्मा चीत्कार कर

उठती है। निष्फल रुदन में आँखे तर रहती हैं। किन-किन बातों के लिये धन्यवाद दें भगवान को और किन-किन बातों के लिये उसे कोसें?"

कुलवन्त अब चुप हो गया था। बाहर नैनीताल की ठण्डी और खामोश रात छाई हुई थी और कमरे के अन्दर सूनी निगाह लिए हुए कुलवन्त और जीवन—उस खामोशी में मानो अपने दिल के दाग़ों को ठण्ड पहुँचा रहे थे। सिरहाने की खिड़की खोल कर कुलवन्त ने फिर बोलना आरम्भ किया, "फिर सन् ४७ में दंगे हुए। उसका वर्णन करना यहाँ पर व्यर्थ है। उन दंगों का प्रसंग से इतना ही सम्बन्ध है कि उनमें हमारे परिवार के सब सदस्य मारे गये। केवल मैं और भाभी ही जान बचा कर एक काफिले के साथ दिल्ली आ सके। तुम स्वयं कल्पना कर सकते हो कि क्या दशा रही होगी हमारी? जो कुछ अपनी आँखों से देखा—मन और यहाँ तक कि कल्पना उस पर विश्वास करने में संकोच कर जाती है। चारों ओर चीख और पुकार थी अविरल क्रन्दन चल रहा था, मानों काल द्वारा संचालित महाप्रलय में सब कुछ डूब गया हो। विनाश लक्ष्य को चूम कर भग्नावशेषों के रूप में अपने पद-चिन्ह छोड़ गया था मैं भाभी की सूनी आँखों में अपनी सूनी दृष्टि डालकर मानों पूछता था कि यह सब कुछ क्या हो गया पर उसकी आँखों में भी उत्तर की अपेक्षा प्रश्न ही तैर रहे होते थे। जब किंग्जवे कैम्प में हम को बसाया गया तो उस रात पहली बार हम रोये और इतना रोये कि उस रोने से मरने वालों को भी शायद हम से फिर गिला न रहा होगा कि उनकी मौत पर हमने रोने में कृपणता दिखाई।

"कुछ दिनों के बाद फिर मेरी पुनर्वास विभाग में नौकरी लग गई और हम कुछ व्यवस्थित होकर गुज़र करने लग गये। मैं घर से दफ़्तर जाता और पाँच बजे दफ़्तर से छूट कर सीधे घर आ जाता। भाभी भोजन और चौका-बर्तन करती रहती। अन्दर से तो हम कभी के मर गये थे पर दुनिया के लिये अभी भी जीवित थे। भाभी आतुर हो मेरी प्रतीक्षा किया करती और जब मैं दफ़्तर से लौटता तो मेरी छाती से चिपक कर कभी-कभी दो आँसू भी छोड़ देती। अब उसके अन्दर वह चंचलता नहीं थी, वह साहित्य-प्रेम नहीं था जो गुजरात में हुआ करता था। मनुष्य ज़िन्दा तभी तक रहता है जब तक उसके अन्दर

भय नहीं होता। कायर जीव तो दिन में कई बार मरता रहता है। भाभी भी ऐसी ही मृतक प्राणियों में से थी जो मर-मर कर केवल इसीलिये जी रही थी कि कहीं वह मुझसे भी अलग न हो जाय। उसके सारे विचार, सारी खुशियाँ और सारी दिनचर्या मुझे ही केन्द्र मानकर आगे बढ़ रही थी। किसी दिन यदि मेरी तबियत थोड़ा भी खराब हो जाती तो उसकी आँखों में सावन की झड़ी-सी लग जाती। मृत्यु का उसे इतना भय लगा रहता कि न मालूम कब आ जाये। उसके मन की दशा का अनुमान उसके डर-डर कर चलने की प्रकृति से लग जाता था। एक दिन की बात है, मैं दफ़्तर के दो मित्रों के आग्रह पर छः बजे का शो देखने चला गया। जब रात को घर लौटा तो भाभी आधा होश खो बैठी थी। उसी अवस्था में वह मेरे गले से लिपट गई और इतनी रोई कि मैं भी उसकी वेदना का अनुमान लगाकर व्याकुल हो गया। मैंने उसके आँसू पोंछे, हल्की-हल्की थपकियाँ देकर उसे चारपाई पर बिठाया और फिर कभी विलम्ब न करने का आश्वासन देकर उसे शान्त किया। उसकी निराशा को लक्ष्य कर मैं उसे कभी सिनेमा, तो कभी अन्य स्थानों में घूमने-फिरने भी ले जाने लगा और उन समस्त सम्भव प्रयत्नों की खोज में लगा रहता जिनसे उसकी निराशा दूर होती। मेरा दिल भी कौन-सा जिन्दा था पर फिर भी मैंने अपने को नये ढाँचे में ढाल लिया था। चाहता था, भाभी भी परिस्थितियों से समझौता कर ले और इसीलिये हमेशा इसी प्रयत्न में रहता कि वह पिछली बातों को भूलकर थोड़ा हँस खेल ले, और कोई होता तो शायद ही सफल होता, मैं भाभी की रुचि और प्रकृति से अच्छी तरह परिचित था। वही बातें करता जिनसे मुरझाये फूल पर फिर जान आ जाती। गुलाब की पंखुड़ियों की तरह उसके अधर मुस्कान में हिल जाते।

"इसी प्रकार ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गये भाभी को मैं उसके पिछले रूप में लाने में सफल होता गया। अब हम पुरानी बातों की चर्चा भी न करते थे। पर ठीक उसी तरह जैसे कि इतिहास की कोई बात दोहराते हों। अब फिर वही हास-परिहास और शेरो-शायरी भी हो जाया करती थी।

"कभी सिनेमा और कभी क्रय करने के उद्देश्य से बाजार की सैर करने जाते। एक दिन अपने लिये कुछ कपड़ा खरीद रहा था कि मेरी निगाह एक

सुन्दर-सी साड़ी पर पड़ी। मैंने दुकानदार से उसे दीखाने को कहा। भाभी गम्भीर हो मेरा मुख देखने लगी। मैं बोला, "इसे पहनोगी तो चाँद भी शर्मा जायेगा।"

वह उसी गम्भीरता से मेरा मुँह देखती रही और बोली, "नहीं रहने दो मेरे पास धोतियाँ हैं।"

'धोतियाँ हैं तो क्या हुआ ? ऐसी साड़ी तो कोई नहीं है।"

भाभी ने गर्दन नीचे कर दी और बोली, "जिद्द न करो, मुझे नहीं चाहिये ये साड़ी।"

मैंने कितना ही मनाया पर भाभी टस से मस न हुई। घर आकर मैं रूठता हुआ बोला, "तुमने मेरी इतनी-सी छोटी बात भी नहीं मानी। मैं भी कभी देखूँगा भाभी जब तुम अपनी बात मनवाओगी और मैं नहीं मानूँगा।" वह तनिक मुस्कराई और बोली, "कभी रखी है मेरी बात ? हमेशा रूठते ही आये हो।"

"अच्छा ये बात है।" मैं बोला, "भूल गई हो न उस रात वाली बात को जब तुम्हारा दिल रखने को, मैं चौके में आकर दूध पी गया था।"

ये मैं कह तो गया पर तुरन्त ही जैसे संकोच से धरती में गड़ गया।

मैंने भाभी की ओर देखा। उसके माथे पर पहले तो लकीरें खिंच गई थीं पर बाद में उनका मुख लज्जा से लाल हो गया। मैं मुस्करा दिया और उन्होंने भी मुस्करा कर गर्दन नीचे कर ली।

मैं बोला, "सच कह रहा हूँ भाभी ! जब तुम सो जाओगी तो आज ही चल पड़ूँगा कहीं, ताकि तुम रोक भी न सको ; फिर देखूँगा कैसे नहीं मानोगी मेरी बात।"

उत्तर में भाभी फिर मुस्करा दी। खाना खाते समय और उसके बाद भी मैं इसी प्यार भरी धमकी से उनका मनोविनोद करता रहा और वह हँसती रही। उसके मुख पर जो आभा थी उससे मैं आसानी से अनुमान लगा सकता था कि मेरी बातों से कितना आह्लाद मिला था उसको !

जब हम बिजली बन्द कर अपने-अपने बिस्तरों पर लेट गये तो भाभी छेड़ती हुई बोली, "अभी न चले जाना, नींद आने में अभी कुछ देर लगेगी।"

मैं चुप रहा। भाभी मेरी धमकी का मजाक उड़ा रही थी। कोई उत्तर न पाकर जब वह चुप हो गई तो मुझे फिर मजाक करने की सूझी। मैं धीमे पाँव से दरवाजे की ओर बढ़ा और कुण्डी खोल बाहर निकलने लगा कि पीछे से भाभी ने ज़ोर से मुझे पकड़ लिया और मुझे कमरे के अन्दर खींच कर दरवाजे पर कुण्डी चढ़ा दी।

"मेरी बात मानोगी या नहीं ?" अपने बिस्तरे पर जाकर मैं बोला और मन ही मन में खूब हँस पड़ा पर उत्तर की अपेक्षा मेरे हाथों पर तप-तप गर्म आँसुओं की बूँदें पड़ने लगीं। मुझे उस अँधेरे में भाभी का मुँह तो नहीं दिखाई दिया पर उसके तप्त कपोलों पर जब मेरी हथेलियाँ गईं तो मालूम पड़ा कि मेरा मजाक कितना गहरा चला गया था। वह कटे हुये वृक्ष की तरह निढाल होकर मेरे वक्ष से चिपक गई थी और मेरे हाथ उसकी पीठ और वेणि से खेल रहे थे।

वह बोली, "सचमुच जा रहे थे क्या ? कभी न करना ऐसा, चाहे मजाक ही क्यों न हो। मैं साड़ी ही नहीं, चूड़ियाँ भी पहनने को तैयार हूँ, माँग पर सिन्दूर भरना शुरू कर दूँगी। बोलो नहीं जाओगे न ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और न ही भाभी को फिर कोई प्रश्न पूछने की ही आवश्यकता हुई। उस रात के अँधेरे में मैंने उसे भाभी के आसन से उतारकर पत्नी के आसन पर बिठा लिया था। दूसरे दिन व्योम पर उषा की लालिमा छा रही थी और भाभी शृंगारदान के सामने बैठी सुहाग सिन्दूर से अपनी माँग भर रही थी'''गोरी कलाइयों में चूड़ियाँ खनक उठी थीं।

जीवन ! तुम अनुमान लगा सकते हो, मेरे छोटे से मजाक ने क्या कमाल कर दिखाया। सच कहता हूँ यहाँ पर भी केवल नियति का ही हाथ रहा।

मैं नहीं कह सकता कि उस रात भाभी का आत्म-समर्पण या मेरा अति-क्रमण हमारे अन्दर किसी छिपे हुये गुप्त प्रेम की प्रतिक्रिया थी अथवा परिस्थितियों के साथ पूर्ण समझौता, पर जो कुछ हुआ वह इस समय भी अकस्मात् ही हुआ। मुझे क्या पता था कि साड़ी और चूड़ियों को भाभी सुहाग के उप-करण के रूप में इतना महत्व देती थी। मैंने तो केवल उसे खुश देखने की उत्कण्ठा में ही साड़ी खरीदने का प्रस्ताव किया था, पर सम्भवतः उसके मन

में तभी से द्वन्द्व आरम्भ हो चला था और जिस प्रकार घटा घिरते-घिरते आसमान को ढक लेती है और फिर बरस कर ही शान्त होती है, शायद वैसे ही उसका मानसिक द्वन्द्व भी उस रात को चरम सीमा पर पहुँच कर बरस पड़ा था। जब दूसरे दिन भोर हुई तो हल्के-फुल्के श्वेत बादलों की तरह उसकी अलसाई हुई आँखों में भी केवल दीप्त अनुराग तैर रहा था।

जीवन ! उस दिन से हम पति-पत्नी की तरह रहने लगे, यद्यपि दुनिया की नजरों में अभी भी हम देवर-भाभी ही थे। दो-तीन महीने तक मेरे लिये केवल भाभी थी और सम्भवतः भाभी के लिये मैं था। दफ्तर में बैठा हुआ मैं यही कामना करता था कि जल्दी से छुट्टी हो और मैं भाभी के पास अपने आप को पाऊँ। मैं सच कह रहा हूँ कि एक अजीब विस्मृति मेरे अन्दर आ गई थी। मैं भला-बुरा सब भूल गया था। इतना सोचने का अवसर ही न था और न कभी भाभी ने ही मुझे सचेत किया। वह भी जवानी की मीठी घूँटे ले रही थी। उस असहाय को भी कैसे दोष देता। हमारा नशा तब टूटा जब भाभी ने मुझे बताया कि वह माँ बनने जा रही थी। मुझे लगा मानो मदिरा का पात्र रिक्त हो चला हो। अब उसका आनन्द चला गया था, केवल उसकी बू बाकी थी, जो हमारे तन-बदन में सनी हुई थी और जिसका आभास होते ही समाज के प्रहरी हमें बन्दी बना सकते थे। भाभी ने प्रस्ताव रखा कि गुरुद्वारे में जाकर हम विवाह करा लें, पर मेरे अन्दर इतनी हिम्मत कहाँ थी ? प्रस्ताव को टालता गया, यहाँ तक कि दो महीने और व्यतीत हो चले। पाप छुप कैसे सकता था ? हमें समाज ने आखिर पकड़ ही लिया। सारे पड़ोस में हल्ला हो गया। न जाने कैसी-कैसी बातें सुननी पड़ीं। अब मेरे मस्तिष्क में बात आई कि मामले को पहले से ही क्यों न सुलझा लिया ? पर अब जाल बिछाने से क्या लाभ था, खेत तो चिड़ियों ने चुग ही लिया था। हमारे जीवन में फिर विषाद छा गया। मुझे घर काटने को दौड़ता। दौड़ता क्यों नहीं, जब चारों ओर से उँगलियाँ उठ रही थीं। कोई भी तो सहानुभूति दिखाने वाला नहीं मिला। कोई क्षमा का वरदान देने का वचन भी देता तो केवल इसी शर्त पर कि मैं भाभी का परित्याग कर दूँ। मोहल्ले के सारे लोग उसे फूटी आँखों से भी न देख सकते थे। भाभी का उनके बीच रहना असह्य हो चला, पर क्या

करती बेचारी। इस रस्सा-कसी में हमारे सम्बन्धों में भी अन्तर आने लग गया। मैं अब देर तक दफ़्तर ही में रहने लग गया। रात को जब आठ या नौ बज जाते, तब घर आता। भाभी वैसे ही पहले व्याकुल थी, अब मेरी उदासीनता से उसे और भी दुःख हुआ। एक दिन रोती हुई बोली, "अगर तुम इतनी देर से आते रहे तो किसी दिन मैं मर जाऊँगी। भगवान की सौगन्ध मुझ पर दया करो।"

मैं भाभी की दशा देखकर पिघल पड़ता था पर उत्तर क्या देता। चुप ही अखबारों के पन्ने पलटने लग जाता। भाभी एक दिन फिर बोली, "तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। बोलो, वचन देते हो न कि अब देर न करोगे?"

मैं बोला, "देर से आने में मेरा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ज़रा दिल बहला हुआ रहता है, इसीलिये सोचता हूँ कि जितना समय बाहर कट जाय उतना ही अच्छा।"

भाभी रोती हुई बोली, "सो तो ठीक है, मेरा क्या होगा? मैं क्या इस चार-दीवारी के भीतर ही सड़ती रहूँगी? मुझसे क्या तुम्हें बिल्कुल सहानुभूति नहीं है कि अपना तो तुमने उपाय ढूँढ निकाला पर मुझ पर क्या बीतती होगी जो इस ओर तुम कभी ध्यान ही नहीं देते?"

"लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं सूझता कि क्या करूँ?"

"मैंने कहा जो था कि गुरुद्वारे में जाकर शादी कर लें।"

"लेकिन यह कभी हुआ है? आज तक हमारे या तुम्हारे खानदान में क्या इस तरह की शादी किसी ने की है?"

मेरा उत्तर सुन कर भाभी आश्चर्य से विभ्रान्त हो गई। वह कुछ देर पैनी दृष्टि से मुझे घूरती रही फिर बोली, "तुम जो कुछ कह रहे हो, ठीक है पर तुम्हारे खानदान में क्या पहले ऐसा भी हुआ जो तुमने किया?"

मैं शायद अन्दर ही अन्दर अपनी बात पर सकुचाया हूँगा पर भाभी को मेरी बात से कितनी चोट पहुँची होगी, इसकी मैंने अधिक चिन्ता न की। अपितु उसने जो लौट कर मुझ पर वार किया उससे मैं और झल्ला गया।

मैं बोला, "मैंने किया या तुमने किया······इसका यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है। पर जो कुछ भी हमने किया है, वह नादानी है और अब आगे भी

जिस बात को करने का तुम प्रस्ताव कर रही हो वह केवल नादानी ही नहीं वल्कि उद्दण्डता भी है। भला खानदान का हमसे क्या ऐसा बैर है कि हम अपनी नादानियों से उसे कलंकित करें ?"

भाभी ने मेरी बात सुनी तो ऐसा मुँह बना लिया मानों मेरी बातों पर उसे विश्वास नहीं हुआ हो। वह सिर से पैर तक मुझे देखती रही। फिर जैसे सुनी हुई बातों की सत्यता को पुष्ट करने के ध्येय से बोली, "तो जो कुछ हुआ······क्या वह सब नादानी थी ?"

"तुम यह प्रश्न अपने से क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"मैंने तो कभी इसे नादानी नहीं समझा। मेरा तो यह सोच-समझ कर उठाया हुआ पग है। यह अलग बात है कि तुम मेरी टाँग पर ही प्रहार कर बैठो और उसे तोड़ दो। पर जो पग मैंने उठाया है उसे कभी वापस नहीं लूँगी, चाहे खानदान कलंकित हो या नरक में जाये। मैंने निष्पाप हृदय से तुम्हारा वरण किया है। बल्कि यूँ कहो कि तुम्हें अपना सर्वस्व मान कर मैंने अपने सब पापों को धो डाला है। वैधव्य से जिस पाप का भय हो सकता था उसे मैंने तुम्हारा चरणामृत पीकर समाप्त कर दिया। फिर नादानी कैसी? बिगड़ी को बनाना नादानी नहीं बुद्धिमानी ही है।"

वह फिर होंठ सिकोड़ कर बोली, "तुम सोचते होगे कि मैं चरित्र की दृष्टि से अब नंगी हो गई हूँ और शायद अपने नंगेपन को ढाँपने के लिये ही ऐसी दलील दे रही हूँ। तुम्हारा ऐसा सोचना मेरे लिये दुर्भाग्य है। मैं तुम्हें सोचने से रोकूँगी भी नहीं क्योंकि ऐसा तुम तभी सोच सकते हो जब तुम्हारा मुझ पर से विश्वास उठ गया हो। विश्वास के अभाव में यदि मैं मर भी जाऊँ तब भी तुम्हारी भावनाओं को मोड़ न सकूँगी। इसीलिये बिना इस बात की चिन्ता किये कि तुम मेरी बातों की सत्यता को कहाँ तक स्वीकार करते हो, मैं इतना बताना फिर भी आवश्यक समझती हूँ कि मेरा चरित्र न पहले गिरा हुआ था और न ही अब मैं उसे गिरा हुआ समझती हूँ। मैंने तुमसे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किया है पर उसके पीछे कभी भी वासना की भूख नहीं थी। वह तो प्रेम की पवित्र आग में पूर्णाहुति मात्र थी। भले ही उससे प्राचीन मान्यताएँ भंग हुई हों।"

मैं उस समय कुछ उत्तर न दे सका, क्योंकि मुझे लगा कि उसने निर्भीक होकर ही नये जीवन में क़दम रखा था पर मैंने कभी भी कुछ क्षण भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। मैं भाभी का प्रस्ताव मान भी जाता क्योंकि वह युवती थीं, सुन्दर थी······स्वभाव की मधुर और विवेक वाली भी थी, पर जिन संस्कारों में पलकर मैं बड़ा हुआ था, वे कैसे ये सब सहन करते? वे तो झकझोर कर मुझ से यही कहते कि तुमने पाप किया है। भाभी आयु में मुझ से छोटी थी पर उसके विचार प्रौढ़ और विकसित थे। उसका और मेरा नैतिकता का पैमाना अलग-अलग था। मैं उन कार्यों को अनैतिक समझता था, जिनकी सीख मुझे दी गई थी या जो मैंने पुस्तकों में पढ़ी थी और विधवा भाभी के साथ शरीर का सम्बन्ध भी चाहे वह कैसी ही परिस्थितियों में क्यों न हुआ हो—मेरे लिये घोर अनैतिक था। मुझे इसका आभास उस समय नहीं हुआ जब मैंने यह जघन्य पाप किया, पर इसका ये मतलब नहीं कि उस समय मैं इसे अनैतिक नहीं समझता था। उस समय तो मैंने कहा नहीं कि मैं भले-बुरे का ज्ञान ही खो बैठा था। क्या नैतिक था और क्या अनैतिक था···सब बाद की बातें थीं। पर अब, जब होश आया तब घृणा से मैं विकल हो उठा। भाभी मुझे पाप की साक्षात् पिटारी लगी। वह सामने होती तो उसकी ओर देखने को भी दिल न करता, मानों उसकी सड़ी हुई देह में कीड़े रेंग रहे थे। वह फिर गंगा नहीं गन्दी नाली थी जिसमें प्रत्येक गन्दगी तैरती रहती है। वह ऐसी नागिन लगती थी जिसने सारे ख़ानदान की प्रतिष्ठा को डस लिया था।

मेरी यह घृणा दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। यहाँ तक कि अब मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि हो न हो इसी पापिन की कुदृष्टि से भाई की हत्या हुई··· माता-पिता का आश्रय गया, ताकि समस्त अंकुशों के उठ जाने पर उसका पाप स्वतन्त्र हो अपना मायाजाल बिछा सके। तुम सोच सकते हो जीवन! इतनी घृणा जब मेरे अन्दर थी फिर भला भाभी की बातों का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ता? वह रोती-धोती ही रहती और मैं उससे दूर-दूर ही होता चला गया। भगवान बुरे से बुरा अभिशाप दे पर ऐसी जिन्दगी न दे जिसमें अविश्वास, सन्देह और घृणा भरी हुई हो। ये परछाइयाँ जब किसी के जीवन

पर मँडराने लगती हैं फिर मनुष्य इसी पृथ्वी पर नरक की उन कल्पित यातनाओं को साक्षात् रूप में देख लेता है जिनका भय मृत्युपरान्त हमारे पुराण हमें दिखाते रहते हैं। भाभी ये यातना सहन करती रही, इसी विश्वास पर कि सम्भवतः पतझड़ के बाद उसके भाग्य में भी बसन्त लिखा हो, पर जो-जो समय बीतता चला गया उसका विश्वास भी मोम की तरह पिघलता-पिघलता एक दिन बिल्कुल ही धराशायी हो गया। जब वह मेरे स्वभाव में कतई सुधार की आशा खो बैठी तो एक दिन उसने प्रस्ताव कर ही डाला कि वह मुझसे पृथक् रहना चाहती है। मैं उसके प्रस्ताव पर उबल पड़ा। मन ने कहा कितनी मायाविनी है यह स्त्री! कहाँ तो कल तक मेरे नाम की रट लगाये रहती थी और कहाँ अब साथ तक छोड़ने को तैयार है। कहाँ गया उसका प्रेम और वे सब भावनाएँ जिनका केन्द्र-बिन्दु वह आज तक मुझे ही मानती आई थी? यह सब छल ही तो था, एक मायाजाल जिसमें उसने मुझे फँसाये रखना चाहा था। मैं उसके लिये, उसकी अतृप्त आकांक्षाओं को मिटाने वाला साधन ही तो था—एक ऐसा शिकार जिसको वह कृत्रिम प्रेम के दानों से अपने माया-जाल में लाना चहती थी। पर जब शिकार ने उसके जाल में फँसने से मना कर दिया तो वह सारा माया-वितान उठाकर अपने सच्चे रूप में सामने आ गई। जीवन! सच कह रहा हूँ, मैं उसे ऐसी घृणा की दृष्टि से देख रहा था कि कोई तीसरा व्यक्ति होता तो शायद यही अनुमान लगाता कि सूखे हुए कण्ठ के ही कारण मैं उस पर थूकने से चूक गया या थोड़ा शिष्ट होने के ही कारण शायद मैं उस पर कूड़े की टोकरी उछालने से संकोच कर गया पर ऐसे कृत्यों के करने में जिस घृणा की प्रेरणा अन्दर से होती है वही घृणा उस समय मेरे रोम-रोम में सनी हुई थी।

मैंने उपेक्षा-भाव से पूछा, "कहीं दूसरी जगह घर बसाओगी क्या?"

"हाँ।" उसके शब्दों में दृढ़ता थी।

"जाओ फिर, मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है?"

"तुम इस भूल में हो कि मैं तुमसे पूछ रही हूँ? मैं केवल तुम्हें सूचित कर रही हूँ ताकि अभी भी तुम्हारा विवेक लौट सके कि तुम्हारी ही गलतियों के कारण आज मुझे घर छोड़ना पड़ रहा है।"

जीवन ! भाभी अभी पूरा वाक्य भी नहीं कह पाई थी कि उसके कण्ठ का स्वर बदल गया। दृढ़ता के स्थान पर आतुरता आ गई थी। पर मेरी घृणा की जलती चिता पर उसके ये शब्द ईंधन डाल गये थे। मैं गुस्से में बोला—

"ये उपदेश कोई और सती-साध्वी स्त्री देती तो मान लेता पर विधवा होते हुए भी जो अपने देवर पर ही हाथ साफ़ कर बैठी, उसको मैं इन बातों का क्या उत्तर दूँ। अब जा रही हो तो सीधी चली जाओ, क्यों व्यर्थ में दो-चार बातें हों, जिनसे ख़राबी हो। जीवन, यथार्थ में हमारे महीने दो महीने से जैसे सम्बन्ध चल रहे थे उनको देखते हुए तो ये शब्द बहुत कटु नहीं थे। अन्दर ही अन्दर हम एक-दूसरे से बहुत दूर हो गये थे पर प्रत्यक्ष में कभी हमारे मुख से ऐसे शब्द नहीं निकले थे। आज मन की भावनाएँ आँखों से नहीं मुख से फूट पड़ीं। भाभी ने सुना तो उसकी नसें तन गईं। गुस्से में लाल मुँह लिये वह पहली बार मेरा नाम लेते हुए बोली, "कुलवन्त ! तुम इतने निर्लज्ज हो गये हो कि मेरा इतना सीधा अपमान कर बैठो। अभी तक मैं यही समझती थी कि तुम चाहे मुझसे घृणा करने लगे हो, मुझे चरित्रहीन और पातकी समझ कर चाहे तुमने वह सारे सम्बन्ध तोड़ डाले जो भाभी और फिर रखैल के रूप में तुम्हारे और मेरे बीच विद्यमान थे, पर मुझे इतनी आशंका नहीं थी कि तुम इतने नीचे उतर जाओगे कि मनुष्य की बोली छोड़ कर हैवान की तरह बातें करोगे। मुझ पर लांछन लगाते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? विधवा भाभी के असहाय यौवन पर डाका डालकर आज तुम मुनि बन बैठे ? और उस कृत्य का जिसे तुम पाप कहते हो, सारा बोझ मुझ पर डाल कर आप साफ़ किनारा कर गये। मेरे पेट में तुम्हारा पाप पल रहा है जिसकी वजह से अब मैं परित्यक्ता हो गई हूँ और पतिता ही कहलाऊँगी, कोई भी मुझे समाज में स्थान नहीं देगा ; पर बताओ तो तुम्हारा क्या बिगड़ गया ? क्या तुम्हारी शादी रुक जायेगी या ये जो तुम्हारी छोटी-छोटी मूछें उग आई हैं इन पर कहीं बल पड़ जायेंगे जो तुम इन पर ताव न दे सको। बताओ तुम्हारा कौनसा स्थायी अहित मैंने किया है ? पर जानते हो, मेरा सतीत्व लूट कर और पीछे इस निर्दयता के साथ लात मार कर तुमने मुझे विनाश के

कितने गहरे गर्त में फेंक दिया है ? फिर आश्चर्य तो तब होता है जब चोरी करने के बाद तुम उल्टे मुझे फटकार दे रहे हो। मुझे नहीं मालूम कि तुम्हारे अन्दर पाप था। और न जाने वह पाप कब से पल रहा था। सम्भव है, तुम मेरे रूप पर पहले से ही नजर रखते आ रहे थे। पर मैं उसे देवर का सच्चा प्यार समझे बैठी थी। जब मैंने तुम्हें देवर के अतिरिक्त पति का भी दर्जा दिया तो यही सोच कर कि जब माता-पिता, भाई-बन्धु सब स्थानों पर तुम्हीं विराजमान हो और तुम्हारे ही साथ इस संसार-सागर को पार करने के लिये मैं बची रह गई तो फिर क्यों न एक ही नाव पर बैठ कर इस लम्बी यात्रा को पार करूँ।"

"तुम्हारे प्रति जो स्वच्छन्द और निष्कलंक प्रेम मैं अपने हृदय में रखती आई थी उसकी क़ीमत चुकाने के लिये मैंने अपनी मर्यादा को भी सस्ता पाया और समाज की चिन्ता किये बिना ही मैंने उन तमाम जंजीरों को तोड़ डाला जिनसे एक विधवा कसी हुई रहती है। केवल एक ही अभिलाषा थी कि तुम्हारे और मेरे बीच दीवार न रहे। यह अभिलाषा रहती थी और सर्वदा महान् त्याग की माँग करती थी। यह महान् त्याग मैंने अपना सर्वस्व देकर पूरा किया। तुम इस सच्चाई को न समझ सके क्योंकि तुम्हारे अन्दर पवित्र विचार नहीं थे विपरीति इसके तुमने देखा कि बकरी हाथ लग गई है, लगे अपने उन छुरों को सान पर तेज करने, जिन पर संकोच और मर्यादा के सामने जंग लग गई थी। तुम पूरे कसाई निकले कुलवन्त! रक्षक नहीं भक्षक सिद्ध हुए।"

जीवन! भाभी के मुख पर तेज दीप्त था। सारा प्रकाश पुञ्जीभूत हो उठा था। उसकी गम्भीर मुखाकृति में विश्वास की गरिमा प्रतिष्ठित थी। न जाने कितनी घृणा मेरे अन्दर भरी हुई थी पर मैं कुछ न बोल सका मानों मेरी जीभ तालू से सट गई थी, मैं पंगु हो चला था अथवा मेरे मस्तिष्क को लकवा मार गया था। भाभी सम्भवतः प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी, पर जब उसने मुझे मौन पाया तो वह अगाध वेदना लिये घर से निकल पड़ी। मुझे यह भी पूछने की हिम्मत नहीं हुई कि आखिर अब उसने कौनसी मंजिल तय करने की ठानी थी। भ्रान्त पथिक की तरह न मालूम मन में कैसे-कैसे विचारों का

सोपान लिये वह निःसहाय और अकेली ही अपना मार्ग प्रशस्त करने निकल पड़ी। यह मेरा अपने जीवन में दूसरा कटु अनुभव था। पहले भाभी साथ थी। जो दुःख हुआ था उसे दोनों ने बाँट कर हल्का कर लिया था। अब जो अज्ञात क्षोभ मुझे हुआ उसे बाँटने वाला कोई न था। लेकिन जीवन, यह संसार पूरा एक मदारी का खेल है। जीने पर भी डुगडुगी बजती है और मरने पर भी। स्थायी भाव कभी नहीं रहने पाये। रोना-पीटना, ठट्ठा-मजाक सब एक तमाशे के अंग बन जाते हैं। जब भाभी गई तो पड़ोस वालों की वक्र-दृष्टि भी मेरे ऊपर से उठ गई, मानो एक करामात समाप्त होकर अब तमाशे का दूसरा भाग आरम्भ हो चला था। पहले भाग में केवल मैं और भाभी ही खेल का संचालन कर रहे थे पर दूसरे भाग में भाभी का स्थान पड़ोसियों ने ले लिया था। अब सब मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करते और भाभी पर कीचड़ उछालते। न मालूम कितनी-कितनी बातें उन्होंने कीं और प्रायः सब बातों का सार यही होता था कि भाभी एक गिरे हुए चरित्र की स्त्री थी, जो आज नहीं तो कल न जाने क्या-क्या विपदायें मेरे ऊपर लाती। पड़ोस वाले पहले तो कुछ संकोच के साथ बात करते पर बाद में जब उन्होंने देखा कि उनकी बातों का मुझ पर आशानुकूल प्रभाव पड़ रहा था, वे खुले आम यह कहने लग गये थे कि भाभी के पेट में न मालूम किसका बच्चा था? उनकी बातों से मेरे अन्दर नई धारणायें उत्पन्न होने लग गईं। जाते समय भाभी की मुखाकृति मुझे कुछ और सोचने को मना करती पर शनैः शनैः वह मुखाकृति भी लुप्त होती चली गई। अब भाभी का केवल वही रूप मेरे सामने आता जो पड़ोस वाले रखते जा रहे थे। वह रूप इतना घृणित था कि उसकी कल्पना कर मैं मनुष्य से दानव बन गया।

पड़ोस वालों ने मुझे बताया कि भाभी अब एक प्रायवेट स्कूल में अध्यापिका बन कर जीवन यापन कर रही थी और यह आजीविका उसी व्यक्ति ने उसे दी थी जिसके साथ भाभी के बुरे सम्बन्ध चले आ रहे थे। पड़ोस वालों का मत था कि जो बच्चा भाभी के पेट में पल रहा था वह उसी व्यक्ति का था जो स्कूल का संचालन कर रहा था और अब उसका सब प्रकार से अधिष्ठाता बन बैठा था। जीवन, अभी तक मुझे भाभी से इसीलिये घृणा थी कि वह

विधवा होकर भी मेरे साथ पाप कर बैठी थी, पर वह इस प्रकार से एक बाजारू स्त्री बन जायेगी इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। अब उसकी बातें याद कर मेरी देह में आग लग जाती। स्त्री-चरित्र के सम्बन्ध जो किंवदन्तियाँ सुन रखी थीं, उन्हें साक्षात् अनुभव करने लग गया। बातें चलती रहीं और अँधेरे मुँह से मैं उन्हें सुनता रहता। पर तभी मेरे मन में विचार आया कि मेरी तो पास-पड़ोस में प्रतिष्ठा है, किसी का भी मेरे प्रति सन्देह नहीं है कि भाभी के साथ मेरे भी घृणित सम्बन्ध थे। यदि कहीं प्रकट हो गया कि भाभी को बुरे मार्ग पर ले जाने में अग्रणी मैं ही हूँ तो मेरी क्या दशा होगी? मुझे इतना भी पक्का विश्वास हो गया था कि भाभी सारे पाप का दोष मेरे ही सिर पर मढ़ देगी, चाहे उसका पाप कितना ही फैला हुआ क्यों न हो; क्योंकि उसका ढिंढोरा तो वह निर्भीक होकर पहले ही पीट चुकी थी। मेरे साथ उसके सम्बन्ध भी इतने कटु हो चुके थे कि वह इसी प्रकार मुझसे सामाजिक प्रतिशोध भी ले सकती थी। अब घृणा बैर में बदल गई। नित्य मन में एक खलबली मची रहती कि न जाने मुझसे पृथक् होकर भाभी प्रतिशोध की क्या-क्या तैयारियाँ कर रही थी। उसका जीना मेरे लिये असह्य हो उठा। सोचता था कि कब उसका आक्रमण हो जाय और वह भी न जाने कितना वेग लिये? वह एक काली नागिन प्रतीत होती थी, कभी भी आकर मुझे डस जाये, पर क्यों न उसके डसने से पूर्व ही मैं उसका फन कुचल कर रख दूँ ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।

एक रात मैं अचानक पड़ोसियों द्वारा बताये हुए पते पर भाभी के मकान पर पहुँच गया। भाभी ने मुझे देखा तो अचम्भित रह गई। वह कुछ क्षण तो मुझे देखती ही रही पर फिर एक कमरे में ले जाकर उसने मुझे बिठा दिया और स्वयं भी बैठ गई। उसके शान्त मुख पर कुछ-कुछ विषाद और कुछ आत्मीयता उभर उठी थी पर शायद वह यह निश्चित नहीं कर पा रही थी कि किन शब्दों के साथ वह मुझसे बात शुरू करे। बातों का सिलसिला आरम्भ करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि मैं तो एक विशेष प्रयोजन से उसके पास गया था और केवल उसी प्रयोजन के चिन्तन में लीन था। आखिर जब कुछ समय तक दोनों मौन बैठे रहे तो भाभी मुझसे यह कह कर कि मैं बैठा रहूँ,

चौके में चली गई। मेरा चिन्तन तत्काल समाप्त हो गया और मैं पागल की भाँति बग़ल में छुपाये हुए छुरे को बाहर निकाल कर उसके पीछे दौड़ पड़ा। उसकी पीठ पर वार करने को मैंने हाथ उठाया ही था कि पीछे से किसी ने मेरे हाथ पकड़ लिये। मैं किसी की मज़बूत बाँहों में जकड़ा जा चुका था और छुरा फर्श पर जा पड़ा था।

भाभी ने पलट कर देखा तो हाय राम कह कर आँखे फाड़ दीं। वह आदमी जिसने मुझे जकड़ रखा था, भाभी से बोला, "यह तुम्हारी हत्या करना चाहता था। कोई सितारा तेज निकला कि ठीक समय पर मैं पहुँच गया।" भाभी ने सुना तो काँप उठी। एक लम्बी चीख मार कर वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी।

उस आदमी ने मुझे पकड़कर एक खम्बे से बाँध दिया और फिर जल्दी से पुलिस बुलाने चला गया। अभी दस मिनट भी नहीं हुए होंगे कि एक थानेदार को लिये वह आदमी फिर कमरे में प्रविष्ट हुआ। थानेदार ने आते ही मेरे हाथों में हथकड़ी चढ़ा दीं और मुझे बन्दी बनाकर थाने ले गया।

जीवन! तीन-चार दिन तक मैं एक अँधेरी कोठरी में सड़ता रहा। हत्या के आरोप में बन्दी बना था, अतः स्वाभाविक रूप से मेरी कल्पना सब मोड़ों को पार करते हुए फाँसी के तख़्ते तक पहुँच जाती थी। मैं सोचता था कि मैं अदालत के कठघरे में खड़ा किया जाऊँगा, बयान लिये जायेंगे और वे सभी बातें, जो आंशिक रूप में गुप्त थीं अथवा जो प्रकट होकर भी अभी विशेष प्रचारित नहीं थीं, सब शायद समाचार पत्रों तक में प्रकाशित हो जायेंगी। जिस भेद को छुपाने के प्रयत्न में भाभी की हत्या करने गया था, वह सारी दुनिया के सामने मूर्तिमान प्रकट हो जायेगा और इस प्रकार मेरा उद्देश्य, जिसे लेकर मैं हत्यारा बना था, मिट्टी में मिल जायेगा। पश्चात्ताप के आँसू टप-टप कर मेरी आँखों से गिरने लग जाते। ख़ानदान की प्रतिष्ठा की रक्षा में जिस लोक-लाज को रखने के लिये मैं इतना हिंसक बन गया, उसे फाँसी के तख़्ते पर चढ़ कर भी मैं न बचा पाया, उल्टे जीवन का ही अन्त कर बैठा—ऐसा दुःखान्त कि पितरों को पानी देने के लिये भी कोई न बच पायेगा।

इन्हीं विचारों में उलझा हुआ मैं उस कोठरी की काली दीवारों पर दृष्टि

दौड़ाता हुआ अपने अन्त की प्रतीक्षा करता रहता। पर जीवन, मैं फाँसी के तख्ते पर नहीं चढ़ा। चौथे-पाँचवें दिन ही मैं छोड़ दिया गया। मैं कुछ न समझा कि आखिर क़ानून के कठोर पंजे से मैं कैसे मुक्त हो गया। लेकिन जब थानेदार के कमरे में आया तो सब मामला साफ़ समझ में आ गया। थानेदार के कमरे में वही आदमी, जिसने भाभी की रक्षा की थी, वह और भाभी उपस्थित थे। सम्भवतः उन्हीं के अनुनय-विनय अथवा अज्ञात विचार परिवर्तन पर हत्या का मामला दर्ज नहीं किया गया था। थानेदार सम्भवतः उस मास्टर का मित्र था, जिसने मुझे पकड़ा था और वह मास्टर भाभी के अनुरोध को शायद टाल न सका हो।

भाभी ने मुझे देखा तो मुँह छिपाकर रोने लगी। मैं ग्लानि और पश्चात्ताप से इतना लाचार हो गया था कि अधिक देर तक वहाँ पर खड़ा न रह सका। बस जीवन! वही भाभी के साथ मेरी अन्तिम मुलाकात थी, यदि ऐसा कहने में मुलाकात शब्द का अपमान नहीं होता। उसके बाद साल भर तक मैं इधर-उधर लुकता-छिपता रहा। कभी इतनी हिम्मत न कर सका कि भाभी को देख आऊँ। आखिर जब एक दिन साहस कर उसी मकान पर पहुँचा तो निराशा ही हाथ लगी। भाभी वह मकान छोड़ चुकी थी। तब से अब तक पूरे चार साल हो गये हैं और तुम देख ही रहे हो कि मेरा जीवन कैसा बीत रहा है। अब मैं कैम्प छोड़ कर विनयनगर के सरकारी मकानों में रहने लग गया हूँ। आज भी जब दीवाली आती है तो उसकी जगमग देखने बाजार में उतर पड़ता हूँ। होली आती है तो दो लोटे रंग के भी डाल लेता हूँ। वही करता हूँ, जो दुनियाँ करती है क्योंकि जो दास्तान मैंने तुम्हें सुनाई है वह एक, केवल एक संदेश मेरे लिये छोड़ गई है और वह यह कि दुनिया एक मदारी का खेल है जब जिस चीज की डुगडुगी पिटे, उसे आह्वान समझ कर उसमें तुरन्त सम्मिलित हो जाओ। यदि दुःख में रोते ही रहे तो उसके लिये भी आँखों में इतना नीर नहीं है कि रोना सार्थक हो जाय और इसी प्रकार यदि सुख में हँसते रहे तो नियति ने मनुष्य को इतना दीवानापन नहीं दिया कि उसकी हँसी नित्य कायम रह सके। हाँ, कुछ क्षण ऐसे अवश्य आते हैं जब आत्मा या हृदय इस सामंजस्य को स्वीकार न कर अपनी तरंगों में मनुष्य को बहा ले जाता

है। उन्हें ही हम आत्म-चिन्तन के क्षण कहते हैं। इन्हीं क्षणों में मनुष्य ने कवि बन कर महाकाव्यों की रचना की, विचारक बनकर युगों के मोड़ बदल डाले, भगवान् को समझने की चेष्टा की और जो कुछ इस पृथ्वी पर है, उसका अध्ययन किया। आज की रात भी वही आत्म-चिंतन की रात है। हम इस समय दुनिया के कोलाहल से बहुत ऊपर उठ कर उसको देख रहे हैं। उसके अंग नहीं हैं। इस समय तुम जो भी चर्चा छेड़ो सब में दार्शनिकता की छाप होगी, पर जब यह आवेश समाप्त हो जायेगा, तब हम दुनिया के उन्हीं मनुष्यों में होंगे जो महफ़िल और मरघट दोनों के चक्कर लगाकर इतना भी नहीं जानते कि जीवन का दोनों स्थानों से क्या सम्बन्ध है ?"

१६

कुलवन्त वापस दिल्ली चला गया था, क्योंकि उसकी छुट्टियाँ समाप्त हो चली थीं। जीवन को लगा कि उसके जाने से नैनीताल का वह मलिका का सा भेष न जाने कहाँ चला गया। कुलवन्त ने उसके अन्दर ऐसी हलचल पैदा कर दी कि उसके आँखों के सामने अब नैनीताल का सौन्दर्य नहीं, अपितु पंजाब और दिल्ली के वही स्थान चलचित्र की तरह आते रहते जहाँ जिन्दगी बनती और बिगड़ती रहती थी। मनुष्य संघर्ष में उलझा हुआ था। अब उसकी छुट्टियाँ भी वैसे समाप्त होने को आ गई थीं और वह स्वयं भी अब अधिक देर

तक रुकना नहीं चाहता था। वर्षा के आगमन से भी अब वह पहिले की-सी चहल-पहल नहीं थी जो ठेठ गर्मियों के दिनों में थी। घण्टों तक लगातार पानी बरसता रहता था। सारा शहर कुहरे के गहन अँधकार में छुपा रहता था। क्या करता वह व्यर्थ में पलंग पर पड़ा-पड़ा? आखिर भाभी और उसके माता-पिता को मना-बझा कर वह भी दिल्ली के लिये प्रस्थान कर गया। आते समय उसकी दृष्टि नैनीताल की सबसे ऊँची चोटी 'चाइना पीक' पर पड़ी थी, जाते समय भी उसकी दृष्टि उस पर पड़ गई। मन ही मन में उसने कहा, "तुम ऊँची हो, इतनी ऊँची कि मनुष्य कभी-कभी ही तुम तक आ सकता है बल्कि साल के कुछ महीनों में तो तुम्हारा मानव से बिल्कुल सम्बन्ध टूट जाता है। इतना भेद भी भला कहाँ निभ सकता है, इसीलिये तो तुम्हारा एकान्त तुम्हें अभिशाप लगता होगा! लोग कहते होंगे कि तुम्हारी चोटियाँ बर्फ़ से सफेद हो जाती हैं पर वह तुम्हारा बुढ़ापा है, जिसका कारण है केवल तुम्हारी एकान्तप्रियता और ऊपर-ऊपर ही रहना। फिर भला जीवन के साथ संघर्ष करने वाले करोड़ों मनुष्यों के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध हो सकता है। तुम्हारा मिलना-जुलना तो उन्हीं इने-गिने व्यक्तियों से होगा जो हवाखोरी के लिये यहाँ आते होंगे। वे कितने होते हैं, केवल दस-पाँच। दुनिया तो नीचे मैदानों में थी जिनकी संख्या लाखों और करोड़ों तक जा पहुँचती थी।"

दिल्ली में आकर जीवन ने सबसे पहले कुलवन्त का पता लगाया। विनय नगर यद्यपि शहर के एक छोर पर था, पर स्वच्छ और शान्त था। दो कमरे, एक बरामदा और रसोई, गुसलखाना अलग था। एक ही नमूने के मीलों तक फैले हुये सरकारी मकानों में एक दुनिया बसी हुई थी। कुलवन्त के आग्रह पर जीवन भी करौल बाग का मकान छोड़कर उसी के पास चला गया। वहाँ के वातावरण में भी उसे एक विशेषता दिखाई दी। सब नौकरी-पेशे वाले लोग थे और प्रायः एक ही वर्ग के थे। उनके स्वार्थ, दिनचर्या और रुचि भी बिल्कुल एक समान थी। सुबह क्वार्टरों से साईकिलों पर सवार होकर दफ़्तर चले जाना और शाम को पाँच और छः बजे के बीच फिर उसी प्रकार साइकिलों पर सवार हुये क्वार्टरों पर आ जाना। घर आकर प्रायः सब मुँह-हाथ धोकर चाय की प्यालियों से अपनी थकान मिटा लेते थे और फिर एक-आध

घण्टे बाद भोजन कर दो-दो, चार-चार की मण्डली बनाकर या तो दफ़्तर की फाइलों की चर्चा आरम्भ कर देते अथवा यदि कुछ उच्च स्तर की बात हुई तो चर्चा का विषय सरकार की नीतियाँ, राजनैतिक दलों की सफलता और रूस और अमेरिका के बीच मनोमालिन्य बन जाता था। सप्ताह के छः दिन ऐसे ही बीतते। रविवार को थोड़ा-बहुत उनकी दिनचर्या में अन्तर आता और उसी दिन को वे उतना महत्त्व देते जितना कि राष्ट्र के जीवन में पन्द्रह अगस्त या छब्बीस जनवरी का है। शनिवार की रात का उन्होंने बड़ा अच्छा नामकरण कर रखा था। उसे वे स्वर्णिम रात कहते थे। वह रात उनकी बेफिक्री की रात होती थी, क्योंकि दूसरे दिन प्रायः सब बाबू आठ बजे से पहले नहीं उठते थे और जब उठते थे तो एक घण्टा पूरा बिछौने पर लेटे हुये चाय पीने, समाचार पत्र पढ़ने में ही व्यतीत करते थे। इसी प्रकार दाढ़ी बनाने में आज के दिन वे तीन बार मुँह पर साबुन लगाते थे। भोजन में भी विशेषता आनी फिर स्वाभाविक ही थी। भोजन के बाद घण्टे दो घण्टे आराम कर वे या तो मित्र सम्बन्धियों से दिये हुए वचन को निभाने मिलने जाते अथवा स्त्री और बच्चों के लिये कपड़े या और कोई सौदा-सामान ले आते या फिर परिवार को लेकर सिनेमा देख आते। यही उनकी दिनचर्या थी और यही परिधि, जिसके अन्दर उनका घूमना-फिरना होता था।

जीवन को आये हुए जब कुछ दिन हो गये तो उसने देखा कि प्रायः सब बाबुओं का रहने-सहने का ढंग और सामान्य स्थिति भी एक जैसी ही थी। यदि कुछ अन्तर था तो नहीं के बराबर। सब उसी अल्प आय में निर्वाह करते थे। उनकी आय को वह अल्प इसलिये समझता था कि जो कपड़े अति, उच्च वर्ग के व्यक्ति प्रायः पहनते थे या जो रुचि उसने धनाढ्य या ऊँची आय वाले व्यक्तियों में देखी थी, इन बाबुओं में उसने उनकी नकल करने की एक बड़ी चाह देखी थी। सवासौ-डेढ़सौ रुपये मासिक वेतन पाने वाले व्यक्ति को भी वह सर्ज और गैबेडीन की सूट में देखता था···प्रत्येक की कलाई पर उम्दा से उम्दा घड़ी, पैरों में फ्लेक्स का जूता और जेब में कैप्स्टन या गोल्ड-फ्लैक का सिगरेट होता। नकल करने में वे बहुधा स्पर्धा की भावना भी रखते थे, क्योंकि यही उनकी सभ्यता का पैमाना होता था। जीवन को

आश्चर्य होता था कि कैसे ये लोग इस तथा-कथित सभ्यता को निभा लेते थे पर उनके बीच में रहने से कोई चीज़ उससे छिपी न रही। घी और मक्खन के स्थान पर स्वच्छ डालडा प्रयोग में आता था। दूध की कमी को भी चाय पूरा कर लेती थी। घर में सेर-सेर से अधिक कभी भी कोई चीज नहीं होती थी और इसीलिये यदि कोई अतिथि आ जाता तो चाय की प्याली से ही उसका सत्कार होता था। आधा सेर दूध एक साथ पी जाने वाला व्यक्ति उनकी दृष्टि में गँवार ही तो था। उनकी प्रत्येक चीज़ हल्की होती थी। इसे चाहे अभाव कहो या कुछ और। विनय नगर के क्वार्टरों से निकल कर जब वे सुन्दर नगर की कोठियों पर ललचाई हुई दृष्टि फेंकते तो उनका मन हीन भावना से क्षुब्ध हो जाता पर फिर भी अपनी टाई की गाँठ को मज़बूत करते हुए वे आगे को निकल जाते, मानो वे अपने आपको अपमानित होते नहीं देखना चाहते। व्यक्तित्व को परखने का भी उनका दृष्टिकोण अलग ही था। वे मिल मालिक और व्यापारियों को एक मीठी हँसी और चुटकियों में उड़ा देते थे मानो उनका कोई व्यक्तित्व ही नहीं था। अध्यापकों और प्रोफेसरों को न तो वे स्पर्धा की दृष्टि से देखते थे और न दया भरी नजरों से। डाक्टर और इंजीनियरों को वे थोड़ा सम्मान देते थे और इसी प्रकार श्रमिकों के प्रति सहानुभूति एवं दया भी उनके हृदय में होती थी। जीवन को जिस बात पर सबसे अधिक हँसी आती थी वह था इन लोगों के नेताओं के प्रति उपेक्षापूर्ण आदर भाव। वे समझते थे कि लोकतन्त्र ने समाज के कुछ ऐसे व्यक्तियों को प्रतिष्ठा और आदर प्रदान किया है जो जीवन के किसी भी क्षेत्र में अपने आप को पूर्ण बनाने में असमर्थ रहते हैं और राजनीति ही केवल जिनके लिये ऐसा खेल रह जाता है कि दाँव-दपट कर वह अपने उन स्वार्थों को उससे पूरा कर लेते हैं, जिनकी पूर्ति उनके लिये पहले एक हसरत ही हुआ करती थी। इन नेताओं के समक्ष आने पर तो वे अति शिष्ट और नम्र बनकर तत्काल उनके संकेतों को अपनी किसी डायरी पर अंकित कर लेते हैं। पर ज्योंही नेता लोगों की उनकी ओर पीठ होती थी, त्योंही एक उपहास भरी मुस्कान उनके होंठों पर आ जाती थी मानो नेताओं को प्राप्त प्रतिष्ठा को वे दिल से स्वीकार करने में अपने को छोटा पाते थे। दिल से यदि वे किसी

का आदर करते थे तो वे थे औफीसरों की श्रेणी। औफीसरों के विवेक, न्याय-क्षमता और कार्य-निष्ठा के प्रति आदरभाव से वे नत-मस्तक रहते थे। फाइलों पर दिये गये औफीसरों के निर्णय की वह घर आकर खूब चर्चा करते। उनके कठोर अथवा सरल स्वभाव पर प्रसन्नता और क्षोभ व्यक्त करते। किसी भी मामले में यदि कभी वे अपने औफिसर की दृष्टि में चढ़ जाते तो वही उनके लिये वरदान होता था अथवा यदि कभी उनको आफीसर से फटकार मिल जाती थी तो दिनों तक उनकी हँसी-खुशी लुप्त हो जाती थी। जीवन सोचता था कि इनके जीवन में जो विविधता का अभाव था---वही तो इनको औफीसरों और फाइलों की दुनिया में बन्द किये रहता था। इनके लिये जीवन की ऊँच-नीच तो कोई माइने ही नहीं रखती थी। इनके लिये तो ऊँचा केवल वही था जो पद में बड़ा था चाहे वह गुणों में, स्वभाव में, विचारों में, रुचि में, एक सामान्य दृष्टिकोण में कितना ही गिरा हुआ क्यों न हो। सम्भव था कि परिस्थितियों से मण्डित कई प्रतिभाशाली व्यक्ति इस घेरे में फँस जाते होंगे और फिर शनैः-शनैः इस वातावरण में उनकी प्रतिष्ठा कुण्ठित होते-होते बिल्कुल ही नष्ट हो जाती होगी। यहाँ तो पहले चमकने की गुंजाइश ही कम दिखाई देती थी पर यदि कोई चमकता भी होगा तो उसकी चमक का निर्णायक तो उसके ऊपर के पद पर आसीन व्यक्ति है जो यह सम्भव नहीं कि उस चमक का सही पारखी हो। आखिर उनकी योग्यता कितनी परतंत्र थी जो यदि दुनिया के सामने आना चाहता है तो औफीसरों के मूड की मुहताज थी। किसान अथवा व्यापारी लगन से काम करे और उस काम की यदि वह विशेष योग्यता रखता हो तो अपनी प्रतिष्ठा के बल पर वह एक चमत्कार दिखा सकता है। झोंपड़ियों के स्थान पर महल खड़ा कर सकता है, और अपने नये अनुभवों से समाज को उन्नत करने में सहायक कर सकता है। पर बाबू विचारा क्या करे। लेकिन जीवन को आश्चर्य था कि इतना परतंत्र और एक रूप होने पर भी बाबुओं की श्रेणी एक कृत्रिम गौरव का अनुभव करती थी, मानो समस्त नवीन उपकरणों और अनुसंधानों के प्रवर्त्तक के रूप में समाज में उन्हीं का स्थान हो। एक व्यापारी के यहाँ पार्ट टाइम नौकरी

कर फिर भी बाबू व्यापारियों की ओर होंठ ही सिकोड़ते थे मानो व्यापारियों का कोई स्तर ही न हो।

कुलवन्त के मकान पर यदा-कदा कुछ बाबू आते रहते थे। जो वाद-विवाद परस्पर उनमें होता था, जीवन उसको सुनता और चुप बैठा रहता। कितनी ही चर्चाएँ चलती थीं पर वह देखता था कि सबका अपना-अपना दृष्टिकोण बनाया हुआ था—बड़ा जटिल और असाध्य, मानो ये लोग दूसरों से कुछ सीखना ही न चाहते हों। उसने बाबुओं के दृष्टिकोण में भी वही जटिलता पाई थी जिसकी बाहुल्यता उसने गाड़ी में सफर करते हुए मुसाफिरों में देखी थी। जनता का उसने एक ही मत देखा था; और वह यह कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सरकार उनके कष्टों को दूर न कर सकी। वे सरकार के पक्ष में कुछ सुनने को तैयार नहीं थे कि सरकार की सफलता उनके सहयोग पर ही निर्भर थी। वे तो केवल यही जानते थे कि अंग्रेजों के स्थान पर अब स्वयं उनके नेताओं को सत्ता प्राप्त थी, जिसका उपयोग वे अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये कर रहे थे। इससे तो वे अनभिज्ञ थे कि सत्ता-प्राप्त नेताओं के निर्माता तो वही थे तथा सत्ता तो मूल रूप से उन्हीं के हाथ में थी। तथा-कथित नेता तो उनके प्रतिनिधि मात्र थे जो सत्ता से उसी प्रकार च्युत किये जा सकते थे जिस प्रकार किसी भी ताँगे का घोड़ा ताँगे से अलग किया जा सकता है। कुछ भी हो, जनता आलोचना तो करती थी पर फिर भी उसका विरोध इतना उग्र नहीं था कि नेताओं के प्रति उनका असन्तोष राष्ट्र निर्माण के कार्यों में बाधक बने। वे क्षुब्ध थे पर फिर भी उनमें उत्साह था। सुखद भविष्य की कल्पना उनको सरकार द्वारा नियोजित योजनाओं को कार्यान्वित करने की दिशा में यथासम्भव सहयोग के लिये प्रेरित करती रहती थी। लेकिन बाबुओं का समुदाय तो अभी तक अपने को बिल्कुल भी जनतंत्र के ढाँचे में ढालने में असमर्थ रहा था। नौकरशाही की बुरी प्रवृत्ति उनमें अभी तक चल ही रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि स्वतंत्र होने पर भी उनके मन अभी गुलाम थे, क्योंकि उनके सोचने और काम करने के तरीकों में अभी बिल्कुल भी परिवर्तन नहीं आया था। जीवन को लगा कि बाबू लोग अपने को राष्ट्र का सेवक न समझ कर अभी तक केवल अपने आप को

औफीसरों के ही गुलाम समझते आ रहे थे। उनके अन्दर अभी वह आत्म-सम्मान जागृत नहीं हुआ था कि वे अपने को भी उतने ही उत्तरदायी और महत्त्वपूर्ण समझने जितने कि वे अपनी परमेश्वरों की बिरादरी औफीसरों के समुदाय को समझते चले आ रहे थे। इसका कारण भी जीवन को स्पष्ट दिखाई दिया। बाबू लोगों के ऊपर नियमों का इतना कठोर और दृढ़ अंकुश था कि यदि वे स्वतंत्र राष्ट्र के निष्ठापूर्ण सेवकों का सा रुख अपना लेते और इस प्रकार औफीसरों से ऊपर राष्ट्र का ध्यान रखते हुए काम करते तो सम्भव था कि वे औफीसरों के क्रोध के भाजन बन जाते। जीवन को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि केन्द्रीय सरकार के सचिवालय और उससे सम्बन्धित कार्यालयों में भी आधे से अधिक बाबू बिल्कुल अस्थाई रूप से सालों से कार्य करते आ रहे थे। नियमों के अनुसार उन्हें नौकरियों से हटाने में न तो किसी पूर्व सूचना की आवश्यकता थी और न ही पर्याप्त दोषों की। उनका भाग्य जब इस प्रकार से तलवार की छाया तले लुड़का हुआ था और वह तलवार उन औफीसरों के ही हाथ में थी फिर कैसे वे उनके आतंक से मुक्त होकर सद्चरित्र और निष्ठावान् सेवक बन सकते थे ? जीवन अन्त में इसी परिणाम पर पहुँचता कि परिस्थितियों की अनुकूलता और अनुकूल वातावरण ही सृजन और विसर्जन निश्चित करते थे। सरकारी नौकरों में, जिनकी अधिकांश संख्या बाबुओं की होती है, घूसखोरी और निष्ठाहीनता प्रमुख रूप से पाई जाती थी। उसका कारण केवल यही था कि सरकारी नौकरियों में अभी न तो परिस्थिति जनतंत्र के अनुकूल ही बन पाई थी और न ही वातावरण इसके अनुकूल बना था कि वे इस तथ्य को समझ पाते कि वे एक राष्ट्र के सेवक हैं।

क्लर्कों की इस छोटी-सी दुनिया में जीवन भी कुलवन्त के साथ मिलकर रहने लग गया। कुछ भी क्यों न हो, यहाँ उसको साथ मिल गया था और विशेषकर कुलवन्त को तो वह इतना समीप पाता कि कुलवन्त से पृथक् होकर रहने की कल्पना ही उसे बुरी लगती। उसका समय अब आनन्द में बीतता था। जागरण के कार्यालय से आकर वह कुलवन्त से जा मिलता था और फिर सुबह के छः बजे तक उनकी खूब घुटती रहती थी। कभी-कभी अवश्य जीवन

कुलवन्त की भाभी का प्रसंग छेड़ देता और उसी के साथ उसकी भी इच्छा हो जाती कि कभी प्रेरणा का हाल-चाल भी मालूम करले, पर दिल की बात दिल में ही रह जाती थी। कुलवन्त को भी उसने प्रेरणा के साथ अपने मधुर सम्बन्धों के विषय में अभी तक कुछ नहीं बताया था, और अब उससे कुछ बताने में भी उसे संकोच हो जाता था, क्योंकि अपने प्रेम को वह एक ऐसा असफल प्रेम समझने लगा था जो केवल चर्चा का विषय बन कर रह गया था। पता नहीं उसकी जड़ें कितनी नीचे को गई हुई थीं—यह स्वयं उसे मालूम नहीं था। एक मधुर भावना यदा-कदा उसके मन में आती और उसे विकल बना कर फिर लोप हो जाती। उसका मन जितना ही इस प्रकार के चिन्तन को व्यर्थ समझ कर टालना चाहता—उसका हृदय उतना ही उस चिन्तन में लीन हो जाने को आतुर हो उठता। प्रेरणा की याद दुःखदायी होते हुए भी मधुर थी और उतनी ही प्रिय जितनी कि जमीन में गड़ी हुई अशर्फियों की थैली एक कृपरण को हो सकती थी। वह किसी भी मूल्य पर उसे अपने मन से अलग नहीं करना चाहता था। लेकिन यह मन की बातें थीं बहुत ही अन्दर की—जिन्हें वह कभी भी अपने होंठों पर नहीं लाता था, न अपने व्यवहार में ही अब प्रकट करता था। उसे डर था कि बाहर आकर कहीं उसका रंग न उड़ जाय अथवा स्वयं वह टीस ही कम न हो जाय जिसे वह स्वयं भी बनाये रखना चाहता था ताकि पुरानी यादों को ताजा कर कभी-कभी उस पर यह शीतल लेप कर सके। अभाव की पूर्ति का एकमात्र वही तो अब उसके पास तरीका रह गया था।

एक दिन सप्रू हाउस में भारत नाट्य एकेडमी द्वारा आयोजित नृत्य समारोह में वह पत्र की ओर से सम्मिलित हुआ तो वह अन्तस् की चिरपोषित टीस फिर झंझावात बन कर बाहर आ गई। अभाव ने जिस पीड़ा को दबा कर मन के एक कोने में बन्द कर रखा था वह आसरा पाकर फफक-फफक कर बाहर निकल पड़ी। पाठशाला में अध्यापक की मार को लाचारी में सहन कर बच्चा माँ के दर्शन पाकर बिलख उठा था। नृत्य इन्द्रप्रस्थ कॉलेज की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा था, जिसमें भाग लेने वाली छात्राओं में प्रेरणा प्रमुख थी। जीवन अनायास ही इस प्रेरणा को देख लेने पर तृप्त भी हुआ

और व्याकुल भी। प्रेस के लिये मंच के दाहिने भाग में स्थान सुरक्षित था। वहीं एक कुर्सी पर बैठा हुआ जीवन अकुला रहा था कि प्रेरणा की उस पर दृष्टि न पड़ जाय। और यह सोचकर वह रोमांचित भी हो उठा। ओह, कितना प्यार था प्रेरणा के लिये उसके हृदय में! इस प्यार को उसने बलात् दबाये ही तो रखा था, वरना क्यों उसकी सारी देह में एक प्रकार का भूकम्प-सा आता। वह उस क्षण की कल्पना करने लग गया जब प्रेरणा की दृष्टि उस पर पड़ेगी। क्या भाव आयेंगे प्रेरणा के मुख पर उसे देख कर—वह इन्हीं कल्पनाओं के ताँतें बाँधता चला जा रहा था कि अकस्मात् नूपुरों की ध्वनि बन्द हो गई। उसका ध्यान टूटा और उसे अपनी कल्पनाओं का उत्तर मिल गया। प्रेरणा नृत्य करते-करते सहसा रुक गई थी और उसे देख रही थी। यह सब केवल कुछ क्षण ही चला। प्रेरणा फिर प्रकृतिस्थ हो नृत्य करने लग गई थी। पर इन कुछ क्षणों में ही जो भाव उसे प्रेरणा के मुख पर दिखाई दिये उनसे उसकी आत्मा झूम उठी।

प्रेरणा के मुख पर उसे वे भाव दिखाई दिये जो खोये हुये धन के अनायास ही मिलने पर एक निर्धन के मुख पर आ जाते हैं, उसकी आँखों में वह ज्योत्स्ना दिखाई दी जो तपस्या में लीन भक्त की आँखों में भगवान् के साक्षात् क्षणिक दर्शन मिलने पर दीप्त हो उठती है। उसने उसकी पलकों में वह लाज और संकोच छुपा हुआ पाया जो कि प्रिय को वरण करते समय परिणीता की झुकी हुई निगाहों में झलक उठता है। समारोह के समाप्त होने पर जीवन कुर्सी से उठा, चारों ओर दृष्टिक्षेप करता हुआ भवन से बाहर आ गया। कुछ देर वह हरी घास पर खड़ा चौकन्ना होकर भवन से बाहर निकलते हुये व्यक्तियों को देखता रहा फिर वहाँ से चलकर सड़क पर आ गया। किसी ताँगे या रिक्से की प्रतीक्षा करने लग गया। तभी उसे धीमा-सा स्वर सुनाई दिया, "ठहरिये!"

जीवन ने पलट कर देखा। प्रेरणा ही हो सकती थी। उसकी नजरें उठीं और नीचे को झुक गईं। सारे अंगों को मानो लकवा मार गया था। स्थिर हो उसने फिर सिर उठाकर प्रेरणा को देखा। वह अपनी उँगलियों से खेलती हुई नीचे भूमि पर आँखें गड़ाये हुए थी और अपनी सैण्डल से भूमि की मिट्टी को

कुरेदती चली जा रही थी। प्रेरणा वैसे ही थी जैसा उसने अनुमानतः छः महीने पहले देखा था, पर पहले निर्भीक और चंचल थी और अब भावुक और गम्भीर। वह भी मौन था और उधर प्रेरणा भी मौन। सम्भवतः उस स्थिति में मौन रहना ही उन्हें प्यारा लग रहा था अथवा मौन ही एक-दूसरे के भावों को ठीक ढंग से व्यक्त करने का सही माध्यम था। किसी को भी नहीं सूझ रहा था कि कैसे बातें शुरू करें।

आखिर जीवन ने ही प्रारम्भ किया, "नृत्य का आयोजन 'भारत नाट्य ऐकेडमी' ने किया था ?"

"हाँ।"

"पिताजी भी आये हुये हैं क्या ?"

"नहीं।"

फिर दोनों मौन हो चले। जीवन को कुलवन्त की सुनाई हुई प्रेम की अवस्था और रूप वाली बात याद आ गई। वह सोच रहा था कि कुलवन्त की 'थीसिज' भी तो अधूरी थी। वरना जो मौन उसके और प्रेरणा के मध्य इस समय व्याप्त था—उसका भी तो वह उल्लेख करता। यह प्रेम का कौन-सा रूप था कि हृदय में सागर हिलोरें ले रहा था पर वाणी मूक थी। परोक्ष में सरिता बह रही थी पर प्रत्यक्ष में सूखा ही सूखा दिखाई देता था।

तभी प्रेरणा ने आँख उठाई। जीवन उसके संकेत को समझ गया। दोनों धीमे-धीमे पग बढ़ाते हुये पोर्च पर आ गये, जहाँ प्रेरणा की कार खड़ी थी। प्रेरणा ने फिर जीवन की ओर देखा मानो कार में बैठने का अनुरोध कर रही थी। जीवन बोला, "तुम तो अब घर ही जाओगी ?"

"आपको छोड़ते हुये चाचा जी के यहाँ चली जाऊँगी।"

"मैं तो अब विनय नगर आ गया।"

प्रेरणा की आँखें फिर जीवन की आँखों से टकराईं और नीचे को झुक गईं।

रुक कर बोली, "वहीं आपको छोड़ आती हूँ।"

जीवन पहली सीट पर बैठ गया।

"विनय नगर मकान कब लिया ?"

"लिया नहीं—एक मित्र है उसी के साथ रहता हूँ।"

"कब से ?"

"बस, बिलकुल हाल ही में नैनीताल से आया हूँ—तभी से।"

"आप नैनीताल गये थे क्या ?"

"हाँ, तकरीबन तीन महीने रहा हूँ। अब के गर्मियाँ वहीं काटी हैं। भाभी का पीहर है, वहीं रहा।"

फिर कुछ क्षण दोनों मौन रहे।

जीवन बोला, "यह गाड़ी तो नई है न ?"

"हाँ, अभी एक-डेढ़ महीना हुआ है ख़रीदे हुए।"

"भरपूरिया कहाँ है ?"

"वह पुरानी गाड़ी को चलाता है, जो पिताजी के ही प्रयोग में रहती है..."

प्रेरणा फिर बोली, "आपके मित्र अकेले हैं क्या ?"

"हाँ।"

गाड़ी इण्डिया गेट होती हुई निजामुद्दीन और लोधी रोड पार कर विनय नगर के चौराहे पर पहुँच गई थी। जीवन बोला, "बस मेरा क्वार्टर आ गया है। यहाँ से मैं पैदल ही चला जाऊँगा।"

प्रेरणा ने ब्रेक लगाया और गाड़ी से बाहर आ गई। जीवन भी गाड़ी से उतर गया। वह शायद सोच रहा था कि प्रेरणा गाड़ी वापस मोड़ लेगी पर वह सहमी हुई नीची नज़र किये खड़ी थी। वह कुछ देर सोचता रहा। उसकी इच्छा हुई कि उसे क्वार्टर पर चलने को कहे पर फिर उसे संकोच हो गया। प्रेरणा ने नज़र उठाकर देखा तो वह पिघल कर पानी-पानी हो गया। प्रेरणा उसे अन्दर से रोती हुई दिखाई दी। कितनी बड़ी लाचारी थी कि रोने में भी आज संकोच हो रहा था, मानो हवाओं का रुख़ ही बदल गया था।

वह खोया-खोया कभी प्रेरणा को देखता और कभी सामने इधर-उधर। कई मिनट व्यतीत हो गये पर दोनों से न तो बोलते बना और न विदा लेते।

आखिर कलाई की घड़ी को देखते हुये प्रेरणा बोली, "अब चलूँ, देर हो रही है।"

जीवन चौंक-सा गया। टूटे शब्दों में बोला, "क्वार्टर नहीं देखोगी क्या ?"

प्रेरणा फीकी हँसी में बोली, "आपके ही कहने पर मैंने गाड़ी रोकी है।"

जीवन लज्जित हो गया। बात सच थी। लज्जा मिटाते हुये बोला, "यहाँ से थोड़ी ही दूर तो है। क्वार्टरों में गाड़ी ले जाना मैंने ठीक न समझा।"

प्रेरणा ने फिर मर्मभरी दृष्टि से जीवन को देखा और गर्दन नीची कर ली।

जीवन को और झेंप महसूस हुई और बोला, "उसमें कोई बात नहीं। गाड़ी सड़क पर भी कैसे खड़ी रह सकती है। क्वार्टर पर ही ले चलिये।"

प्रेरणा कार में बैठ गई और फिर जीवन भी। ८५ नम्बर के मकान पर, जीवन के कहने पर प्रेरणा उतर पड़ी।

जीवन ने आगे बढ़कर ताला खोला और कुर्सी की ओर संकेत कर प्रेरणा को बिठा दिया। एक और कुर्सी लेकर वह प्रेरणा के सामने बैठ गया।

जीवन बोला, "स्टोव है, मैं जल्दी से चाय बना लेता हूँ।"

प्रेरणा ने गर्दन हिलाकर मना कर दिया और सरसरी तौर पर कमरे को देखने लग गई। केवल तीन-चार सन्दूक, दो चारपाइयाँ, एक मेज और दो कुर्सियाँ ही उसे कमरे में दिखाई दीं। वह बोली, "दूसरा कमरा कहाँ है ?"

जीवन झेंपता हुआ उसे दूसरे कमरे में भी ले आया जहाँ नंगे फर्श पर लिहाफ और गद्दे पड़े हुए थे। कोने में एक बाल्टी, दो-चार भद्दे प्याले और झाड़ू तथा बर्तन रखे हुए थे। प्रेरणा पैनी दृष्टि से कमरे का निरीक्षण कर रही थी। और जीवन झेंपता हुआ कभी प्रेरणा के मुख की ओर देखता और कभी कमरे को, मानो यह जानने का प्रयत्न कर रहा था कि कमरे की दुर्व्यवस्था से प्रेरणा पर क्या प्रतिक्रिया हो रही थी ?

"बस, इतनी ही जगह है ?"

"हाँ ! सामने रसोई और है जिसका आजकल प्रयोग नहीं होता।"

"भोजन होटल में करते हो ?"

"हाँ।"

फिर दोनों कुर्सी पर आकर बैठ गये। जीवन ने सकुचाते हुए दुबारा चाय के लिये अनुरोध किया पर प्रेरणा फिर मना कर बैठी—बोली, "आपने चाय नहीं पी होगी, अपने लियेबना लीजिए।" जीवन चुप रहा। कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। प्रेरणा ताड़ गई कि जीवन झेंप अनुभव कर रहा था और शायद उसके चाय न पीने पर उसे निराशा भी हुई थी। पर फिर भी वह चुप रही। जब वह चलने को उठी तो हटात् चौंककर रह गई। दरवाजे पर से वनिता के साथ एक सिख युवक कमरे में प्रवेश कर रहा था। वनिता भी प्रेरणा को देखकर ठिठक कर द्वार पर ही खड़ी हो गई।

जीवन ने कुलवन्त को उस स्त्री के साथ देखा तो आश्चर्य में ठगा-सा रह गया और इसी प्रकार जीवन के साथ एकान्त में इतनी रूपवती और सुन्दर तरुणी को देखकर कुलवन्त भी अचंभित हो गया।

चारों की आँखों में आश्चर्य था और कमरे में सन्नाटा। प्रेरणा की आँखों में अब आश्चर्य के स्थान पर आग थी। तप्त अंगार की तरह उसने वनिता को देखा और घृणा में होंठ सिकोड़ते हुए बिजली की तरह कमरे से बाहर हो गई। जीवन पागल की तरह खड़ा देखता रहा। उसे कुछ समझ न आई कि क्यों प्रेरणा कुलवन्त के साथ आई हुई स्त्री को देखकर इतनी क्रोधित हो चली थी। वह तुरन्त ही उसके पीछे दौड़ पड़ा। गाड़ी स्टार्ट हो चली थी कि जीवन सामने जाकर खड़ा हो गया।

प्रेरणा गुस्से में बोली, "सामने से हट जाइये जीवन बाबू!"

जीवन गम्भीर होकर बोला, "हट जाऊंगा पर पहले ये बताओ कि तुम जो इस तरह से जा रही हो, उसका कारण?"

प्रेरणा गुर्राई। "कारण मैं नहीं जानती। सामने से हट जाइये वरना गाड़ी स्टार्ट कर दूँगी।"

"गाड़ी मेरे ऊपर से जा सकती है।"

प्रेरणा लम्बी साँस लेकर बोली, "यदि आप नहीं हटना चाहते तो मैं गाड़ी यहीं छोड़ कर पैदल ही चल पड़ूँगी।"

जीवन प्रेरणा की हठ से परिचित था। वह डर कर एक ओर हो

गया। कुछ कहना ही चाहता था कि गाड़ी सर्रर कर आगे निकल गई। जीवन हाथ मलते रह गया। जब वह कमरे में आया तो कुलवन्त भी घबराया हुआ था। आतंकित स्वर में उसने पूछा, "कौन थी जीवन ये ?"

वनिता, जो क्षोभ में चुप हुई एक कोने में खड़ी थी, कुलवन्त को इस प्रकार जीवन के नाम लेकर सम्बोधित करने पर चौंक पड़ी। जीवन की ओर से उत्तर देती हुई बोली, "उनका नाम प्रेरणा है। जीवन बाबू से प्रेम करती हैं।" फिर जीवन की ओर मुड़ कर बोली, "और मेरा नाम वनिता है।"

"वनिता ?" जीवन आश्चर्य में बुदबुदाया मानो उस पर पहाड़ टूट पड़ा था।

"हाँ जीवन ! मेरी भाभी" कुलवन्त ने वनिता का पूरा परिचय दिया।

"बिल्कुल भी आशा नहीं थी कि इनको पा सकूँगा, पर जहाँ विश्वास होता है वहाँ सफलता मिल ही जाती है। तुम्हें सब बताऊँगा कि कैसे आज फिर मैं इन्हें पा सका। लेकिन प्रेरणा देवी के इस तरह जाने का कारण मैं नहीं समझा। वनिता की ओर मुड़कर फिर कुलवन्त बोला, "मालूम पड़ता है तुम जीवन और प्रेरणा को काफी समीप से जानती हो। पर वह इस तरह रूठ कर क्यों चली गई ?"

वनिता ने कुलवन्त को कोई उत्तर नहीं दिया। एक ठण्डी साँस लेकर वह जीवन को देखने लग गई। सोच रही थी क्या उत्तर दे ? अभी कुलवन्त को पता ही कितना था कि उससे पृथक् होने के पश्चात् वह किन-किन झंझावातों में से गुजरी है और उसका जीवन क्या से क्या हो गया है। वह जीवन को कैसे जानती थी—इसका उत्तर देने के लिये तो उसे काफी समय चाहिये था। वनिता को चुप देख कर कुलवन्त कुछ सहम गया। जीवन भी सिर पर हाथ रखे, आँखे मूँद कर गम्भीर हो किसी चिन्तन में लीन-सा था। वह समझ गया कि दोनों की इस चुप्पी के पीछे अवश्य कुछ रहस्य था और वह रहस्य कुछ ऐसा था कि उससे जीवन और वनिता दोनों दुःखी थे, अन्यथा वह एक दूसरे से परिचित होते हुए भी इस तरह चुप न रहते—बल्कि यूँ कहो कि एक-दूसरे को पहचान कर भी वे इस प्रकार न चौंक उठते। इतना ही नहीं, जीवन से प्रेम करने वाली लड़की भी तो वनिता को देखकर तिलमिला उठी थी।

शायद वनिता और प्रेरणा के बीच कोई वैमनस्य हो। पर किस बात पर? कुलवन्त के आगे एक बड़ा जटिल प्रश्न उपस्थित हो गया। वह किससे अपनी शंका प्रकट करे, वनिता से अथवा जीवन से? वनिता तो बताने में संकोच कर गई। उससे दुबारा पूछना उचित न था। अवश्य कोई गूढ़ बात होगी तभी तो पूछने पर वह लाचार दिखाई दे रही थी। जीवन से ही वह इस सारे रहस्य का पता लगायेगा पर क्या उस रहस्य के उद्घाटन करवाने में उसका इतना अधीर होना ठीक था? सम्भव है जीवन वनिता के समक्ष कुछ बताने में संकोच कर जाय, जैसे कि बनिता को हो गया था। कुलवन्त ने उड़ते-उड़ते जीवन और वनिता के मुख को देखा और फिर उन बातों से सबका ध्यान हटाने के उद्देश्य से किसी प्रसंग की खोज में जूझ गया। जीवन को झक-झोरते हुए बोला, "क्या सोच रहे हो जीवन? तुम तो सिर पकड़कर ऐसे बैठ गये मानो कोई पहाड़ टूट गया। बस, इतनी क्षमता रखते हो? देखो तो तुम्हारे ही इस प्रकार लुटे-लुटे बैठे रहने से भाभी भी दुखी हो गई हैं। जो कुछ हुआ, उस पर विचार करेंगे।" जीवन ने आँखें खोलीं और मुख पर हाथ मलते हुए बोला, "मुझे इस समय कुछ काम है—शायद लौटने में देर हो जाय या सम्भव है न आ सकूँ। तुम चिन्ता न करना।"

कुलवन्त को ज़ोर का धक्का लगा। कहाँ तो उसे आशा थी कि उसकी बात से जीवन और वनिता की बिखरी हुई विचारशृंखला जुड़ जायेगी और कहाँ अब जीवन ने उसे और छिन्न-भिन्न कर दिया। वह गम्भीर हो बोला, "बात क्या है?"

"कुछ नहीं, ज़रा काम है।" जीवन ने लापरवाही से उत्तर दिया और बोला, "मैं अब जाता हूँ।"

"कुलवन्त क्रोधित हो बोला, "जानते हो, मेरी भाभी आज मुझे सालों बाद मिली है। यह मेरी उल्लास की घड़ी है। तुम्हारे व्यवहार से स्पष्ट है कि मेरे उल्लास से तुम्हें विशेष रुचि नहीं है। मित्रता का तुम यही परिभाषा करते हो न?"

जीवन ने कुलवन्त को देखा और फिर वनिता को। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या उत्तर दे। जिस स्त्री को वह देवी के समान पवित्र समझता

आया था और सोचता था कि यदि वह कहीं मिल जाय तो उसके चरणों की धूल माथे पर लगा कर वह पुण्य अर्जित करेगा—आज एकाएक उसके सामने आ गई थी पर उसकी धूल माथे पर लगाने की अपेक्षा आज वह उसके मुख को देखने में भी घृणा अनुभव कर रहा था। वनिता दो रूपों को लेकर उसके समक्ष थी—एक कुलवन्त की भाभी के रूप में, जिसकी कहानी वह उसके मुख से सुन चुका था और दूसरा एक बाज़ारू औरत के रूप में, जिसने उसे झूठ-मूठ ही अपना प्रेमी होने की संज्ञा दी थी। दोनों रूप परस्पर कितना टकराते थे। एक गंगा की पावन धारा थी तो दूसरी वैतरणी की बहती हुई गन्दगी। कैसे वह फिर कुलवन्त को बताता कि अभी कुछ मोड़ और उसके भाग्य में लिखे थे कि भाभी के जिस चित्र को लेकर वह आज तक उसे पाने को तड़प रहा था, उस पर स्याही पड़ गई थी। और जैसे कि उसे पाकर भी शायद वह हमेशा के लिए सब-कुछ खो जाएगा। जीवन सोच रहा था कि बनिता चाहे गंगा के समान रही हो पर अब वह केवल वैतरणी थी, जिसके छींटे पड़ने पर शुरू में ही उसका आँचल गन्दा हुआ था और आज न मालूम वह कितना गन्दा समझा जायेगा। यही तो प्रेरणा के रूठने का एक मात्र कारण था। लेकिन कुलवन्त तो कुछ भी नहीं जानता था। उसे फिर कैसे ठीक-ठीक समझाये कि उसके साथ अब उसका रहना मुश्किल ही था। वह कुलवन्त का मुख देखता ही रहा। कुलवन्त उत्तर न पाकर फिर बोला, "जो कुछ हो स्पष्ट कह डालो—संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसका हल न हो, पर इस तरह मलिन मुँह बनाकर तुम न केवल मेरे ऊपर अन्याय कर रहे हो, अपितु अपनी परेशानियों को भी हल्का करने में स्वयं गतिरोध उत्पन्न कर रहे हो।"

वनिता, जो चुपचाप बैठी अन्दर ही अन्दर अपने भाग्य को रो रही थी, तनिक सचेत हुई और धीमे स्वर में बोली, "जीवन बाबू! भाग्य बड़ा विचित्र है। आप मुझसे बिल्कुल भय न खायें और जैसे रहते आये हैं, वैसे ही रहें। कुलवन्त से मेरी मुलाक़ात ही हुई है। हिसाब-किताब नहीं हुआ। सम्भव है, कल मैं यहाँ से चली जाऊँ, फिर रहना तो आपको ही होगा। अतः केवल एक रात के लिये आप कुलवन्त का मुँह मार रहे हैं। मेरी बातों पर विश्वास कर जाने का विचार छोड़ दीजियेगा।"

वनिता बोल रही थी कि कुलवन्त ने टोक दिया, "ये क्या कह रही हो भाभी ! हिसाब-किताब किसका ?"

वनिता बोली, "तुम चुप रहो कुलवन्त ! मुझे दो बातें करने दो—केवल दो बातें। तुमसे मैं फिर बाद में निबट लूँगी और जीवन की ओर मुड़कर बोली, "तुमसे मिलने की इच्छा तो मेरी भी थी पर कभी मिल न पाई, क्योंकि न तो तुम्हें पहचानती थी और न तुम्हारा पता ही मालूम था। प्रेरणा देवी से तुम्हारा पता पूछ कर तुम्हारे पास आती, पर फिर स्थिति वैसी न रही। प्रेरणा देवी मेरे पास आई भी थीं। शायद यही पता करने आई हों कि मेरा तुमसे कितना सम्पर्क था पर उनके व्यवहार को देखकर मुझे इतना साहस न हुआ कि मैं उन्हें सब बातें सच-सच बता कर कुछ दिल का भार हल्का कर सकती। कुछ दिन बाद फिर मेरी तुमसे मिलने की उत्कण्ठा इतनी तीव्र भी न रही, क्योंकि मेरा जीवन ही घटनाओं का ऐसा तारतम्य बना हुआ रहा कि किसी एक घटना पर सोचने का कभी मेरे पास अधिक समय न रहा। मेरी गति कुछ सालों से बड़ी तेज़ रही है। न जाने किन-किन मंजिलों को पार करती हुई मैं दौड़ती चली जा रही हूँ। भला तब याद भी कैसे रख सकती हूँ कि कहाँ-कहाँ हो आई और किन-किन से मिली हूँ ? पर आज अकस्मात् कुलवन्त के मिल जाने पर दो बातें कर सकूँगी। भाग्य को मैंने विचित्र इसीलिये कहा है कि थोड़ा-सा विश्राम मिलने पर ही यकायक तुमसे और प्रेरणा देवी से भेंट हो गई है। मैं चाहती हूँ कि तुम सब संकोच को त्याग कर यदि मुझसे कुछ पूछना चाहो तो पूछ लो, वरना पीछे तुम्हें पश्चात्ताप होगा। तुम इस समय तनिक भी यह न सोचो कि मैं कुलवन्त की भाभी हूँ। मैं उसकी भाभी अवश्य थी पर इस रिश्ते से कहीं भी यहाँ अन्तर नहीं आता, क्योंकि उसकी शान और उसके लिहाज़ में तब से अब तक स्वयं बहुत परिवर्तन आ चुका है। कुलवन्त इसको नहीं जानते। यदि तुम थोड़ा उदार बन कर इस चर्चा को आगे खींच सको तो सारा मामला यहीं पर साफ़ हो जायेगा। तुम्हारी शंकाओं का समाधान तो हो ही जाएगा पर कुलवन्त के

साथ जिस हिसाब-किताब का अभी मैंने उल्लेख किया, वह भी साथ ही साथ साफ़ हो जायेगा।" कुलवन्त और जीवन दोनों आश्चर्य में ठिठक गए।

वनिता फिर बोली, "जीवन बाबू ! तो आप मुझसे कुछ नहीं पूछना चाहते ?"

जीवन गम्भीर हो चला—बोला, "ऐसा क्या विषय हो सकता है जिस पर मैं आप से कुछ पूछूँ। भाग्य की विचित्रता तो आप भी स्वीकार कर ही चुकी हैं। मैं भी इसी भाग्य को कोस रहा था। कुलवन्त ने अपना सारा इतिहास मुझे सुनाया है—तब से, जब कि आपका विवाह हुआ था और उस दिन तक जब कि यह आपकी हत्या करने के उद्देश्य से आपके मकान पर पहुँचा था, बल्कि उस दिन तक जब कि यह हवालात से छूटा था। उस सारी कहानी को सुनकर मैं भी आपके और कुलवन्त के दुर्भाग्य पर आँसू बहाता रहता। हमेशा आँखों के सामने एक ही मूर्ति नजर आती—आपकी, जिसके लोचनों से पानी का स्रोत बह रहा होता था और जो मूक होकर केवल इन्हीं आँसुओं के बल पर संसार के अन्दर सही करुणा को बलात् अपनी ओर खींचे चली जाती हो मानो ईश्वर को भी निमंत्रण दे रही हो कि यदि इन आँसुओं पर किसी ने दया न की तो वह अपने प्रकोप से उन निर्दयी व्यक्तियों को संसार से उठा दें। कुलवन्त आज तक उन आँसुओं को याद कर बेचैन रहता आया है कि न मालूम ईश्वर कब उनका प्रतिशोध ले। मैं भी प्रार्थना करता था कि ईश्वर करुणा की उस जीवित प्रतिमा से कभी साक्षात्कार करा दे। तुम्हारे लिये मेरे हृदय में वही स्थान प्राप्त था, जो किसी भी विपद्ग्रस्त बहिन के लिये नेक संस्कारों में पले हुए प्रत्येक युवक को होना चाहिए। अब, जब तुम से साक्षात्कार हुआ, तो स्वाभाविक रूप से एक नहीं हज़ार बातें पूछता। कुलवन्त सच ही कह रहा था कि यह घड़ी तो उल्लास की घड़ी होनी चाहिए थी। मुझे दुःख है कि अपने मित्र की उमंगों के अनुरूप मैं अपनी मानसिक अवस्था न बना पाया।"

जीवन चुप हो गया। कुलवन्त पहले तो वनिता की बातें सुन कर और अब उसी प्रकार जीवन की बातें सुनकर ठगा का ठगा सा रह गया। दोनों लम्बी-लम्बी बातें कर चुके थे, पर इतने ऊपर ही ऊपर कि जिस रहस्य के

उद्‌घाटन होने की उसे आशा हो चली थी वह क्षीण हो गई। वह भाभी का मुख देखने लग गया।

उसकी भाभी बोली, "तुम्हारी उत्सुकता को समझ रही हूँ कुलवन्त! पर जीवन इतने संकोची व शालीन युवक हैं कि अभी तक साफ़-साफ़ बातें करने का जो निश्चय कर चुकी थी, अब उसी स्वर में बोलने से मुझे संकोच हो रहा है। सोचती हूँ कि ऐसे व्यक्ति के सामने यह उद्दण्डता ही होगी।"

फिर जीवन की ओर मुड़कर बोली, "जिन बातों की ओर मेरा संकेत था—उधर से बिल्कुल प्रसंग मोड़कर—मेरे वर्षों पिछले जीवन को चित्रित कर आपने अपनी शालीनता का परिचय दिया है और साथ ही, मैं जिस ढंग से बात करने पर उतर आई थी, उसे मोड़ देकर आपने उस पर शिष्टता का आवरण चढ़ा दिया है, इससे आप विवेकशील भी सिद्ध होते हैं। वैसे आपके शालीन और विवेकशील होने की मुझे पहले भी शंका नहीं थी, क्योंकि प्रेरणा जैसी लड़की के आप प्रणय-पात्र हैं। आज तो केवल मेरे अनुमान की पुष्टि ही हुई है। खैर, कुछ भी क्यों न हो। यह मेरा दुर्भाग्य है कि आप जैसे शालीन व्यक्तियों के साथ मैं केवल अब अशिष्ट बातें करने को ही बची हुई हूँ। मेरी बातें सुनकर आपको मेरे कथन की सचाई का अनुमान हो जायेगा। मैंने जो आपसे प्रश्न किया था वह इसी विचार से किया था कि आप मुझ से वह अँगूठी वाली बात पूछेंगे। उस समय मुझे नहीं मालूम था कि आपको मेरा पिछला इतिहास भी मालूम है। शायद मेरा पिछला जीवन ही इस समय स्पष्ट बातें करने में बाधक हो गया है। पर आप उसका विचार न कीजियेगा, क्योंकि अब वह एक छल बन गया है। मैं विपद्‌ग्रस्त चाहे अभी तक भले ही चली आ रही हूँ, पर अब वैसी करुणा की पात्र न रही। अब मेरी आँखों से स्रोत तो क्या कभी एक बूँद खारे पानी की भी नहीं टपकती। मेरा रूप कुछ तो आप जानते ही हैं, बाकी मैं स्वयं बता देती हूँ। आपने वे चल-चित्र देखे होंगे जिन्हें सरकार एक मोटर में ले जाकर गाँव-गाँव दिखाती है। उन चलचित्रों को देखने के लिये टिकट नहीं होते और न ही कोई विनोद-कर, जैसा कि छविगृहों में दिखाये जा रहे चित्रों के लिये होता है। बस मैं वैसी ही वेश्या हूँ जो बिना लाइसेन्स के एक स्थान पर बैठ कर

सर्वत्र घूमती रहती है। मेरी खोज में वही व्यक्ति रहते हैं जिनकी इज्जत और आबरू इस नई परिपाटी की वेश्यावृत्ति से सुरक्षित रहती है। त्रिशंकु नाम के एक राजा का पुराणों में वर्णन आता है जो न तो पृथ्वी पर रह सका और न जिसे स्वर्ग में स्थान मिला। मेरी भी स्थिति लगभग वैसी ही है। न तो अब मैं कुलवन्त की बीवी ही रही और न कोठे पर डेरा डाली हुई वेश्या ही। बीसवीं सदी में स्त्री समाज को जो त्रिशंकु-वृत्ति प्रदान की है—उसी का साक्षात् नमूना हूँ। अब भला आप ही बताइये कि इतने प्रगतिशील होने पर वह लिहाज और संकोच, जो आप प्रदर्शित कर रहे थे, कहाँ तक मुझे फिट बैठता है। मैं तो बैंक का वह चैक बन गई हूँ जिस पर हस्ताक्षर होते ही रहते हैं और जो चलता ही रहता है।"

जीवन सिर नीचा किये सब सुनता जा रहा था और कुलवन्त एकटक वनिता के मुँह पर दृष्टि डाले कातर हो मन ही मन रो रहा था। वनिता फिर कुलवन्त से बोली, "विधवा बनने से सुहागिन बनने पर तुमने मुझे घर से बाहर निकाल दिया था, बल्कि मेरी हत्या करने पर भी तुल पड़े थे। अब सुहागिन से वेश्या बनने पर बताओ तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया है?"

जीवन ने सुना तो उसकी झुकी हुई नजरें चमक कर पहले वनिता के और फिर कुलवन्त के चेहरे पर टिक गईं। उनमें कौतूहल और जिज्ञासा थी। कुलवन्त उसी तरह भाभी के मुख को देखता जा रहा था। उसके होंठ फिसलते जा रहे थे और कण्ठ में आवाज़ नहीं थी।

वनिता फिर हँसती हुई बोली, "तुम भी उत्तर देने में संकोच कर जीवन बाबू का अनुकरण कर रहे हो। उत्तर दो न, संकोच किस बात का? यही जानने के लिये तो मैं यहाँ आई हूँ और यही तो वह हिसाब-किताब है, जिसकी मैं चर्चा कर रही थी।"

कुलवन्त ने अपने को सँभाला और बोला, "तुम्हारा हिसाब-किताब बहुत बड़ा है भाभी! मेरे अन्दर इतनी सामर्थ्य नहीं है कि इस जन्म में उसे तय कर सकूँ। तुम्हारा जो भी ऋण मेरे सिर पर है उसे अगले जन्म में ही पूरा करूँगा, लेकिन इस शर्त पर कि अगले जीवन में भी तुम मेरी भाभी ही बनो। अब इस चर्चा को यहीं पर छोड़ दो। यदि तुम समय-समय पर अपने

ऋ... का आभास कराती रहोगी तो सम्भव है कि इस जीवन को छोड़कर मैं अगला जीवन ले लूँ ताकि तुम्हारा ऋण पूरा हो।"

कुलवन्त का कण्ठ भर आया और बोला "पृथ्वी गोल है भाभी और मैं पृथ्वी का प्राणी होने के नाते उसकी क्रिया से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। जिस प्रतिक्रिया को तुम जानना चाहती हो वह भी पृथ्वी की क्रिया से मेल खाती है। जिस धुरी पर मैं था उसी पर वापस आ जाऊँगा। मैंने तुम्हें सुहागिन से इस स्थिति पर पहुँचाया, अब फिर तुम्हें अपनाकर तुम्हें सुहाग दूँगा। कह नहीं सकता कि तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होगी? सुहागिन बन कर रहना चाहोगी या फिर तुम भी जिस धुरी पर थीं उसी पर वापस चली जाओगी क्योंकि विधवा से सुहागिन बनने में तुम्हारी भी इच्छा साफ़ थी।"

जीवन ने कुलवन्त का उत्तर सुना तो उसकी आँखों में और चमक आ गई। मुग्ध हो वह कुलवन्त को देखने लगा। कुलवन्त आँखें बन्द कर कुर्सी की पीठ पर लुढ़क गया था। जीवन ने फिर वनिता पर नजर डाली। वनिता की आँखें बन्द और मुख शान्त था। वह ग़ौर से वनिता को देखता ही रहा। दुर्भाग्य की मार से पीड़ित वह कुलवन्त के शब्दों से आश्वस्त हो उठी थी मानो भीषण झंझावात, वर्षा और हिमपात के नीचे सफ़र करती हुई आज कहीं जाकर उसे छाँह मिली थी। कौन-सी स्त्री हो सकती है जो तेज़ धार पर चलते हुए भी मन का ऐसा सन्तुलन बनाये रखे?

वनिता ने आँखें खोलीं तो जीवन को अपनी ही तरफ़ एकटक देखते हुए पाया। बोली, "मैं, इससे पूर्व कि आपकी उत्सुकता शान्त करती, अपनी ही उत्सुकता को ले बैठी। बात भी कुछ ऐसी ही है, क्योंकि जब तक घटनाओं का पूरा क्रम आपके समक्ष न रख सकूँगी, तब तक अँगूठी वाली बात को समझना कठिन-सा रहेगा। कुलवन्त ने यदि मेरा पूरा इतिहास आपको सुनाया है तो उसने उस स्कूल की भी चर्चा की होगी जहाँ इन से पृथक् होने के बाद मैं नियुक्त हुई थी और उस थानेदार की भी जिसने कुलवन्त को बन्दी बनवाया था। बस, मेरे पतन की कहानी वहीं से आरम्भ होती है। उस स्कूल के संचालक का नाम था दीनानाथ कोहली और थानेदार का नाम गुरुदत्त। दोनों शायद

सहपाठी थे और तभी परस्पर उनकी खूब मित्रता थी। कुलवन्त जब बन्दी बना तो इनके जघन्य कार्य से जो थोड़ा-बहुत दुःख मुझे पहले-पहले हुआ वह छूमन्तर हो गया। केवल एक ही चिन्ता से मरी जा रही थी और वह यह कि किसी न किसी तरह मैं इन्हें छुड़ा सकूँ, चाहे इनके स्थान पर मुझे ही क्यों न बन्दी बनना पड़े। पर यह क्या सम्भव था? कोहली के आगे पल्ला पसारा, इसी आशा में कि थानेदार उसका मित्र था, शायद सहायता कर सके। पाँच-सात चक्कर कोहली के मकान के लगाती और फिर उसे साथ ले जाकर दत्त के पास पहुँचती। उनके मुख से कोई भी सहानुभूति प्रगट न हुई पर उनकी लोलुप आँखों में मुझे कुलवन्त की मुक्ति का संकेत मिल गया। मैं काँप उठी। शायद मैं मूच्छित होकर भूमि पर गिर जाती, पर तभी मुझे फाँसी का रस्सा दिखाई दिया और इनकी गर्दन। मूर्च्छा तो कहाँ? उल्टे मुझे पिशाचिनी का-सा बल मिल गया।" वनिता रुकी और कुलवन्त की ओर देखकर रो पड़ी। कुलवन्त ने दोनों हाथों में मुँह छिपा लिया और विलख पड़ा।

वनिता ने फिर बोलना आरम्भ किया, "मेरे रूप और यौवन से टकराकर क़ानून के प्रहरी क़ानून की उपेक्षा कर बैठे और कुलवन्त अगले दिन मुक्त कर दिये गये। जब ये थाने से जाने लगे तो मैं मुँह छिपाकर इनको छुड़ाने की खुशी में और अपने लूटे जाने के रंज में रो रही थी। सतीत्व को माध्यम बना कर मेरा आदान और प्रदान चल पड़ा। जब रोलर चल पड़ता है तो फिर सब संकोच उठ जाते हैं। तब तो पीसने की क्रिया ही एकमात्र रह जाती है। वही मेरे साथ भी हुआ।

"दत्त और कोहली के मित्रों का भी एक बड़ा समुदाय था। कई जाते और कई नये मित्र बनते। इन्हीं नये मित्रों में एक मित्र और सम्मिलित हुआ। उसका नाम था संघर्ष···।"

"संघर्ष···?" जीवन अचकचाया।

"हाँ, क्या जानते हो?"

"ओह भाभी! आगे बोलो सब बताऊँगा।" जीवन की साँस तेज़ हो गई।

"वह भी मेरे सम्पर्क में आया और चलता रहा। बल्कि यूँ कहिये कि

अभी तक है। एक साल से दत्त, कोहली और संघर्ष ने मुझे ऐसे अपने शिकंजे में ले लिया है कि कोठे पर न होते हुये भी मैं कोठे के समान ही परतन्त्र जीवन व्यतीत कर रही हूँ। संघर्ष तो मुझे अपनी रखैल समझता है।"

"भाभी बस करो," कुलवन्त चिल्लाया, "मैं देख लूँगा सब कुछ। कौन है संघर्ष और कौन हैं दत्त और कोहली। केवल रात बाक़ी है, इसे गुज़रने दो।"

जीवन बोला, "फिर भाभी ?"

"तुम भी मुझे भाभी कहने लगे ?"

"तो क्या कहूँ···माँ या बहिन ?"

वनिता ने जीवन को देखा और गद्गद् होकर रो पड़ी। बोली, "आज कौन-सा दिन आ गया कि मैं ऐसे शब्दों को सुन रही हूँ। लगता है कि जैसे अपनों से जा मिली। कहीं ये खुशी उस बत्तिका की तरह तो नहीं जो बुझने से पहले एक बार तेज़ हो चमक उठती है।"

"नहीं भाभी ! शान्त हो जाओ। अब जब तक मैं हूँ तब तक कोई भी तुम्हारा बाल-बाँका नहीं कर सकता और यदि मैं कुरबान हो गया तो मेरे स्थान पर जीवन है।" कुलवन्त बोला।

"हाँ भाभी ! तुम अपनी बात कहती जाओ।" जीवन बोला।

"इसी संघर्ष ने मुझे एक दिन एक अँगूठी लाकर दी और बोला कि इसे मैं उसका प्रणय-चिन्ह समझूँ। मेरी आर्थिक सहायता तो वह पहले भी करता आया था। अतः इस भेंट पर मुझे आश्चर्य तो अवश्य हुआ पर अधिक नहीं, क्योंकि मुझे अधिक दूर जाने की आवश्यकता ही क्या थी ? मैंने स्वीकार कर लिया। संघर्ष ने फिर मुझसे कहा कि यदि कोई इसके विषय में पूछे तो मैं यही बताऊँ कि वह अँगूठी मुझे जीवन से उपहार के तौर पर प्राप्त हुई थी। उसने बताया कि उसे घर में जीवन के नाम से ही पुकारा जाता है। जब एक दिन अँगूठी की पूछ-ताछ करने प्रेरणा के पिता डा० स्वरूप मेरे मकान पर आये तो मैंने डर कर वही उन्हें बता दिया, जो संघर्ष ने मुझे बताया था। मुझे कुछ पता नहीं था कि संघर्ष ने मुझे चुरा कर दी थी।"

"चुराकर दी थी···हूँ," जीवन आश्चर्य से विभ्रान्त होकर बोल उठा।

"हाँ, संघर्ष ने बाद में बताया कि वह अँगूठी उसने तुम्हारे पास से चुराई थी और प्रेरणा की दृष्टि में तुम्हें नीचा दिखाने का यही सर्वोत्तम उपाय था। एक और प्रयोजन भी था और वह यह कि दुनिया की दृष्टि में तुम चोर साबित हो सको, क्योंकि संघर्ष को विश्वास था कि प्रेरणा का तुम पर से विश्वास उठ जाने पर वह कभी भी यह प्रगट नहीं करती कि अँगूठी वह तुम्हें प्रणय-चिह्न के रूप में भेंट कर चुकी थी। सुना है कि हुआ भी यही। संघर्ष की योजना के अनुसार केवल इतना ही अन्तर पड़ा कि प्रेरणा के प्रति उसने जो धारणा बनाई थी वह ग़लत निकली।"

"कैसे ?"

"प्रेरणा ने स्वीकार कर लिया कि वह तुम से प्रेम करती थी और अँगूठी उसने भेंट में तुम्हें दे रखी थी।"

"संघर्ष ने तुम्हें यह सब क्यों बताया ? उसे क्या आवश्यकता पड़ गई थी ?"

"वह ऐसे ही एक और षड्यन्त्र में मेरा सहयोग चाहता था, क्योंकि उसे विश्वास था कि मैं दत्त और कोहली की अपेक्षा उसे ही सम्पूर्ण रूप से प्यार करने लग गई थी। पर मैं जानती थी कि मेरे एक ही छल से किसी का जीवन नष्ट हो गया होगा, क्यों और पाप करूँ ? वेश्या भी तो बाहर से कुछ और अन्दर से कुछ और होती हैं। मैंने उसके इशारों पर नाचने से मना कर दिया। तभी, काफ़ी दिनों बाद एक शाम को प्रेरणा मेरे पास आई कि मैं उसके एलबम में लगे हुये पाँच-सात युवकों के चित्रों में से तुम्हारा चित्र पहचान सकूँ। स्पष्ट है कि वह मेरी परीक्षा लेने आई थी—इस बात की कि मैं तुम्हें पहचानती भी हूँ या नहीं ? यहीं पर मैंने उसके विवेक और व्यक्तित्व का अनुमान लगा लिया। मैं उसकी इस परीक्षा में विफल हो गई क्योंकि मैं क्या बताती ? मैंने तुम्हें देखा तो था ही नहीं, फिर अधिक छल करने की आवश्यकता ही क्या थी। बल्कि प्रेरणा तो मुझे घृणित दृष्टि से देख कर चली गई थी। यदि वह थोड़ा शान्त होकर बात करती तो सम्भव था कि जो बातें मैंने आपको बताईं, वैसा ही उसे भी सब सुना देती। मुझे दुःख है कि प्रेरणा देवी ने मेरे साथ वही बर्ताव किया जो गिरे हुये व्यक्तियों के साथ दुनिया करती

आई है। दुनिया में सहानुभूति नाम की तो कोई चीज ही नहीं रही। ये लोग ऐसा समझते हैं कि मानो हम जान-बूझ कर ही इस नरक की वह्नि में गिरी हों और इस पाप के चिराग़ को अपने पतन से जलाये रखने की हसरत लिये बैठी हों। मैं पूछती हूँ, यह इनका दम्भ ही तो है। वरना यदि ये ऐसा न सोचें तो आज दुनिया में मनुष्यों की इतनी जातियाँ कैसे बनें? वेश्याओं के भी तो माता-पिता होते हैं, ठीक वैसे ही जैसे मेरे थे। सब कोठों में ही तो नहीं पैदा होतीं। पर उनकी संख्या आज इतनी बढ़ गई है कि कोठों में भी उनके लिये स्थान न रहा और वे मेरी तरह इधर-उधर की घास चरकर जीवन यापन कर रही हैं। यह सब मनुष्य के 'अहम्' का ही तो परिणाम है, वरना मुझे बताओ कि चरित्रहीनता किसे कहते हैं? और वह किस में नहीं पाई जाती? जैसे रोग प्रायः सब व्यक्तियों को होता है वैसे ही चरित्रहीनता भी किसी न किसी अंश में प्रायः सभी में होती है। पर रोग और चरित्र के उपचार में भेद बरता जाता है। रोगी को कोई घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। सरकार भी उनके लिये सैनेटोरियम और अस्पताल की व्यवस्था करती आई है पर चरित्रहीन के लिये कहीं स्थान नहीं है, यद्यपि दोनों के पतन का क्रम समान ही होता है। रोगी को पौष्टिक भोजन और उचित औषधि का अभाव रहता है और चरित्रहीन को उचित संरक्षण और अनुकूल परिस्थितियों का। प्रेरणा देवी हों या आप हों—आज तक अनुकूल परिस्थितियों में रहे। पर ईश्वर न करे, यदि उन्हें भी समय की वैसी ही ठोकरें लगतीं, जैसी कि मैंने सहन की हैं, तो फिर क्या वह उस अहम् की रक्षा कर पातीं, जिस अहम् का उन्होंने मुझसे बात करते समय परिचय दिया। वेश्यावृत्ति आदि जितने भी पेशे हैं वह केवल ज़िन्दगी से टक्कर लेने की मनुष्य की अद्भुत क्षमता के परिचायक ही हैं। कायर तो परिस्थितियों से डर कर आत्म-हत्या कर लेते हैं। फिर बताइये, ये ज़िन्दादिल बहिनें क्या घृणा की पात्र हैं? यदि नहीं तो फिर उनको देखकर क्यों होंठ सिकोड़े जाते हैं। इसीलिए कि मनुष्य की कई जातियाँ बन जायें, ताकि एक दूसरी पर प्रभुत्व जमा सकें। आज प्रेरणा देवी बड़ी हैं, कुलीन हैं, मैं छोटी हूँ, गिरी हुई हूँ। उनका बड़प्पन और उनकी कुलीनता यह सहन नहीं कर सकती कि वह मेरे साथ बैठ कर बातें कर लें, मुझे भी मनुष्य-

समाज का एक अंग समझ कर अपने समीप स्थान दें। इसी अहम् ने तो उनके फिर आज आग लगा दी। मुझे देखकर उन्हें कितनी घृणा हुई थी, मानो मैं स्त्री न होकर कोई नाली का कीड़ा थी। यही नहीं, मेरी आज की यहाँ उपस्थिति ही न मालूम अब क्या रंग लाती है। न मालूम मेरे और आपके सम्बन्ध में वह क्या-क्या विचार लेकर यहाँ से गई हैं। पर मैं इन बातों की बिल्कुल भी चिन्ता नहीं करती और इसीलिये मैंने आपका समय नष्ट किया है। यदि मुझे आप लोग फिर दुबारा अपना सकें तो मेरे अन्दर आप लोगों के प्रति लिहाज़ होगा वरना व्यर्थ ही मैं अब आपके बड़प्पन से प्रभावित होने को तैयार नहीं। बड़प्पन की तो इस दुनिया में सीमा ही नहीं।"

जीवन और कुलवन्त ने वनिता की बातें सुनीं तो उनके रोंगटे खड़े हो गये। एक छोटी-सी देह में कितनी बड़ी आत्मा छिपी हुई थी। व्यापक-धीर और अचल, मानों कसौटी पर उतर कर सोना निखर उठा हो और वह कचरे के आवरण में रह कर भी झिलमिल कर रहा हो। कुलवन्त को लगा कि उसकी भाभी अब साड़ी की पर्तों में बन्द हुई मुई की सी बेल नहीं रह गई थी, अपितु ताँबे के तारों में बन्द चकाचौंध लाने वाली बिजली बन गई थी जो आज सेवाभाव लिये घरों में, बाजारों में सर्वत्र अन्धकार को चीरते हुए प्रकाश फैला रही थी। उसके अन्दर विद्युतशक्ति थी, जिसके छूने पर मौत भी संभव थी।

———

१७

शान्ति का विवाह हुए अब छः माह गुज़र गये थे। बड़ी सतर्कता के साथ वह संघर्ष के साथ अपनी गृहस्थी की गाड़ी को खींचे चली जा रही थी। वह संघर्ष को विवाह से पहले ही खूब जानती थी। उसकी आदत और स्वभाव को पहचानती थी। वह विवाहित जीवन के मर्म से भी परिचित थी। जानती थी कि पति के साथ निभती रहने पर विवाहित जीवन स्वर्ग है और बिगड़ने पर नरक, अतः जब उसने पिता के आश्रय को छोड़ संघर्ष का आश्रय लिया तो उसी समय उसने यह संकल्प कर लिया कि उसके लिये भला वही है जो उसके वैवाहिक जीवन की खुशी को बढ़ा सके और बुरा वही जिससे उसकी इस खुशी की हत्या हो। वह जीवन को अभी भी छोटे जीजा के रूप में याद कर लिया करती। और इसी प्रकार कभी-कभी उसे प्रेरणा की याद आ जाती या अपनी जीजी के पास लखनऊ उसका दिल चला जाता, पर उसके व्यवहार में कभी भी इन बातों का संकेत तक नहीं मिलता था, क्योंकि वह जानती थी कि इन बातों की चर्चा से उसके और संघर्ष के बीच मन-मुटाव ही हो सकता था। संघर्ष ही यदि कभी उनकी चर्चा करता तो वह चुपचाप उसकी हाँ में हाँ मिला कर प्रसंग को बदलने की चेष्टा करती थी। आख़िर क्या रखा था इन बातों में, जिनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही होने की सम्भावना अधिक थी। विवाह के ही दिनों उसने मन में उन तमाम बातों की एक सूची बना ली थी जिन पर उसका पति से मनमुटाव हो सकता था। यह भी उसकी सूची में

अंकित था और आज तक अपना व्यवहार उसने संकल्प के अनुसार ही बनाये रखा था। उसकी सूची में दूसरा स्थान आता था—अपनी रुचि और व्यक्तिगत चाव का। उसको भी उसने पति की रुचि और चाव के अनुसार मोड़ डाला था। सारांश में उसने अपनी ओर से कोई भी कसर न रखी थी कि जिस घर की वह कल्पना किया करती थी, उसके बनाने में उसकी किसी भी कमजोरी के कारण कोई ख़राबी आ जाय। पर घर में उसके अतिरिक्त उसका पति भी तो था। जब तक वह भी थोड़ा-बहुत त्याग न करता, उसकी कल्पना कैसे साकार होती। पर त्याग की बात तो दूर थी। वह जो कुछ बनाती संघर्ष उसे उजाड़ देता था। उसका दाम्पत्य-जीवन बुरी तरह ज़ख्मी हो गया था। संघर्ष नित्य घाव करे चला जा रहा था और वह मरहम पट्टी करने में ही दिन बिता रही थी। किस तरह फिर स्वस्थ जीवन की कल्पना साकार होती? शान्ति तो चाहती थी कि जिस पेड़ पर बेल बनकर वह लिपट चली थी, उसकी छाँह में उसके सास-सुसर भी आश्रय ले पाते। आख़िर पेड़ उन्हीं का तो लगाया हुआ था, बल्कि उसे इस रूप तक पहुँचाने में न मालूम उन्होंने कितनी गागरें पानी की इसको सींचने में, इसकी जड़ों पर डाली थीं पर वह तो बहुत दूर की बात थी। यहाँ तो स्वयं बेल भी फलने और फूलने की बजाय ऐसी सूखती चली जा रही था कि उसकी पेड़ से अलग होने की सम्भावना ही बिलकुल निकट आ गई थी। संघर्ष जो कुछ कमाता वह सब यों ही इधर-उधर ख़र्च कर देता था। यहाँ तक कि गृहस्थ का ख़र्चा चलना भी मुश्किल हो गया था। आरम्भ में जब शान्ति विरोध प्रकट करती तो संघर्ष सुन कर चुप हो जाता था। इधर-उधर की बातें कर उसे शान्त कर अपने मन की कर लेता था पर बाद में उसने सफ़ाई देनी भी छोड़ दी, बल्कि उसके विरोध करने पर वह गुस्से से लाल हो उठता और हठ पर उतर आता। शान्ति व्यथित हो अलग जाकर रोने लगती। एक दिन वह बोली, "देखो! जितने पैसे तुम बाहर ख़र्च करते हो यदि उसके आधे पैसे भी घर लाकर मुझे दे दो तो घर की कितनी रौनक़ बढ़ सकती है! तुम्हें भगवान कभी अक़्ल देगा या नहीं?"

संघर्ष तीखी नज़र कर बोला, "तुम्हें भूखा रखता हूँ न? या शायद तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं। जब देखो बस यही रोना रहता है।"

"क्या खिलाते हो, जरा बताओ तो भला ? अभी तो मैं कहने को नव-नवेली ही थी। क्या-क्या मिष्ठान और व्यंजन खिलाये हैं तुमने और क्या-क्या लाकर पहना दिया ? सन्दूक़ भरे पड़े होंगे न साड़ियों से ?" फिर व्यंग में बोली, "तभी तो शायद पड़ोस वाले जलते हैं कि रोज किस प्रकार बनाव-शृंगार कर के बाहर निकलती हूँ।"

"नहीं तुम नंगी और भूखी हो। बस, यदि तुम्हें ऐसे ही आनन्द आता है तो रोज दस बार कहा करो कि मैं नंगी हूँ, भूखी हूँ। मेरा इससे कुछ नहीं बिगड़ता। पर जब मैं आऊँ ईश्वर के लिये मेरे सामने ये तोते की सी रट बन्द कर दिया करो। तुम्हारा अपना तो दिमाग़ ख़राब है ही, मेरा भी दिमाग़ उल्टा चाट लेती हो।"

शान्ति से न रहा गया—बोली, "मेरी बातें सुन कर तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो जाता है। ये क्यों नहीं कहते कि जिनकी संगत में तुम पड़ गये हो उन्होंने ही तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर दिया है ? आज तक मैं चुप रही पर अब मुझसे अधिक नहीं सहा जाता। यदि तुमने उनकी संगत नहीं छोड़ी तो फिर समझ लो कि मैं ही इस घर को छोड़ कर चली जाऊँगी। यह गृहस्थ है, कोई धर्मशाला नहीं।"

संघर्ष ग़ुस्से में बोला, "क्या मतलब तुम्हारा इन बातों से ? घर छोड़ना है तो चली जाओ, पर व्यर्थ की धमकी क्यों देती हो ?"

"ये धमकियाँ हैं ?"

"धमकियाँ नहीं तो फिर और क्या है ?"

"और ये जो तुम घर पर आकर शराब पीते हो ?"

"सब कुछ चलेगा, घर मेरा है। जो मर्जी आयेगी करूँगा। मेरे दोस्त भी आते रहेंगे और शराब भी चलेगी। बोलो और कुछ ?"

और वास्तव में संघर्ष को जो संकोच पहले होता था, वह भी अब चला गया। उसके मित्र, जिनमें प्रमुख रूप से दत्त, श्याम, कोहली और रमन आदि थे, अब उसके घर आकर स्वतन्त्रता के साथ शराब पीते और रात भर धींगा-मस्ती करते रहते थे। शान्ति दूसरे कमरे में बैठी ये सब करतब देखती रहती और अपने भाग्य पर आँसू बहाती रहती। बीच-बीच में उसे संघर्ष की गर्जना

जैसी पुकार सुनाई देती और वह भयभीत हो उसके कहे अनुसार काम कर आती। इस नशे-पानी के दौर में उसने लक्ष्य किया कि जब वह उनके कमरे में जाती तो उसके दोस्तों की भद्दी नजरें उस पर जा टिकतीं और फिर जब वह अपने कमरे में आ जाती तो भौंड़ी और अशिष्ट मज़ाक उसके कानों में सुनाई देती—

"भाबी तो चुनकर लाये हो संघर्ष !" एक आवाज़ आती।

"अनार का दाना है पूरा—तभी तो छुपाये हुए रखता है।" दूसरी आवाज़ आती। "क्यों प्यारे ! यही बात है ?" संघर्ष से पूछा जाता और फिर संघर्ष का उत्तर शान्ति के कानों में पड़ता। "अनार होगा यार पर किस काम का। हम तो शादी करके धोखा खा गये और इसीलिये तुम्हारे ताने सुनने पड़ रहे हैं। कई बार समझा चुका हूँ कि तुम लोगों से क्या परहेज, पर ऐसे गड़ दिमाग़ की है कि कुछ असर ही नहीं होता। ऐसे कतराती है कि जैसे तुम लोग उसे खा जाओगे।"

"नहीं भई संघर्ष होता है कभी ऐसा। बेचारी वैसे ही वातावरण में रही होगी। उसे क्या पता कि सोसाइटी में कैसे मिक्स हुआ जाता है। तुम्हें ज़रा ठण्डे दिमाग़ से काम लेना चाहिये। हिन्दुस्तानी औरतें तो बिल्कुल बकरी सी होती हैं, जो रस्सी के बल पर चलती हैं। उसके साथ झगड़ा करने की अपेक्षा उसके गले में रस्सी डालो। देखो फिर, महीने दो महीने में ही वह क्या से क्या नहीं बनती।"

"अरे नहीं यार ! सब करके देख लिया। वह तो स्वयं मुझसे घृणा करती है। फिर भला रस्सी पहनाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। जब देखो सींग पैने किये खड़ी रहती है।"

"तो फिर सींग ही क्यों नहीं तोड़ देते।"

"चुप रहो रमन ! व्यर्थ में ग़ुस्सा नहीं दिलाया करते। किसी समय मज़ाक सचमुच ही सच बन जाती है। कौन से सींग और कैसी बकरी ? मैं तो इन बातों पर विश्वास नहीं करता। अरे भाई, आखिर वह बेचारी यदि तुम्हारे साथ सहयोग नहीं कर सकती तो कम से कम दख़ल तो नहीं देती। ये तर पराँठे आख़िर उसकी बदौलत ही तो खाने को मिल रहे हैं। उसके आने से यह

भी नहीं हुआ कि कभी संघर्ष हम से पृथक् हो सका हो, फिर क्यों व्यर्थ का दोषारोपण ?"

"पर दत्त ! यह बात नहीं। उसकी इच्छा पर यदि मैं चलने लग जाता तो आज नहीं उसी दिन से, जिस दिन यह इस घर में आई, तुम लोगों से मेरा मिलना-जुलना बन्द हो जाता। इसीलिये तो कह रहा हूँ कि रोज की झिक-झिक मुझे पसन्द नहीं।"

"कुछ भी हो यार निभाते चलो।" दत्त ने कहा।

इसी तरह की बातें चलती रहतीं, जब तक कि वे नशे में धुत न हो जाते और यह सब सुनते-सुनते शान्ति पागल हो उठती।

वह सारी रात रोती रहती और अपने भाग्य को कोसती। कैसे उससे मुक्ति मिलती ? वह अपनी सास को भी लिख चुकी थी कि उसे वे गाँव में बुला लें, पर इधर से उसे ऐसा उत्तर मिला था कि दुबारा पत्र लिखने की उसे हिम्मत नहीं हुई। पत्र का सारांश यह था कि विवाह के पश्चात् घर की ओर से संघर्ष ऐसा निश्चिन्त हो गया था कि उनके जीने और मरने से मानो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा हो। जो कुछ उन्होंने संघर्ष के लिये किया था उसका संक्षेप में वर्णन कर उन्होंने शिकायत प्रकट की थी कि संघर्ष उन सब बातों को भूल गया था। उन्होंने अन्त में लिखा था कि उनके दिन जैसे भी गुज़रे हैं—आइन्दा भी वैसे नहीं तो किसी-न-किसी हालत में गुज़र ही जायेंगे। पर जैसा संघर्ष उनको भूल बैठा था, उसको ध्यान में रखते हुए अब वे संघर्ष से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। शान्ति के गाँव आने के प्रस्ताव पर व्यंग कसते हुए उन्होंने लिखा था कि यदि उसे गाँव से इतना ही चाव था तो संघर्ष को वे इतना बदला हुआ न पाते और न आज उनकी ये हालत होती।

शान्ति गाँव से आये हुये पत्र को पढ़कर सन्न रह गई थी। वह सोचती कि जिसे वह घर समझती आई थी, क्या वह इतना नंग निकला कि एक बार भी उसके द्वार से गुज़रना उसके भाग्य में न रहा। वह हैरान थी कि उनके बेटे से ब्याही जाकर भी उसके सास-ससुर उसके प्रति इतनी भी ममता प्रकट न कर सके कि वह अपने ससुराल का गाँव देख आती। आखिर कितनी विडम्बना थी यह कि एक छोटी सी बात पर खून खून से अलग हो बैठा था। खून इतना पतला भी हो सकता है, इसका उसे कभी स्वप्न में भी विचार नहीं

आया था। वह अपने चाचा पर एक मात्र भरोसा कर एक दिन उनके पास भी हो आयी। पर बाद में वहाँ जाकर भी उसे पश्चात्ताप ही हुआ। उसे लगा कि यदि वह जाती ही नहीं तो अच्छा होता। चाचा और चाची दोनों बजाय सहानुभूति प्रकट करने के उसे उपदेश देने लगे थे, मानो व्यवहार में कुछ भी उसकी सहायता न कर अब केवल उपदेशों से ही वे उसका दुःख हल्का कर सकने मात्र में समर्थ रह गये हों। उन्होंने उसे सीता की कहानी सुनाई, सावित्री के दुःखों का स्पर्श कराया, और भी न जाने क्या-क्या बातें कीं, पर सब बातों का तत्त्व यही था कि विवाह के पश्चात् लड़की पति के पास रहती हुई ही शोभा देती है और यह कि ज़माने के बुरा होने पर बाप भी बेटे की आर्थिक सहायता करने में असमर्थ हो जाता है।

शान्ति को आश्चर्य होता था कि कितनी विचित्र थी इस दुनिया की रूप-रेखा! जिनको वह समझती थी कि अपने थे और सुख-दुःख में साथ दे सकते थे, वे वास्तव में कितने पराये निकले। वह कुछ न समझ सकी कि जब अपने और परायों में कोई अन्तर ही न था, फिर क्यों यह अपने और पराये की संज्ञा बनी। क्या यही दुनिया का 'व्यवहार-वाद' था? वह माथे पर हाथ रखकर बैठ जाती और धिक्कार देती ऐसे व्यवहार पर जिसकी नींव स्वार्थों पर खड़ी थी, मानो दुनिया सब भुलाकर केवल स्वार्थ में ही अन्धी हो चली थी।

उसकी दुनिया चारों तरफ से अँधेरी हो चली। पति का घर और बाप का घर—यही दो स्थान तो होते हैं लड़की के लिये। दोनों के द्वार उसे बन्द दिखाई दिये। एक मात्र जो सहारा था और जिसे वह अपना सम्बल समझती चली आई थी, वह अपना पति भी उसकी उपेक्षा करता हुआ उससे इतना दूर हो गया था कि उसे लगा कि यदि आज वह रोगशय्या पर पड़ जाए तो उसे कोई पानी पिलाने वाला भी नहीं था। यही सब सोचकर वह बिलख-बिलख कर रोने लगती। भगवान् को गालियाँ देती, जिसने उसे स्त्री-योनि दी थी। प्राचीनकाल ही से स्त्रियों के पराधीनता के राग अलापे जाते रहे हैं। उसे उप-योग की सामग्री मात्र समझा जाता रहा है मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। तुलसीदास जी ने यही कहा कि पुरुष के नियन्त्रण से मुक्त होकर नारी महावृष्टि से भरे हुए खेत के पानी की तरह कुमार्ग पर जाने की वृत्तियों से

परिपूर्ण है, तो कहीं उसकी तुलना ढोल और पशु से की है। पुराने कवि भी कभी पिता को तो कभी पति को या फिर कभी अपने ही जनित पुत्र को उसके अभिभावक के रूप में रखने की चेतावनी देते आये हैं। शान्ति का मन तड़प कर रह जाता और पूछ उठता कि आखिर ऐसे हीन संस्कारों का बीज डालकर उन समाज के निर्माताओं ने अपने कौन से स्वार्थ की पूर्ति कर ली ? कौनसे हित से प्रेरित होकर उन्होंने भारतीय स्त्री को कटी हुई डाल की भाँति निर्जीव और निष्प्राण बना दिया था। क्या नारी-जाति ने मानव समाज की कोई ऐसी क्षति की थी, अथवा प्रकृति से ही वह क्या ऐसी उच्छृंखल होती आई थी कि उसका स्वच्छन्द विकास इन समय के अधिष्ठाताओं को अखर गया और उन्होंने एक स्वर से उसे वैषयिक उपभोग की वस्तु क़रार देकर घर की चारदीवारी के भीतर बन्द रखने का निर्णय दे दिया। पर ऐसी बात तो कोई नहीं थी। विपरीत इसके, प्रकृति ने तो उसके स्तनों में दूध भरा था। उसे माँ बनने की क्षमता दी थी। वह तो जननी और पोषक थी, जो किसी भी काल में इस दर्जे से च्युत नहीं की जा सकती। फिर क्यों उसके प्रति इतना बैर बर्ता गया। बैर नहीं वस्तुतः आधिपत्य था, जो पुरुष अधिक बलशाली होने के ही कारण प्राप्त कर गया। पर अब तो मनुष्य उस काल से, जब बल का साम्राज्य था, गुजर कर उस काल में आ गया था जबकि बुद्धि का साम्राज्य था। फिर क्यों स्त्री उसी तरह पराधीन और पराश्रित चली आ रही थी ? वह बरसात के पानी की तरह उच्छृंखल समझी जाती रही। तब क्यों वह पुरुषों से नहीं कहती कि वे भी पुराणों में उल्लिखित उस चूहे के समान हैं, जो बिल्ली बनकर कुत्ता और फिर क्रमशः शेर बनने की वृत्ति अपना लेता है। लेकिन तभी शान्ति सोचती कि अभी वह समय नहीं आया था। अभी देश में उस जैसी भोली कन्यायें ही प्रायः थीं, जो गुलामी को वरदान, पति को आराध्य और घर की चारदीवारी को ही मन्दिर मानकर चली आ रही थीं। ईंट की चोट खाकर आँसू पी जाने में और उस चोट से निकले हुए रुधिर से अपनी माँग भरने में उन्हें बड़ी आत्मतुष्टि की अनुभूति होती थी। उनकी रग-रग में पति के लिये त्याग भरा हुआ था। वह समय अभी

बहुत दूर था, जब ईंट की चोट खाकर वे अपने हाथ में प्रतिघात के लिये पत्थर ले सकें।

वह चुपचाप सब यातना सहते हुए दिन गुजारने लगी। सागर-तट पर बैठे व्यक्ति की तरह, केवल इसी आशा में रहती कि कभी शायद कोई लहर आ जाये। शायद उसका त्याग कभी तो संघर्ष को पिघला कर उसके पास ले आये। उसने अधिकार के स्वर में बोलना छोड़ दिया, क्योंकि उसके भाग्य में पति का इतना प्रेम नहीं था कि वह पति पर कुछ अधिकार प्राप्त कर सके। वह उसके संकेतों पर काम करने लगी। सेविका की भाँति पति के लिये भोजन बनाती, घर का और काम-धन्धा करती। जब संघर्ष घर में बहार देखना चाहता तो वह मुक्तकण्ठ से हँसती और जब चिन्तित मुद्रा में वह कमरे में टहलता रहता तो वह उसे पलंग पर लेटा कर उसके पाँव दबाती। संघर्ष को अब जब कभी पैसों की आवश्यकता होती—तुरन्त मिल जाते। कहीं भी गतिरोध उत्पन्न नहीं होता। संघर्ष ने इस परिवर्तन को लक्ष्य किया और इसे अपनी विजय समझा।

"शान्ति! अब तुम कुछ दिनों से बहुत बदल गई हो," एक दिन संघर्ष मुस्कराता हुआ बोला, "क्या इस परिवर्तन का कारण बताओगी?"

शान्ति हँसी और बोली, "परिवर्तन काहे का जी। मैं तो जैसी पहिले थी, वैसे ही अब भी हूँ। ये तो तुम्हारी निगाहें ही बदली हुई हो सकती हैं।"

संघर्ष पुलकित हो बोला, "ओहो! हमारी निगाहें बदली हैं? ये क्यों नहीं कहतीं रानी कि अपनी गलतियों की अनुभूति हो चुकी है। तुम स्त्री हो न। अभिमान बना ही रहता है।" फिर गम्भीर हो बोला, "पर शान्ति! सच बताना—गलती तुम्हारी थी या मेरी? मैं क्या बिना कारण भी तुम पर नाराज हुआ? कभी नहीं। मेरा तो नित्य यही प्रयत्न रहा कि किसी बात पर रार न हो। पर तुम थीं कि छोटी-छोटी बातों पर भिन्ना जाती थीं। अब भी तो हमारी गुजर रही है। अब क्यों नहीं कोई झगड़ा पैदा हो जाता? छोटी-छोटी बातों को तूल नहीं दिया करते।"

शान्ति चुप रही।

संघर्ष बोला, "मैं गलत बोल रहा हूँ?"

शान्ति ने मुँह ऊपर उठाया और दबी हुई आवाज़ में बोली, "नहीं, ठीक ही तो कह रहे हो। पर छोटों से जब कोई ग़लती हो जाती है तो क्षमा करना भी बड़ों का कर्तव्य है। तुमने तो मुझे बिल्कुल हृदय से ही उतार दिया है।"

संघर्ष ने शान्ति को बग़ल में लिया और बोला, "नहीं शान्ति! दिल छोटा नहीं करते। ग़ुस्सा नशा-सा होता है, आ ही जाता है। प्रत्येक घर में चलता है ऐसा तो। एक ही भोजन भी तो अपच कर देता है।"

शान्ति तनिक साहस करके बोली, "अच्छा एक बात कहूँ, ग़ुस्सा तो नहीं करोगे? क्योंकि डर भी लगता है तुम से।"

संघर्ष ने आँखों में ही अनुमति दे दी।

शान्ति बोली, "शराब पीना कोई अच्छी बात तो नहीं। इसलिये नहीं कह रही कि मुझे इससे चिढ़ है। मैं तो जिसमें तुम खुश रह सको, सब मानने को तैयार हूँ। इसलिये कह रही हूँ कि इसमें लाभ कुछ नहीं हानि ही है—पैसों की हानि, इज्जत की हानि, भले-बुरे की हानि। तुम इतनी हानि उठाओ और मैं देखती रहूँ, केवल इसीलिये कह रही हूँ।"

संघर्ष कुछ देर चुप रहा और फिर बोला "मैं सब समझता हूँ शान्ति! इतना बच्चा तो नहीं या कोई इतना बड़ा शराबी नही हूँ कि बिना पिये रह न सकू। पर तुम जैसा सोच रही हो वैसी हानि वाली कोई बात नहीं। मेरे अन्दर कोई लत थोड़े ही है या मैं इससे कोई दुःख हल्का थोड़े ही करता हूँ। केवल शिष्टाचार निभाने को कभी-कभी मित्रों के साथ सम्मिलित होना पड़ता है। तुम कहोगी कि ऐसा भी क्या शिष्टाचार है? पर मैं जो कह रहा हूँ, ये सच है। इसीलिये तो कहता था कि यदि तुम थोड़ा-बहुत सोसाइटी देख लेतीं तो मेरे कथन की सच्चाई का अनुमान लगा लेतीं। किसी भी आधुनिक परिवार में चली जाओ, जहाँ दो-चार अन्तरंग मित्र बैठ जायेंगे एक-आधा 'जाम' चढ़ ही जाता है। सरकारी दावतों तक में, तुम सुनती होगी, इस जाम का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः तुम जिस रूप में इसे ले रही हो—वास्तव में मैं वैसे नहीं पीता।"

शान्ति संघर्ष के बोलने के ढंग से उत्साहित होकर बोली, "मैं भी जिस भावना को लेकर बोल रही हूँ उसे भी तुम समझ गये न? बस इतना ही याद रख लिया करो कि मैं कभी आलोचना के उद्देश्य से नहीं, अपितु तुम्हारे हित

को दृष्टि में रखती हुई ही ऐसी बातें करती हूँ। मेरा तुम्हारे मित्रों से कोई बैर थोड़े ही है, पर मित्रता की भी एक सीमा होती है। यदि उस सीमा का कहीं पर अतिक्रमण हो जाता है तो वह मित्रता भी कभी दुःखदायी बन जाती है। मैं यहाँ पर तुम्हारी या तुम्हारे मित्रों की आलोचना नहीं कर रही, केवल एक सिद्धान्त प्रस्तुत कर रही हूँ। हाँ, इतना अनुरोध अवश्य करूँगी कि यदि कोई आपत्ति न हो, तो अपनी मित्रता को भी आप इन सिद्धान्तों की कसौटी पर कस कर देख लें।"

"तुम ठीक कह रही हो शान्ति ! जिस सिद्धान्त की तुम चर्चा कर रही हो, वह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को बिना बताये हो जाता है। तुम शायद सोचती होगी कि तथाकथित उन सिद्धान्तों से मैं अवगत नहीं। पर ऐसी बात नहीं। वास्तव में तुम मुझे समझती ही कितना हो ? बस, यही कारण है सारे झगड़ों का।" संघर्ष और गम्भीर हो धीमे स्वर में बोला, "दूरदर्शी और समीपदर्शी समझती हो न। भले और बुरे का ज्ञान ये दोनों प्रकार के मनुष्य रखते हैं। दोनों तुम्हारे सिद्धान्त से परिचित होते हैं, पर एक की दृष्टि दूर लक्ष्य पर होती है और इसीलिये अन्ततः जिससे लाभ होने की सम्भावना हो, उसे ही वह निभाये जाता है। पर दूसरा इतनी छोटी नजर का होता है कि लक्ष्य तक उसकी दृष्टि नहीं जाती और छोटी-मोटी चीजों में उलझ कर ही वह अन्ततोगत्वा उस लाभ से वंचित हो जाता है। मैं अन्त पर दृष्टि जमाये रखने वाले व्यक्तियों में से हूँ। जानता हूँ कि बीच में कई ऐसी चीजें आयेंगी जिन्हें सम्भवतः मैं स्वीकार न कर सकूँ, पर उन सबको तो मैं साधन मात्र समझता हूँ। साध्य तो वह है, जो इन सबको सहन करने के बाद मुझे मिलेगा। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यवान् वस्तु मनुष्य से बहुत दूर फेंक कर रख दी गई है—प्रत्येक का मार्ग इतना लम्बा और उलझनपूर्ण बना दिया गया है कि वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कोई या तो लँगड़ा हो जाता है या भूल-भुलइयों में खो जाता है या फिर हिम्मत ही खो बैठता है। मैं ये समझता हूँ कि कुछ भी क्यों न हो, जिस व्यक्ति ने वहाँ तक जाने का प्रयत्न ही न किया वह भी यदि ज़िन्दा रहा तो क्या रहा ? पहली सीढ़ी पर ही अच्छा और बुरा देखने वाले वहाँ पहुँचने की तो कल्पना तक नहीं कर सकते। वह एक सीमित परिधि के अन्दर चक्कर लगाते हुए कुएँ के मेंढक की भाँति टर्र-टर्र कर जीवन

व्यतीत करते रहते हैं। लेकिन शान्ति ! हमें मनुष्य-योनि मिली है। यदि अपना क्षेत्र इतना सीमित कर हम जीते रहे तो फिर क्या लाभ हुआ मनुष्य बनने का ! दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है, इसमें वह आश्चर्य छिपे पड़े हैं कि एक बार ही यदि उन्हें देख सको तो जीना सार्थक हो जाता है। मैं उन्हीं खिलाड़ियों में से हूँ जो क्षणिक हानि-लाभ या ऊँच-नीच से प्रभावित हुए बिना क़दम बढ़ाये चले जाते हैं, केवल एक ध्येय लिये कि उस अन्त को प्राप्त कर सकें, जो धैर्य और परिश्रम की चरम सीमा का परिचायक है।"

शान्ति सोचकर बोली, "मेरे पास इतना दिमाग़ कहाँ कि उतनी दूर की सोच सकूँ, पर जैसे तुमने बताया है उसी से अनुमान लगाती हूँ कि पुराणों में तपस्या और वरदान का जो उल्लेख मिलता है, उसी का आप भी शायद उल्लेख कर रहे हैं। स्पष्ट है कि जो चीज़ सत्य हो उसकी मान्यता सर्वत्र और प्रत्येक काल में रहेगी। जिस सत्य का आपने दिग्दर्शन कराया है, उसके प्रति फिर सन्देह होने का प्रश्न ही नहीं उठता। लक्ष्य की महिमा तो सब मानते आये हैं। मतभेद तो केवल उस लक्ष्य तक पहुँचने के माध्यमों पर रहा है। यदि ऐसा न हो तो फिर क्यों प्राचीन की खोज में जाकर लम्बे-चौड़े इतिहासों का निर्माण हुआ ? वह सब मनुष्य के इसी लक्ष्य को प्राप्त करने की आकांक्षा और उस आकांक्षा को क्रियान्वित करने की दिशा में उठाये गये पगों पर एक टिप्पणी ही तो है। टिप्पणियों ने सर्वत्र यही निष्कर्ष हमारे सामने प्रस्तुत किया है कि महान् लक्ष्यों की पूर्ति हमेशा नेक माध्यमों से होती आई है। और जहाँ ये माध्यम और साधन नेक नहीं रहे वहाँ लक्ष्य की पूर्ति या तो कोरी कल्पना रह गई अथवा वह लक्ष्य पूरा होकर भी अपनी महिमा और गौरव खो बठा। आकांक्षा तो सब करते हैं पर आकांक्षा के साथ आत्मबल, निर्दिष्ट मार्ग और नेक साधन होने भी आवश्यक हैं। आपकी बातों में मुझे इन तीन बातों का कहीं संकेत नहीं मिलता। यदि आप समझते हैं कि मदिरा के सहयोग से आप किसी लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे तो मैं समझती हूँ कि यह आपकी भारी भूल है।" शान्ति फिर कृत्रिम मुस्कान के साथ बोली, "आप बुरा मान गये होंगे ? पर मैं कोई विरोध थोड़े ही कर रही हूँ। शायद मेरे ही सोचने में भूल हो।"

संघर्ष बोला, "सोचने में तो तुम्हारी कोई भूल नहीं है, पर तुम एक ही बात पर तूल दे रही हो और वह यह कि न मालूम मैं कितना बड़ा शराबी हूँ। मैंने तुम्हें बता भी दिया कि शराब का स्थान तो केवल शिष्टाचार में है, उसे मैंने कब साधना की संज्ञा दी ?"

शान्ति हँसते हुए बोली, "शिष्टाचार में स्थान देने का मतलब है उसे महत्व देना। क्या तुम्हारा आत्मबल इतना कमज़ोर है कि बिना उसके तुम्हारा शिष्टाचार पूरा नहीं हो सकता ? यह तो भारी कमी है, विशेषतया उसके लिये जिसका लक्ष्य महान् हो।"

शान्ति फिर धीमे स्वर में बोली, "तुम अपनी प्रतिमा के स्थान बनाओ। इन उपकरणों के धोखे में क्यों जाते हो ? इससे तो तुम दूसरों को छलोगे और सम्भव है, स्वयं भी छले जाओगे। मेरा मतलब समझे हो या नहीं ? आज तुम इसे शिष्टाचार का अङ्ग समझ रहे हो केवल उस दूर-दृष्टि को लेकर कि तुम्हें इसे अपना कर एक स्थान बनाना है, पर कल हो सकता है कि यह सीमा लाँघ कर एक व्यसन बन जाये या अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में सफल न होते हुए भी तुम्हारे इस शिष्टाचार की तुमसे ये माँग बनी रही। फिर बताओ, यह शिष्टाचार क्या बहुत महँगा न पड़ेगा ? इसके अतिरिक्त तुम इनके चक्कर में कहाँ-कहाँ तक आओगे। पाश्चात्य शिष्टाचार तो यह भी माँग करता है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे मित्रों के साथ घूमे-फिरे और तुम्हें उसमें कोई आपत्ति न हो।"

"इसमें आपत्ति वाली बात ही कौन-सी है ?"

शान्ति तुनक कर बोली, "जानते हो तुम्हारा किस परिवार में जन्म हुआ है ? बे-मेल की बातें कर रहे हो।"

संघर्ष झल्ला कर बोला, "मैं कह रहा हूँ, शान्ति ! तुम नहीं समझ सकती हो इन बातों को। घूम-फिर कर फिर बात वहीं पर आ जाती है। मैं हूँ प्रगति-शील विचारधारा का व्यक्ति, जो समय के साथ-साथ अपने दिमाग़ की ऊल-जलूल रूढ़ियों पर ब्रश मारता रहता है, पर तुम ब्रश तो क्या उस कूड़े को संचित रखने के मोह का उल्टा पोषण करती हो। न मालूम क्यों तुमको इन रूढ़ियों से प्यार है ? जब भी कोई बात हो, ले आओगी उन्हीं प्राचीन संस्कारों को। प्राचीन पर गौरव किसको होता है ? जिसका वर्तमान टके का भी न हो।"

शान्ति ने एक लम्बी साँस ली और बोली, " हे भगवान् ! कहाँ की कहाँ ले गये हो । मैंने कब कहा कि तुम वर्तमान से प्यार न करो ।"

"तो और तुमने खाक कहा ?"

शान्ति नम्र हो बोली, "देखो जी ! मेरी बातों का गुस्सा न किया करो। मैंने यही कहा न कि हमारी एक सीमा है, हम उससे बाहर नहीं जा सकते ।"

"हाँ, तो बताओ क्या मायने हैं इस सीमा के ?"

"बताऊँगी पर तभी जब तुम ठंडे दिमाग़ से सुनो । मेरा कदापि यह मतलब नहीं था कि ये सीमायें कोई हमारे प्राचीन संस्कारों ने निर्दिष्ट कर रखी हैं और उससे बाहर जाने का कोई निषेध किया गया है। सीमा किसी व्यक्ति की, उसकी परिस्थितियों, उसकी सामर्थ्य और उसकी क्षमता पर निर्धारित रहती है। इसमें न तो 'प्राचीनवाद' और न 'प्रगतिवाद' का हाथ है । उसकी तो यहाँ पर चर्चा भी व्यर्थ है । प्राचीनवाद सारा रूढ़िवाद नहीं है और न सारी आधुनिक विचारधारायें प्रगतिवादी ही हैं। यह तो केवल समझ की कमी है कि हम व्यर्थ में इन पर वाद-विवाद करते हैं । मेरा तो तात्पर्य केवल इतना था कि हम जिस योग्य हैं, हमारी बातें भी उसी योग्य होनी चाहिये। नहीं तो जानते हो दुनिया क्या कहती है ? कहती है कि इन पर सींग उग आये हैं ।"

"दुनिया को मारो गोली, दुनिया तो न मालूम क्या-क्या कहती है ।"

"पर क्यों ? और मार भी कैसे सकते हैं ? हम भी दुनिया के अङ्ग हैं। यदि दुनिया ठीक बात कहती हो तो हम कैसे दुनिया से विमुख जा सकते हैं ?"

संघर्ष और अधिक झल्ला कर बोला, "शान्ति ! मेरा दिमाग़ न चाटो, मुझे इन बातों से चिढ़ है । कहीं दुनिया, कहीं प्राचीनता, कहीं धर्म और कहीं मर्यादा—गरज कि तुम्हारे तर्क इन्हीं से भरे पड़े हैं । मेरे पास इनको सुनने के लिये कान तक नहीं हैं ।"

शान्ति निराश होकर फैली-फैली आँखों से पति को देखती रही। क्या उपाय हो सकता था कि वह सच और झूठ का निर्णय करा सके । निर्णय तो तर्क ही से हो सकता था पर संघर्ष तो हठ पर उतर आया था ।

वह फिर उत्साह बटोर कर बोली, "दुनिया को छोड़ दो। तुम्हारा अपना

विवेक क्या आज्ञा देता है कि मैं तुम्हारे मित्रों के साथ फिरूँ और उनके हास-परिहास में सम्मिलित होऊँ ? क्या मेरे लिये यह उच्छृंखलता नहीं है ?"

"क्यों ? कोई तुम्हें निगल जायेगा क्या ? पर ये कहो कि परदे के पीछे—दुनिया से छुप कर रहने में तुम अपने चरित्र पर विश्वास खो बैठती हो। परिणाम क्या होता है कि जरा किसी से मिलना-जुलना सम्भव हुआ तो यौन-आकर्षण का वह भूत, जिसको तुम बलात् दबाये रखती हो, तुम्हारे सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। फिर तुम कहती हो कि हम सती सावित्री हैं। पुरुष के संग रह कर अपना सतीत्व निभाओ तो तब हम जानें। बर्फ की परतों में बन्द होकर यदि तुमने जल लेने का निषेध किया तो कौन-सा तीन मार डाला, तुम्हें अपने चरित्र पर नहीं अपनी मानसिक दासता पर गर्व होना चाहिये।"

शान्ति फिर अवाक् होकर पति के मुख को देखने लग गई। सोच रही थी कि जिस शिष्टाचार को लेकर चर्चा चली थी—उसका समाधान बीच ही में छूट चला था और चर्चा का विषय दूसरी ही बातें बनती चली जा रही थीं। वह उत्तर दे तो किन-किन बातों का ? पति के अन्दर तो इतना संयम ही नहीं था कि वह शान्ति से उसकी बातों को सुन ले। वह तो इस धारणा से प्रभावित हो चला था कि मानो पत्नी का उद्देश्य उसको नीचा दिखाना मात्र था। वह चुप हो गई और फिर निरन्तर चुप ही रही। उसे विश्वास हो चला था कि उसकी बातों से पति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। उल्टा उसके समझाने से वैमनस्य ही पैदा हो जाता था। उसे लगा कि अब संघर्ष की आदतों में सुधार लाना उसके सामर्थ्य से परे की बात थी। जिस नाव पर वह सवार थी अब वह चंचल तरंगों में बहती हुई किनारे की आशा छोड़ बैठी थी। केवल अन्त देखना ही बाकी था और शायद यह कि वह अन्त कैसे आये।

तूफ़ान पर तूफ़ान आते रहे और वह मौन दर्शक की भाँति चुपचाप सब देखती रहती। तीसरे, चौथे दिन पूर्ववत् उसके घर पर पति के यार दोस्त आते और शराब का दौर चलता। किसी-किसी दिन तो संघर्ष रात को घर भी नहीं आता और वह रात को देर तक प्रतीक्षा करते-करते सो जाती। वह सब जानती थी कि यह डूबने के संकेत थे, पर करती ही क्या ? खतरे से बचने के समस्त उपायों पर पानी फिर गया था। पति ही के हाथों में जब पतवार

थी और वह उन जल-तरंगों को खेल समझ कर उस खतरे से निःशंक था तो फिर वह क्या करती ! पर एक दिन इतनी जोर का झटका लगा कि वह विचलित हो उठी और उसके दोनों हाथ पतवार पर जा पड़े, मानो संघर्ष के हाथ से पतवार छीनकर वह स्वयं उस नाव को खेने के लिये उद्यत हो गई हो।

संघर्ष एक रात एक स्त्री को लेकर घर आया और शान्ति से बोला, "मैं खाना खाकर आ गया हूँ और अब सोऊँगा। तुम अपना बिस्तर चौके के कमरे में ही लगा लेना।"

शान्ति ने उस स्त्री को देखा और आश्चर्यचकित कभी पति की ओर और कभी उसकी ओर देखती रही।

संघर्ष ने कोई उत्तर न पाकर उसे फिर चौके में चले जाने का संकेत दिया और द्वार बन्द कर दिया। शान्ति ठगी-ठगी कुछ देर वहाँ पर खड़ी रही और फिर अपने कमरे में आकर धड़ाम से फर्श पर गिर गई और फफक-फफक कर रोने लग गई। हे भगवान् ! ये दिन भी उसे देखने बाक़ी थे कि उसके होते हुए, उसका पति एक अन्य स्त्री के साथ दूसरे कमरे में रात बिता रहा था। पहले तो वह मुँह पर धोती का पल्ला डाल कर रोती रही, पर पीछे एक रोगी की तरह बिलख पड़ी। एक-दो घण्टे इसी तरह नंगे फर्श पर पड़े-पड़े वह रोती हुई शादी के दिन से आज तक के अपने दिनों को याद करती और फिर ज़ोर-जोर से सिसकियाँ लेती हुई रोती रही कि तभी द्वार पर दस्तक सुनाई दी। उसी स्थिति में भयभीत हो उसके कान सचेत हो उठे। उसे दूसरे कमरे से संघर्ष की आवाज़ सुनाई दी कि वह द्वार खोल दे। वह उठी और धीमे पग बढ़ाती हुई द्वार की ओर चली। कुण्डी खोलने को ही थी कि फिर ठिठक गई और वहीं पर खड़ी रही।

"संघर्ष ! द्वार खोलो भई, हम हैं।" बाहर से आवाज़ आ रही थी।

शान्ति का माथा ज़ोर से ठनका। हम का मतलब क्या पति के मित्रों से था ? तो क्या सब रात बिताने ही उसके घर पर आये थे। वह काँप गई—यह सोचकर कि उसके घर पर क्या महापाप होने जा रहा था।

तभी फिर संघर्ष की गर्जना सुनाई दी और उसने डर कर तुरन्त कुण्डी

खोल दी । जिस बात का उसे खटका हुआ था, वही निकली । द्वार पर निर्लज्ज मुंह लिये संघर्ष के मित्र खड़े थे ।

उसके अन्दर मानो बिजली दौड़ गई । एक अज्ञात शक्ति का उसने अपने अन्दर अनुभव किया और संयत हो बोली, "आप से मैं कुछ पूछ सकती हूँ ?"

संघर्ष के चारों मित्र शान्ति के उस निर्भीक स्वर से कुछ ठिठक गये । तत्काल स्थिति को सँभालता हुआ एक बोला, "तुम्हें नमस्ते करने की हमेशा भूल होती रही भाभी ! इसीलिये परिचित होते हुए भी अपरिचित ही बने रहे । ग़लती हमारी ही है । पूछ क्यों नहीं सकतीं ? बताओ, हमारे योग्य कुछ कार्य हो ।"

शान्ति उसी स्वर में बोली, "तुम्हारे ही सहारे तो सब कार्य चल रहे हैं—इतनी रात बीते क्या मैं तुम्हें कोई कष्ट दूँगी ? केवल यही पूछना चाहती हूँ कि आप लोगों का कौनसा कार्य है जिसके लिये इतना कष्ट उठाया ?"

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे ।

शान्ति गुस्से में बोली, "मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये । यह गृहस्थ है, सराय नहीं । यदि आज तक मैं कुछ न बोली तो आपको यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए थी कि मैं आपसे ऐसा प्रश्न करूँगी ही नहीं ।"

शान्ति को उत्तर मिला पर सामने खड़े मित्रों से नहीं, बल्कि पीठ पीछे बैठक के द्वार खोलते हुए अपने ही पति से । संघर्ष बोला, "इनके लिये क्या रात और क्या दिन, इस घर के द्वार हमेशा खुले ही रहेंगे शान्ति । तुमने व्यर्थ ही इन्हें रोक कर मुझे कष्ट दिया, वरना मुझे कमरे से यहाँ तक आने की क्या आवश्यकता थी ?" फिर मित्रों की ओर देख कर वह बोला, "चलो भई दत्त ! काफी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था । अब तो मुँह की कड़वाहट भी जाती रही । खैर, फिर मुँह कड़वा हो जाएगा । चलो, कमरे में चलो । चलो कोहली, रमन, श्याम—सब चलो ।"

शान्ति का सारा गुस्सा रफूचक्कर हो गया । वह फिर उन्हीं फटी-फटी आँखों से सब देखती रही और कमरा फिर उनके अन्दर चले जाने पर बन्द हो गया ।

यही क्रिया फिर दूसरे-चौथे दिन दुहराई जाने लगी, पर अब शान्ति भय-

भीत होने की अपेक्षा निर्भीक हो सब कुछ देखती और सुनती। उसके मुख पर दृढ़ता आने लगी थी, मानो वह यह समझ चली थी कि उसका रोना-धोना सब बेकार और वृथा था, और इससे कहीं भी उसका कोई कल्याण नहीं हो सकता था। अब न तो वह संघर्ष के लिये ईश्वर से दुआ ही माँगती और न ही उसके कुकृत्यों पर उससे चिढ़ती। पर यह कैसे सम्भव था कि संघर्ष से पति का रिश्ता होने पर और फिर साथ-साथ रहने पर जो कुछ उसके घर में होता रहे उसकी उस पर कोई प्रतिक्रिया न होती। घर में तो बर्तन भी ठनकते हैं। फिर यहाँ तो लुहार की धोंकनी चल रही थी। एक दिन ऐसा गाज पड़ा कि उसकी चोट से सब बनने और बिगड़ने की समस्या ही समाप्त हो गई।

आधी रात तक संघर्ष घर नहीं आया था। जब शान्ति की आँखें लगने लगीं, तभी द्वार पर दस्तक सुनाई दी। उसने जब उठकर द्वार खोला तो भय से एक पग पीछे हट गई। जो स्त्री संघर्ष और उसके मित्रों के साथ उसके घर पर रात बिताती थी, आज उसके मुँह में कपड़ा ठूँसा हुआ था और हाथ पैरों में रस्सी बँधी हुई थी। साथ में मित्रों की वही टोली थी जो टैक्सी में यहाँ तक आये थे। संघर्ष और उसके मित्र उस स्त्री को उठाकर बैठक के कमरे में ले आये। प्रायः जब ये मित्र बैठक वाले कमरे में आते तो शान्ति चौके के कमरे में चली जाती थी और वहीं सोई भी रहती थी। पर आज वह इनके पीछे-पीछे छुप कर बैठक वाले कमरे में चली आई। उस स्त्री के हाथ-पाँव खोल दिये गये और जो कपड़ा मुँह में ठूँस रखा था, वह भी निकाल दिया गया।

"मुझे छोड़ दो—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।" वह रोती हुई बोली।

"अब छोड़ तो दिया नन्ही जान! रोती क्यों हो?" उन्हीं में से एक बोला।

"हाँ, अब तुम्हें भटकने नहीं दिया जायगा।" दूसरा बोला।

"बहुत बनवास सहा बिचारी ने। पर अब तो रानी बन कर रहेगी—द्रौपदी के समान।"

शान्ति ने सुना तो कुछ न समझी। सहसा प्रकट में संघर्ष को सम्बोधित करते हुए बोली, "इसकी यह दशा क्यों कर रखी है ?"

सबकी दृष्टि शान्ति की ओर मुड़ गई।

संघर्ष गुस्से में बोला, "तुम यहाँ क्यों आईं ?"

"क्यों ? कोई अनधिकार चेष्टा कर बैठी क्या ?" उसके स्वर में कठोरता और व्यंग था। मित्र-मण्डली संघर्ष का मुख देखने लग गई।

उस स्त्री ने शान्ति को देखा तो लपक कर उससे चिपक गई और बोली, "मुझे छुड़ा दो बहिन ! तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलूँगी।"

शान्ति ने उसकी पीठ पर हाथ रखा और फिर संघर्ष से प्रश्न किया, "आपने बताया नहीं कि यह आपके प्रेम का कौन-सा रूप है जो इस बेचारी की यह दशा हुई ?"

संघर्ष की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लग गईं पर फिर भी पर्याप्त संयत स्वर में बोला, "इस रूप को देखने के लिये अभी तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

शान्ति हँसी और बोली, "बड़े तड़पाते हो जी अपने प्रेम में और जो इतना संयम न हो कि अधिक प्रतीक्षा न कर सकूँ, फिर ?"

"संघर्ष दाँत पीस कर बोला, "आज मालूम पड़ता है, तुम्हारे भी बुरे दिन आ गये हैं।"

"बुरे दिन आयें मेरे दुश्मनों के। ये आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मैं तो चाहती हूँ कि थोड़ा-थोड़ा तुम्हारी देने की जो वृत्ति है, वह समाप्त होकर तुम्हें इतना उदार देख सकूँ कि एक ही बार तुम्हारा सर्वस्व प्राप्त हो सके।"

संघर्ष के नथुने फूल उठे—बोला, "ज़ुबान चलाती हो शान्ति ? सोचती होगी कि मैं तुम्हारी बातों से डर जाऊँगा। पर तुम भूल रही हो। यदि अधिक बकवास करोगी तो इस ज़ुबान को ही खींच लूँगा, समझीं ?"

शान्ति की त्योरियाँ चढ़ गईं, बोली, "रहने दो इन धमकियों को। समझते होगे कि इनसे ही डर कर शायद मैं आज तक चुप रही। मैं इनसे नहीं तुम्हारे अमंगल से डरती रही। पर अब स्पष्ट हो गया है कि ब्रह्मा भी आ जाय तब

भी तुम्हारा विनाश नहीं रुक सकता।" फिर वह डाँटती हुई बोली, "बोलो, तुम इसे छोड़ते हो, या नहीं ?"

संघर्ष ने अट्टहास किया और मित्रों की ओर मुड़ कर बोला, "ये तिनका आज शायद समाप्त होने वाला है। क्या तुम में से किसी को इसके प्रति सहानुभूति है ? यदि है तो इसे समझा लो, वरना पीछे मुझे दोष न देना। मेरे वेग को तुम सब जानते हो, जब चलता हूँ तो रास्ते के कंकर और पत्थर सब चूर-चूर हो जाते हैं—यह तो तिनका है···" संघर्ष अभी बोल ही रहा था कि शान्ति की आवाज़ ने उसे रोक दिया। वह बोली, "यह तुम नहीं, तुम्हारा विनाश बोल रहा है, और उसके साक्षी हैं तुम्हारे ये मित्र। यदि आज वह विनाश की घड़ी आ गई है तो कोई उसे रोक नहीं सकता। अभी भी समझ लो कि इन सब बातों का परिणाम अत्यन्त भयानक होगा। मेरा जहाँ तक सम्बन्ध है—तुम बिलकुल भी दया न करना। मैंने तुम्हें पाकर जितना सुख उठाना था, वह उठा चुकी। अब तनिक भी तृष्णा शेष नहीं है।"

फिर मित्रों की ओर मुड़कर बोली, "लेकिन तुम से भी तो मैं कुछ पूछना चाहती थी। बताओ, इतना दुस्साहस कैसे कर बैठे हो कि एक गृहस्थ परिवार में जब जी चाहे तब आ जाते हो और वह भी ये करतूतें लेकर ?"

सब चुप रहे।

शान्ति फिर बोली, "मैं कहती हूँ आप सब चले जाइये और भगवान् के लिये कभी फिर इस घर में क़दम न रखियेगा, समझे ?"

संघर्ष क्रोध में उबला जा रहा था। सहसा उछलकर उसने जोर से एक चाँटा शान्ति के मुँह पर जड़ दिया। बोला, "कमीनी औरत कहीं की। पंख निकल आये हैं न। पर इन पंखों को ऐसा नोच दूँगा कि तड़पती रहेगी।"

मित्र सब चुप थे। कमरे में सन्नाटा छा गया। वह स्त्री भी डर के मारे एक कोने में खड़ी हो गई। शान्ति मार खाकर सन्न रह गई। उसका हाथ अपने गाल पर था। उसने सूनी निगाहों से फिर संघर्ष को देखा और बोली, "मुझे मारने से यदि तुम्हें शान्ति मिलती है, तो खूब मार लो। इतना मारो कि तुम्हारी आत्मा तृप्त हो जाये, पर मैं ये जो सब कुछ हो रहा है, इसे नहीं

देख सकती। मेरे मरने के बाद तुम चाहे फिर जो कुछ करो पर मेरे जीवित रहते, यह नहीं चल सकेगा।" वह फिर मित्रों की ओर मुड़ी और लगभग चीखती हुई बोली, "तुम लोग तमाशा क्या देख रहे हो ? निकल जाओ तुरन्त ही, वरना झाड़ू मारकर निकाल दूँगी।"

संघर्ष गरजा, "शान्ति !"

शान्ति इस गर्जना की उपेक्षा करती हुई बोली, "तुम जाते हो या नहीं, मैं अभी हल्ला मचाती हूँ और तुमको इस सब का मजा चखाती हूँ।"

सब शान्ति के उस विकराल रूप से डर गये और एक दूसरे का मुँह देख कर जाने ही लगे थे कि संघर्ष ने उन्हें रोक लिया।

"तुम क्यों जाते हो ? पहले ये जाएगी।" कहते हुए उसने शान्ति की चुटिया पकड़ी और तम-तम कर उसके गालों में आठ-दस थप्पड़ कस दिये। फिर पास पड़ी छड़ी उठाकर वह शान्ति पर उसकी वर्षा करने लगा।

वह स्त्री आतंकित हो मुँह पर हाथ लगाकर चीखें मारने लगी। दोस्तों में से दत्त आगे बढ़ा और संघर्ष को रोकता हुआ बोला, "पागल हो गये हो क्या ?"

"तुम हट जाओ। मैं आज इसे समाप्त करके ही दम लूँगा।" कह कर संघर्ष फिर घूँसों की वर्षा करने लगा।

दत्त को देखकर फिर दूसरे दोस्त भी आगे बढ़े और उन्होंने संघर्ष को कस कर जकड़ लिया। दत्त बोला, "ख़बरदार संघर्ष ! अब तुमने यदि हाथ उठाया तो मैं तुम्हारा हाथ तोड़ दूँगा।"

"मैं कहता हूँ मुझे छोड़ दो, नहीं तो मैं एक-एक कर तुम्हारा भी कचूमर निकाल दूँगा।" और फिर संघर्ष ने जोर से लात मारी। शान्ति मुँह के बल नीचे गिर पड़ी और बेहोश हो गई।

संघर्ष और उसके दोस्तों के बीच धक्कमधक्का चलती रही, पर वह अब पूरी तौर पर उनकी बाँहों में कसा जा चुका था।

"बस, अब शान्त हो जाओ।" दत्त बोला।

"नहीं, मैं ज़रा इसकी हिम्मत देखना चाहता था। बहुत सिर पर चढ़ गई थी। देखना चाहता था कि वह कैसे तुम्हें बाहर निकालती थी।" फिर

उसकी लाल आँखें उस स्त्री की ओर मुड़ीं और वह बोला,"यह सब इस चण्डा-लन की करतूत थी। इसी ने आज यदि उसकी भावनाओं को न उभारा होता तो यह काण्ड न होता।"

वह स्त्री काँपती हुई रोने के स्वर में बोली, "मैंने कुछ नहीं किया। मुझे क्षमा करो यदि भूले से कोई ग़लती हो गई हो।"

कोहली बोला, "अच्छा छोड़ो इन बातों को, इन्हें तो फिर पीछे भी देख लेंगे। दत्त ! तुम्हें तो अब जाना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि थाने में कोई गड़बड़ हो जाय। उन दोनों के विरुद्ध कार्यवाही मजबूत होनी चाहिए और इसमें तनिक भी विलम्ब हुआ तो कोई और आफ़त आ सकती है।"

संघर्ष और दूसरे साथी सुनकर चुप हो गये और कुछ सोचने लगे। कोहला बोला, "चलो, अब चलें, संघर्ष ! यदि घर पर ही रहना चाहो, तो तुम रहो।"

"नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा पर इसका क्या किया जाय ?" संघर्ष बोला। सब कुछ देर चुप रहे, फिर कोहली के संकेत पर सब चौके में आये और कुछ मन्त्रणा करने लग गये।

वह स्त्री सब देख रही थी पर चुपचाप जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर बाद वह कमरा बाहर से बन्द हो गया और उसने देखा कि संघर्ष और उसके मित्र द्वार बन्द कर फिर बाहर चले जा रहे थे।

उसने आगे बढ़कर वहीं पर मूर्च्छित पड़ी हुई शान्ति को उठाया और उसके मुँह पर पानी के छींटे मारकर उसे होश में लाई।

शान्ति जब होश में आई तो दोनों एकटक एक दूसरे के मुँह को देखती रहीं।

शान्ति के मुँह पर फिर अचानक घृणा उभर आई। उसने उस स्त्री का सहारा छोड़ते हुए कहा, "दूर खड़ी रहो। अपनी पापिन देह से मुझे छूने की आवश्यकता नहीं है।"

स्त्री पहले तो जड़-सी बनी रही पर फिर नम्र होकर बोली, "मेरे लिये तुम्हारी यह दशा हुई, बहिन ! मुझे इसका बहुत दुःख है। पर मुझ से इस प्रकार घृणा कर तुम्हारे दुःख कोई कम थोड़े ही हो जायेंगे।"

"तुम मेरे दुःख की चिन्ता न कर यदि अपना पाप ही हल्का कर सको तो बहुत है।"

यह कह कर शान्ति की आँखें फिर उसी तरह, घृणा से भर आईं।

वह स्त्री शान्ति को देखती रही और रोने के स्वर में बोली, "यही तो दुर्भाग्य है मेरा कि यदि चुप रहूँ तो दुनिया लूटती है और यदि जुबान खोलूँ तो दुनिया थूकती है। अपने पाप को मैं क्या हल्का करूँगी। मैं तो बे सहारे बहती चली जा रही हूँ। यदि चाहूँ तो भी किनारे नहीं लग सकती। चंचल तरंगों में बहता हुआ तिनका क्या कभी किनारे लगा, जब तक कि उसे किसी का सहारा प्राप्त न हुआ ? फिर यदि घृणा की पात्र हूँ तो तुम्हीं बताओ, कैसे मैं तुम्हारी इस घृणा से मुक्त हो सकती हूँ। अब तो केवल तुम्हारी दया और करुणा पर ही सब कुछ निर्भर है। यदि चाहो तो ठुकरा दो और चाहो तो अपनी छाँह में लेकर पुण्य अर्जित करो। भले ही तुम्हारी देह अपवित्र हो जाये। मैं अपाहिज और कोढ़ी हूँ बहिन ! मुझ पर गुस्सा करके क्या करोगी ?"

शान्ति ने सुना और एक बार सिर से पैर तक उसे देखा। बोली, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"वनिता।"

"वनिता ?"

"हाँ, शायद अब पहचान गई होगी। तुम, प्रेरणा देवी और जीवन बाबू एक ही बिरादरी के हो। तुम्हारे लिये मैं नई नहीं हूँ। तुम सबके साथ मेरा परिचय भी ऐसी ही स्थिति में होता आया है, जैसी स्थिति कि आज तुम्हारे सामने है। सोच रही होगी कि विडम्बना को साक्षात् कर मैं किस तरह समय-समय पर अपने मायाजाल में तुम्हें लपेटती रहती हूँ, पर इसमें मेरा दोष नहीं है। नियति ने ही मुझे ऐसे काम सौंपे हैं। कई वस्तुएँ संसार में ऐसी होंगी, जिनकी रचना विधाता ने केवल इसी उद्देश्य से की कि वह अपनी चमक से दुनिया की आँखों की रोशनी हर लें, क्योंकि विधाता को भी डर था कि मनुष्य यदि सब प्रकार से परिपूर्ण रखा गया तो कहीं किसी दिन वह अपने बौद्धिक बल से उसी की सत्ता को चुनौती न दे दे। मनुष्य ब्रह्म से न मिले, इसीलिये

माया बनी और इसीलिये ब्रह्म तक पहुँचने में मनुष्य अपना मार्ग प्रशस्त न कर सका। मैंने जन्म तो लिया मनुष्य-योनि में पर नियति के संकेतों पर मैं 'माया' बन गई। जीवन बाबू मेरा चप्पा-चप्पा इतिहास जानते हैं।"

शान्ति की आँखें आश्चर्य में बड़ी-बड़ी हो गईं।

वह बोली, "तो क्या सचमुच जीवन बाबू से तुम्हारा बड़ा सामीप्य रहा है ?"

"रहा नहीं, बल्कि अब है।"

"हे भगवान् ! तो उन्होंने सचमुच ही क्या तुम्हें अँगूठी भेंट की थी ?"

वनिता फीकी हँसी में बोली, "शान्ति बहिन ! बहुत लम्बी बातें हैं, कहाँ तक बताऊँ और किस-किस को बताऊँ ? सब एक प्रकार से विशाल जंगल बन गया है, जिसकी घनी छाँह में प्रकाश की एक किरण भी भूमि पर नहीं उतरती। कितने ही झाड़-झंखाड़ का सफाया किया पर जिस गति से ये अंधकार बढ़ाने वाले झाड़-झंखाड़ गिरते हैं उससे भी तेज़ गति से उनके स्थान पर दूसरे उग आते हैं। परिणाम यह होता है कि जंगल का वह गहन तिमिर पूर्ववत् ही बना हुआ है। जिस प्रकार से संघर्ष बाबू की पत्नी के रूप में तुम को जानती थी वैसे ही जीवन बाबू का भी नाम सुन रखा था, पर साक्षात्कार उनसे केवल एक सप्ताह पूर्व ही हुआ जैसा कि आज तुम से हुआ। अब तुम समझ सकती हो कि उनसे मेरा कितना सामीप्य है।"

"वह तुम से कैसे मिले ?"

"वह मेरे ही साथ रहते हैं शान्ति बहिन ! आश्चर्य न करो। वह मुझे बहिन का स्थान दे रहे थे, पर मैंने जान-बूझकर उन्हें भाई नहीं बनाया। बड़ा हास्यास्पद-सा लगा वह नाता। खैर, उन्हें मैं भाई ही कहती हूँ। इस वक्त वह मेरे पति के साथ हवालात में बन्द हैं और रात खुलने से पूर्व उनकी क्या गति होगी, यह भगवान् ही जाने।"

"ओ मेरी अमाँ···" शान्ति का मुँह खुला का खुला रह गया।

वनिता बोली, "तुम्हारे पति और इन दूसरे लोगों ने, जिनमें प्रमुख रूप से थानेदार दत्त और वह दुबला-पतला चमगादड़ कोहली हैं, मेरे पति को इस

आरोप पर बन्दी कर लिया है कि मुझे वह भगाये लिये जा रहा था। जीवन को भी इसलिये बन्दी बनाया गया कि वह मुझे भगाने में मेरे पति की सहायता कर रहा था।"

वनिता फिर बोली, "आश्चर्य न करो, मैं अपने पति की विवाहिता स्त्री नहीं हूँ बल्कि उसकी विधवा भाभी हूँ। और एक समय जब हमारी परस्पर बनती नहीं थी, मेरे इसी देवर या पति ने मेरी हत्या करने का असफल प्रयास भी किया था। तब मेरी रक्षा करने वाले ये दत्त और कोहली ही थे जो मुझे पति के संरक्षण से अपने संरक्षण में ले आये। वर्षों के बाद पिछले हफ्ते मुझे मेरा पति मिला और साथ में उनका मित्र जीवन, कि तभी आज फिर ये लोग उन्हें बन्दी बनाकर मुझ से छुड़वा ले गये हैं।"

शान्ति की रगों में खून दौड़ गया। वह बिजली की भाँति उठी और दरवाज़े की ओर भागी पर वनिता ने उसे रोक दिया। "हम भी बन्दी हैं बहिन। पहले वे लोग जीवन और मेरे पति के भाग्य का निबटारा करेंगे, फिर वापस आकर हमारे भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय करेंगे। मुझे ऐसा लगता है।"

"ओह!" शान्ति ने निस्सहाय होकर साँस ली और वनिता को आलिंगन में कस लिया। "अब क्या होगा वनिता?" वह बोली।

"मुझे अपनी नहीं तुम्हारी चिन्ता है। मेरा भला ये लोग क्या करेंगे? भय की जो चरम सीमा होती है, वहाँ तक मैं कभी की पहुँच गई। तुम से जो मैंने सहायता की भीख माँगी थी, वह इसी विश्वास पर कि शायद संघर्ष बाबू के अन्दर थोड़ी मनुष्यता निकल आये और वह तुम जैसी देवी की मर्यादा से भय खाकर, मुझे तुम्हारी शरण से न हटा सके, पर मेरा विश्वास बिलकुल कोरा निकला। यदि ऐसा जानती तो स्वेच्छा से जैसी पहले थी, वैसा ही आवरण फिर पहन लेती, ताकि तुम्हारी तो यह दुर्दशा न होती। पर बहिन! मेरे पीछे तुम्हारे भाग्य में यह दुःख लिखा था, वह कैसे टलता?"

शान्ति बोली, "जो कुछ हो गया, उसका कुछ महत्व नहीं है। आगे क्या होगा, केवल इस बात की चिन्ता है।"

"तुम नियति की उपेक्षा नहीं कर सकतीं—जो कुछ लिखा होगा, वही होगा। और वह क्या लिख है—यह संघर्ष और उसके मित्रों से पूछा कर ही

पता चलेगा, क्योंकि उन्हें ही इस समय नियति ने हमारा प्रहरी नियुक्त कर रखा है।"

शान्ति दाँत पीस कर बोली, "मैं नियति के मोड़ों को बदल दूँगी।"

वनिता हँसी और बोली, "तुम अपना अमंगल न कर बैठना। इस समय स्वयं नियति भी आ जाय, तब भी अपने पूर्व-लिखित लेख में संशोधन या परिवर्तन नहीं कर सकती।"

शान्ति कुछ देर चुप रही—फिर बोली, "नियति असहाय हो जाय पर अब भी उसके मोड़ों को बदलने की क्षमता एक में है। प्रेरणा को लिखती हूँ, और फिर देखती हूँ।"

वनिता सुन कर सहम गई। शान्ति के मुँह को ग़ौर से देखने के बाद वह बोली, "प्रेरणा देवी पर तुम्हारी इतनी श्रद्धा है, शान्ति ?"

"श्रद्धा नहीं गौरव है।"

वनिता फिर चुप हो गई। कुछ सोचकर बोली, "साधन-सम्पन्न है इस-लिये ?"

"नहीं, इसलिये कि वह विश्वास को लेकर ज़िन्दा है, वह हर क़ीमत पर अपने विश्वास की रक्षा करती है और उसके लिये उसके पास इतना आत्म-बल है कि दुनिया का छल उसके आत्मबल से टकराकर चूर-चूर हो जाता है, तुम उसे जानती हो ?"

"थोड़ा बहुत।"

"फिर शायद तुम उसे ठीक से जान न सकीं !"

"उसने इतना अवसर ही कहाँ दिया कि उसे पहचान सकूँ।"

"तभी तुम्हें शंका है।"

"लेकिन मुझे शंका ही नहीं अपितु उनके प्रति विपरीत धारणा भी है। मैं समझती हूँ कि प्रेरणा देवी बाह्य व्यक्तित्व रखती हैं—लेकिन अन्तर उनका कितना उन्नत है सम्भवत: यह जानने का तुम्हें भी अवसर न मिला हो।"

"मेरी शिक्षा और अनुभव बहुत विस्तृत नहीं हैं वनिता। पर मनुष्य की वृत्तियों को समझने में मैंने कभी भूल नहीं की है। तुम्हारे यह कहने से ही कि उससे तुम्हारी जान-पहचान बहुत थोड़ी है, यह ज़ाहिर होता है कि उसके

प्रति किसी असन्तोष से तुम व्यर्थ में यह धारणा बनाये हुए हो। जब तुम उसे जानती ही थोड़ा हो तो फिर किस आधार पर तुमने यह धारणा बना ली कि वह बाह्य व्यक्तित्व रखती हैं ?"

वनिता को कोई उत्तर देते न बना। वह चुप हो गई और सोचने लगी। शान्ति बोली, "प्रेरणा का स्वभाव मैं तुम्हें बतलाती हूँ वनिता ! वह ऐसी लड़की है कि कमज़ोरी को मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा अभिशाप मानती आई है। उसे कमज़ोरी से घृणा है। जो कमज़ोर बन कर उससे सहायता की भीख माँगता है, उसे वह सहायता का पात्र नहीं समझती पर कमजोर से बलवान बनने में यदि उसका सहयोग चाहे तो वह सहयोग नहीं, तुम्हें शक्ति भी देगी। वह कभी गली में भीख माँगते हुये व्यक्ति के हाथ पर एक पैसा भी नहीं रखेगी पर अपने क्लीनिक के कर्मचारियों के वेतन-वृद्धि की माँग पर वह एक दिन उनके पक्ष को लेकर अपने पिताजी से लड़ पड़ी थी। प्रत्यक्ष में जो चीज़ बुरी हो, उसकी पृष्ठभूमि चाहे कितनी ही साफ़ और उज्ज्वल क्यों न हो, वह उसे कोई महत्त्व नहीं देती।"

वनिता और शान्ति में फिर सारी रात यों ही बातें चलती रहीं, जब तक कि सुबह संघर्ष न आया। जब सुबह हुई तो संघर्ष ने द्वार खोला और अन्दर कमरे में प्रविष्ट हुआ। वनिता तो डर कर खड़ी हो गई। संघर्ष ने लाल-लाल आँखों से उन्हें देखा और कुछ क्षण घूरता ही रहा। शान्ति फिर सिर पर धोती का पल्ला डाल कर नीची गर्दन कर धीमी गति से चौके में चली गई।

संघर्ष ने वनिता को देखा और पास आकर बोला, "अब आराम से रहो, आज से तुम मेरी पत्नी हो। यदि पत्नी बन कर न रह सकीं तो फिर समझ लो तुम्हारी क्या दुर्गति होती है।" उसने फिर पास आकर वनिता को अपने बाहुपाश में कस लिया और फिर उसे छोड़ कर कमरे का द्वार बाहर से बन्द कर चौके में चला आया। शान्ति से बोला, "यदि रहना हो तो दोनों को साथ रहना पड़ेगा और नहीं तो फिर जो कुछ कल रात को हुआ, उससे आगे जो होता है, उसके लिए भी तैयार हो जाना।"

शान्ति धीमे स्वर में बोली, "तुम्हें जो कुछ करना हो कर लो, पर मुझसे बोलने की आवश्यकता नहीं।"

संघर्ष की भृकुटी चढ़ गई, दाढ़ें भींचते हुये बोला, "रस्सी जल गई पर ऐंठ न गई। देखूँगा मैं कि यह ऐंठ कब तक रहती है ?"

शान्ति ने एक बार नज़र उठाकर उसकी ओर देखा और फिर गर्दन नीचे कर ली।

संघर्ष बोला, "आज से तुम इस घर में बन्दी बन कर रहोगी। एक कमरे में तुम सड़ोगी और एक कमरे में वह। यही तुम्हारे लिये उचित रह गया है। और यदि इससे भी तुमने समझौता नहीं किया तो फिर तुम्हें साधने के लिये भी कोई व्यक्ति नियुक्त करना पड़ेगा। बड़ी-बड़ी अक़्ल वाली छोकरियाँ बेंतों के बल पर सीधी हो जाती हैं और फिर वेश्या बन कर भी दुःखी नहीं होतीं। पत्नी बन कर रहना तुम्हें सुखकर न लगा। अब किसी चाबुकमार के प्रशिक्षण में तुम्हें रखूँगा और देखूँगा कि जिन मित्रों की सूरत से ही तुम्हें डर लगता था, अब उनकी गोद में बैठना तुम मंजूर करती हो या नहीं ?"

शान्ति ने सुना और आँखें मूँद लीं।

संघर्ष बोला, "भोजन बना कर खाओ और उसे भी खिला देना। इस बात का ध्यान रखना कि यदि तुमने कहीं स्वतन्त्रता वरती और कहे के अनुसार न चलीं तो तुम केवल मुझे अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में उल्टा उत्तेजित ही करोगी। तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी।"

शाम को संघर्ष फिर घर नहीं आया। शान्ति ने कहे अनुसार छज्जे की खिड़की से वनिता को खाना पहुँचाया और आप वैसे ही लेटी रही। अलग-अलग कमरों के छज्जे पर खड़ी होकर दोनों बातें भी करती रहीं।

वनिता बोली, "देख लिया बहिन। कहाँ तो कल रात तुम भाग्य के साथ टक्कर लेने की सोच रही थीं और कहाँ तुम इतनी निःसहाय हो गई हो कि नीचे गली में पैर भी नहीं रख सकतीं। अब समझीं तुम कि सोचने और करने में कितना अन्तर है ? इसी प्रकार यदि दो-एक दिन और बन्दी बन कर रहना पड़ गया तो फिर तुम बुरी-से-बुरी अवस्था से भी समझौता कर लोगी। मजबूरी ही दुनिया में सब कराती है। मैं जो इतनी गिरी हूँ, केवल इसीलिये कि निःसहाय थी, मजबूर थी। आज तुम भी मेरी ही तरह मजबूर हो। अब यदि प्रेरणा देवी आकर तुमसे घृणा करें तो क्या तुम उन्हें घमण्डी और निर्मम

नहीं समझोगी ? कल रात मैंने तुम्हारा उत्तर नहीं दिया था, लेकिन क्या मेरी परिस्थितियाँ ही मेरा उत्तर नहीं हैं ? इतनी क्रूर यातनायें सहन करने के बाद भी क्या मेरे जैसी स्त्रियों को अपने चरित्र के प्रति कोई जवाबदेही देनी पड़ेगी ? संघर्ष और उनके मित्र जब मुझ पर अत्याचार करते हैं, तो मुझे कुछ नहीं लगता, पर तुम जैसी देवियों से भी, जिनको मैं अपना आसरा समझती हूँ, जब कड़वी बात सुनती हूँ तो मेरे शरीर में आग लग जाती है।"

शान्ति चुपचाप सब सुनती रही और फिर अपने कमरे में आकर कुछ लिखने लगी। शाम का खाना भी शान्ति ने खिड़की के रास्ते पहुँचा दिया। वह शान्त और गम्भीर थी। वनिता और संघर्ष दोनों के शब्द उसके कानों में गूँजते रहे पर उसके मुख की आकृति से लगता था कि वह तनिक भी विचलित नहीं थी, अपितु एक दृढ़ निश्चय की भावना उसके मुख पर उभर आयी थी। उस निश्चय का उसने वनिता को कोई संकेत नहीं दिया।

बाहर अमावस्या की तामसी नीरवता व्याप्त थी। इक्के-दुक्के ताँगे और रिक्शे गली में चल रहे थे। शान्ति खिड़की पर चढ़ी और झट से गली में कूद पड़ी। वनिता सो गई थी, इसीलिये जो कुछ हुआ था उससे बेख़बर रही, पर गली में कोहराम मच गया।

पास ही एक हलवाई की दुकान थी। उसने देखा तो हल्ला मचा दिया। मिनटों ही में दसियों लोग जमा हो गये। शान्ति के मुख पर पानी के छींटे दिये गये। एक डाक्टर भी आकर महरमपट्टी कर गया और तुरन्त उसे हस्पताल में ले जाने का आदेश दे गया। टैक्सी आ गई और शान्ति को तुरन्त इर्विन हस्पताल पहुँचा दिया गया। जब उसे फर्स्ट एड मिली तो कुछ क्षणों के लिये वह होश में आई। बोली, "मेरी जेब में चिट्ठी पड़ी है, इसे पहुँचा दो वे लोग मेरी याद ख़बर करने आ जायेंगे।"

पड़ोस के जिन लोगों ने उसे हस्पताल पहुँचाया था उनमें से एक ने वह पत्र ले लिया और बोला, "आप चिन्ता न करें, बीवी ! इसे अभी पहुँचाये देते हैं।"

डाक्टर ने अधिक बात करने से मना कर दिया और शान्ति ने भी निश्चिन्त होकर आँखें मूँद लीं।

१८

शान्ति के पत्र को लेकर दूसरे दिन सुबह एक लड़का डा० स्वरूप के मकान पर आया और क्लीनिक के एक नौकर को वह पत्र देकर चला गया। नौकर जब वह पत्र लेकर ऊपर गया तो डा० स्वरूप को बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने पत्र प्रेरणा को दिया और पूछा, "यह डाक से तो नहीं आया, सुबह-सुबह कौन दे गया ?"

नौकर जो पास ही खड़ा था बोला, "कोई लड़का दे गया है, रुका नहीं चला गया।"

प्रेरणा ने पिता की उत्सुकता को लक्ष्य कर उन्हीं के सामने लिफाफा खोल दिया। देखकर बोली, "अरे, यह तो शान्ति की चिट्ठी है पिताजी !" डा० स्वरूप निश्चिन्त होकर दूसरे कमरे में चले गये। प्रेरणा भी अपने अध्ययन कक्ष में आयी और पत्र पढ़ने लगी। पत्र में लिखा था—

मेरी अति प्यारी जीजी !

यदि यह पत्र तुम तक पहुँच गया तो देखते ही तुम्हें आश्चर्य होगा, क्योंकि पहले कभी तुम्हें पत्र न लिख सकी। उसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। हम परस्पर मिल जाया करते थे। विवाह के बाद अवश्य मेरा तुम से सम्पर्क टूट गया। पत्रों का सिलसिला तब आरम्भ होना चाहिये था, पर तुम्हें एक भी पत्र न लिख सकी। सोचती अवश्य थी कि तुम न मालूम क्या-क्या धारणा बना लो, पर मुझे तुम्हारी धारणाओं को देखना उचित था या अपनी

खुशहाली को ? इतना फिर भी भरोसा था कि तुम समझदार हो, अवश्य स्वयं ही मेरी चुप्पी का अनुमान लगा लोगी। कह नहीं सकती कि मैं कहाँ तक ठीक थी। इस पत्र को पढ़ने के बाद यदि तुम नाराज़ भी रहोगी तो वह नाराजगी पिघल कर मोम बन जायेगी और तुम्हारा कण-कण मेरे लिये रो उठेगा। यह पत्र मैं अपने लिये नहीं लिख रही, क्योंकि जब तक यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचेगा मैं न मालूम कहाँ हूँगी। मैं आज तक अपने ही बल पर जीती आई हूँ, और इसी संकल्प को मैंने आदि से निभाया है। तुम्हें पत्र लिखने में भी यही संकल्प सामने आ जाता था, पर अब परिस्थितियाँ इतनी असाधारण हो गई हैं कि तनिक भी विलम्ब न मालूम कितने महानाश का कारण बन जाय। यही सोच कर अपना संकल्प तोड़ना पड़ा और तुम्हें लिख रही हूँ।

कहाँ से शुरू करूँ, इसका न तो ध्यान ही है और न ही समय। इस समय एक कमरे में मैं और एक कमरे में वनिता बन्दी के रूप में पड़ी हैं। तुम वनिता को तो जानती ही हो। उसके मुख से भी तुम्हारे विषय में काफ़ी सुना। जैसी उसके प्रति तुम्हारी धारणा ख़राब है, वैसी ही वह भी तुमसे घृणा करती है। तुम उसे पतित समझती हो और वह तुम्हें घमण्डी। तुम्हें यह पढ़ कर आश्चर्य होगा, पर बात बिल्कुल ठीक है। वनिता से ही पता चला कि एक बार विनय नगर में तुम्हारी फिर छोटे जीजा जी से मुलाक़ात हुई, पर फिर वनिता के भ्रम में तुम उनसे नाराज होकर चली गई। कह नहीं सकती कि तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया होगी, यदि तुम्हें यह पता चल जाय कि न तो तुम दोषी थीं, न वनिता और न ही छोटे जीजा जी। दोषी तो वह है जो तुम्हें प्राप्त करने में असफल रह कर अब वनिता को माध्यम बनाकर छोटे जीजा जी के साथ प्रतिशोध ले रहा है और उसी दोषी के गले पड़ी हूँ मैं। तुम समझ ही गई होगी।

याद है प्रेरणा ! एक बार मैं तुम्हारे घर आई थी और मैंने तुम्हें बताया था कि मेरे हाथों में विष का बीड़ा है। तब तुमने उत्सुक होकर पूछा था कि क्यों विष के प्रति मैं लोभ रखती थी। मेरे उत्तर से तुम कोई अर्थ नहीं लगा

सकी थीं और तुमने मुझ पर पहेलिया गढ़ने का आरोप लगाया था, पर अब तुम स्वयं समझ जाओगी कि उस दिन की बातें कितनी सारगर्भित थीं।

संघर्ष बाबू को पति के रूप में वरण कर मैंने वास्तव में विष का बीड़ा ही मुँह में रखा। भगवान् शिव तो क्षमता रखते थे, उसे पचा गये; पर मैं एक साधारण मनुष्य जाति की स्त्री और उस पर अबला। घुल-घुल कर मर रही हूँ। अपने छोटे से विवाहित जीवन में जिस एक सत्य की मुझे अनुभूति हुई। वह यह है कि प्रेम भी आज शृंगार माँगता है। वह अकेला उतना ही दीन है जितना बिना वस्त्रों का एक नंगा भिखारी। संघर्ष बाबू तो खैर प्रेम को जानते भी नहीं, पर उनके माता-पिता और स्वयं मेरे चाचा-चाची भी इस अकेले प्रेम से इतना जी चुराते हैं कि आश्चर्य करोगी। मैं आज यदि किसी प्रतिष्ठित पुरुष की पत्नी होती तो न मालूम मुझसे दुनिया कितना प्रेम करती, भले ही वे नाते-रिश्ते में अधिक समीप न होते। तब चाहे मैं कितनी ही यथार्थ रूप में खुली होकर उनके पास चली जाती, और कितना ही क्यों न रूठती, वे कभी भी मुझे अलग न करते। पर मैं फूटी किस्मत लेकर आई थी। शादी के बाद प्रेरणा! मेरा जीवन भार-सा हो गया। मेरे पति इतने गिरे हुए निकले कि मैंने कल्पना भी नहीं की थी। अपने ससुराल और मायके की ओर मैंने नज़र की, पर उन्होंने पीठ दिखा दी। आज यह स्थिति है कि मेरे घर पर वेश्यावृत्ति चलती है, शराब पी जाती है और अब तो यहाँ तक संकेत मिल गया है कि स्वयं मुझे भी पत्नी पद से उतार कर वेश्या का दर्जा दिया जायेगा।

वनिता भी मेरी ही तरह एक भाग्यहीन लड़की है। साम्प्रदायिक दंगों ने विस्थापित बना कर सुहाग का सिन्दूर भी पोंछ डाला। अपने देवर को ही पति मानकर जब उसने फिर अपने आपको बसाना चाहा तो नियति ने साथ नहीं दिया और वह देवर के आश्रय से वंचित होकर मँझदार में फँस गई। संसाररूपी महासागर के भयानक नाके तो ऐसी मछलियों की ताक में रहते ही हैं, यह भी उनके क्रूर जबड़ों में फँस गई। फिर जो कुछ भी हो जाय वह भी कम ही है। नाके से मेरा संकेत किस ओर है, यह तुम समझ ही जाओगी। अँगूठी छोटे जीजा जी के पास से चुरा कर वनिता के भेंट करने में और फिर

उसे उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ाकर सारा षड्यन्त्र तैयार करने में इसी नाके का हाथ था। वह बेचारी निर्दोष है। उसका दोष केवल इतना ही था कि वह इनके इशारों पर नाचती गई, पर उसने मजबूरी की मुझे बड़ी सुन्दर परिभाषा बताई है और साथ में अपने कथन की मेरी वर्त्तमान परिस्थितियों से पुष्टि भी की है। जिस दिन तुम छोटे जीजा जी के साथ विनयनगर गईं, उसी दिन बल्कि तुम्हारे ही सामने वह अपने देवर से वर्षों के बाद मिली थी और उसी रोज़ पहली बार उसने छोटे जीजा जी को देखा। अब तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि संघर्ष बाबू ने अपने मित्रों की सहायता से उसके पति को उसे भगा ले जाने के अपराध में बन्दी बना लिया है और साथ में छोटे जीजा जी को भी हिरासत में ले लिया है। उन पर शायद अभियुक्त की सहायता करने का आरोप लगाया गया है।

वनिता को इस वक्त मेरे ही घर पर एक कमरे में क़ैद कर रखा है, पता नहीं किस उद्देश्य से। पर कोई भी उद्देश्य हो, वह अवश्य घोर नरक में ले जाने वाला होगा। तुम्हें इसीलिये यह पत्र लिखा है कि छोटे जीजा जी का न मालूम यह कौनसा अहित कर बैठें, क्योंकि उन्हीं से तो तुम्हारा प्रतिशोध लिया जा सकता है। प्रतिशोध पानी की धार के समान होता है, जिसका रुख़ नीचे की ही ओर होगा। छोटे जीजा जी पर इसीलिये बचपन से ही बिजलियाँ गिर रही हैं, क्योंकि वह नीचे सतह पर बैठे हैं। हर एक का ग़ुस्सा बह कर उनके सिर पर से गुज़रता रहता है।

मैं जो-कुछ लिखना चाहती थी लिख चुकी, क्योंकि मैंने पहले ही बता दिया है कि यह पत्र मैं अपने लिये नहीं लिख रही, चाहती हूँ कि किसी तरह यह पत्र तुम तक पहुँच जाये। फिर भी जब मैं अपना संकल्प तोड़ ही बैठी तो कुछ शंकाओं का समाधान अवश्य करवाना चाहूँगी।

मेरी दृष्टि में इस समय केवल तीन व्यक्तित्व प्रखर रूप से सामने आ रहे हैं। एक तो तुम, दूसरे छोटे जीजा जी और तीसरी वनिता। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैं छोटे जीजा को हृदय से प्यार करती आई हूँ। न इस बात को छोटे जीजा जी जानते हैं और न शायद तुम ही। जब मैंने उन्हें पहले-पहले लखनऊ में देखा तो मैं हृदय से उनको चाहने लगी थी। सम्भव है वह भी

अन्दर ही अन्दर शायद मेरे प्रति कोमल भावनायें बटोरने लग गये हों। जब मुझे यह पता लगा तो मैंने तुम्हें बीच में लाकर, तुम्हारी ओर उनका ध्यान मोड़ दिया। वह फिर धीरे-धीरे तुम्हारी ही ओर आकर्षित होने लग गये और कालान्तर में, मैं केवल उनकी साली ही रह गई।

यह मैंने इसलिये किया कि मेरी मँगनी संघर्ष बाबू के साथ तय हो चुकी थी। मैंने मर्यादा की हमेशा यही परिभाषा की है कि वैयक्तिक इच्छायें समाज के विधान से न टकरायें। उससे कोलाहल होता है और मैं कोलाहल को पसन्द नहीं करती, या यूँ कहो कि ऐसे प्यार में मुझे आनन्द ही नहीं आता। अपनी वासना के तृप्त हो जाने का तो मुझे विश्वास था ही फिर क्यों व्यर्थ हल्ला करती और उस आदर्श पर ठेस पहुँचाती, जिसे मैं अपने प्रेम के अनुरूप समझती थी। इससे एक और लाभ भी था और वह यह कि मैं अपने प्रेम को नित्य एक ही रूप में देखना चाहती थी—अविनश्वर अपरिवर्तित, सत्य, सुन्दर और चिर कल्याणमय। यह तभी सम्भव था जब प्रेमी केवल मन में रहे, आँखों के सामने न आये। इस प्रकार छोटे जीजा जी को तुम्हें सौंपकर मैंने अपने प्रेम को प्रतिपोषित बना दिया। प्रकृति की अमानत बनाकर मैंने उसे गन्दा होने से बचा लिया। यह मेरी नैसर्गिक चाह थी, जो आज मेरी सांसारिक असफलता पर भी खूब पूरी हुई। यदि मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा तो तृप्त रहेगी। इसका ये भी मतलब न लगाना कि मैंने संघर्ष बाबू से छल किया। मैंने सम्पूर्ण रूप से उन्हें प्यार किया, जैसाकि प्रत्येक भारतीय स्त्री अपने पति को करती है। मैं तो यहाँ भी यही चाहती थी कि जैसी मेरी आत्मा तृप्त थी, वैसे ही मेरा शरीर भी तृप्त रहे, पर मन का सहयोग पाकर भी देह तृप्त न हो सकी। जब तुमसे मेरा सम्पर्क हुआ तो तुम्हारे अन्दर मैंने जो चाह देखी वह भी अद्भुत थी। तुम आत्मा, मन और देह तीनों को साथ-साथ लेकर उन्हें तृप्त करने के प्रयत्न में संघर्ष करती रहती थीं। मैं दुनिया के कोलाहल में आत्मा का संगीत नहीं सुन सकती। मेरे लिये यह अनुरूप स्थल ही नहीं लगा पर तुम्हें तो बिना इस कोलाहल के सम्भवतः मजा ही नहीं आता था। तुम्हारे अन्दर आग भी है और पानी भी। इसीलिये तुम्हारे अन्दर शायद अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने की क्षमता भरी पड़ी है। तीसरी वनिता भी है

जिसके लिये इच्छाएं कोई महत्व नहीं रखतीं। वह मूल प्रकृति की तरह इन इच्छाओं से ऊपर उठकर केवल इनकी दार्शनिक विवेचना कर सकती है। उसके लिये इच्छा और प्राप्ति में कोई अन्तर ही नहीं है।

मैं समझती हूँ प्रेरणा, कि एक छोटे जीजा जी ही ऐसे व्यक्ति हैं जो नारी के तीनों रूपों को ठीक समझते हैं और उनमें सामंजस्य ला सकते हैं। कौनसा रूप प्रधान है, और बाकी कौनसे अन्य दो रूप उसके पूरक हैं, इसका वे ही ठीक निर्णय कर सकते हैं। मैं तो तुम्हारे आत्मबल और वनिता के अनुभवों के आगे सिर झुका चुकी हूँ। तुम दोनों में से स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करने के स्वाभाविक गुण किस में हैं, इसका निर्णय उनसे ही करवा लेना। मेरा इतना ही अनुरोध है कि वनिता से एक बार अवश्य भेंट कर लेना। उसका व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक है। वह या तो तुम्हें अपने में मिला लेगी या फिर तुम में ही विलीन हो जायेगी, ऐसा मेरा अनुमान है।

अब पत्र समाप्त कर रही हूँ। इसे पढ़ कर तुरन्त छोटे जीजा जी की सहायता करना। वे बड़े संकट में हैं और ताऊ जी व ताई जी को मेरा प्रणाम कहना।

तुम्हारी
शान्ति

प्रेरणा ने पत्र पढ़ा तो उसकी साँस तीव्र हो उठी और आँखों में अद्‌भुत चमक दिखाई दी। समस्त देह में रक्त के खौलने से एक झंझावात-सा पैदा हो गया। वह पत्र को लेकर पिताजी के कमरे में आई, पर डा० स्वरूप नीचे क्लीनिक में चले गये थे। वह चौके में आई और बोली—

"माँ! पिताजी नीचे चले गये हैं क्या?"

"हाँ बेटी, कोई खास बात है?"

"जीवन बाबू पकड़े गये हैं, माँ!" कह कर प्रेरणा अपने कमरे में कपड़े बदलने को चली गई और तुरन्त कपड़े बदल कर सीढ़ियाँ उतरने लगी।

माँ बोली, "रुको तो प्रेरणा, पूरी बात तो बताओ, क्या हुआ है?"

"इतना समय नहीं है माँ, बाद में बताऊँगी।" वह सीढ़ियाँ उतरती हुई

बोली। उसके अन्दर बिजली की सी स्फूर्ति दिखाई दी। माँ हक्की-बक्की होकर देखती रही।

डा० स्वरूप अपने इंगेजमैण्ट पैड को देख रहे थे कि हाँफती हुई प्रेरणा उनके कमरे में प्रविष्ट हुई।

वह घबराकर बोले, "ख़ैर तो है प्रेरणा?"

"ख़ैर कहाँ पिताजी! जीवन बाबू बन्दी बना लिये गये हैं।"

"बन्दी बना लिये गये हैं?"

"हाँ-हाँ, शान्ति के पत्र में यही तो लिखा है।" कहते हुये उसने पत्र पिता के हाथ में दे दिया।

डा० स्वरूप ने पत्र मेज पर रख दिया और बोले, "इसे मैं पढ़ लूँगा, पर तुम इतनी उतावली क्यों हो रही हो?"

प्रेरणा ने आश्चर्य से पिता को देखा और बोली, "तो क्या आप इस से तनिक भी विचलित नहीं हुए?"

डा० स्वरूप ने गम्भीर दृष्टि प्रेरणा पर डाली और उसे पास की कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए बोले, "तुम इस समय भूल गई हो कि ये बातें तुम पिता के समक्ष कर रही हो। मैं समझता था कि तुम्हारी भावुकता समाप्त हो गई होगी और अब तुम फिर सही रूप से सोचने और समझने लगी होगी। पर मालूम पड़ता है कि तुम्हारा बाह्य रूप कुछ और रहा और मन की दशा कुछ और ही रही। तुमने घटनाओं के सूक्ष्म प्रभाव से बच कर स्वतन्त्र बौद्धिक चेतना को अपनाना तब से छोड़ ही दिया है।"

प्रेरणा आँखें फाड़ कर पिता को देखती रही।

डा० स्वरूप बोले, "जीवन के विषय में चिन्ता करने का अधिकार तुमको किसने दिया? यदि वह बन्दी बना लिया गया है तो तुम क्यों व्याकुल हो उठी हो? उसका कुछ कारण ही होगा। जिस क्षण वह बन्दी बना होगा, उसी क्षण संसार में कई व्यक्ति फाँसी के तख़्ते पर भी लटकाये गये होंगे? तुम उनके लिये क्यों परेशान नहीं होती? स्पष्ट है कि फिर तुम स्वयं अपनी ज़िम्मेवारी पर उस अंधी भावुकता के इशारों पर नाचने लगी हो, जिसका मैंने तुम्हें स्पष्ट निषेध कर रखा है। छोड़ दो इस बचपने को और अपना काम करो, जिससे कि

तुम्हारा भविष्य बनना है। दुनिया में इस तरह की घटनायें प्रतिपल घटती रहती हैं। हमें अपनी सीमा देखनी है, जीवन के विषय में परेशान होना हमारी सीमा से बाहर है। प्रेरणा विस्मय में ठगी-ठगी पिता को देखती ही रही। क्या सीमा और क्या दुनिया उसके अन्दर तो तूफ़ान आया हुआ था। उसे तो पिता पर केवल आश्चर्य हो रहा था कि इतने बड़े तूफ़ान के प्रति उन्होंने जान-बूझ कर आँखें मूँद ली थीं। वह बोली, "इस पत्र को तो पढ़ लीजिये, आपको कुछ पता नहीं है।"

डा० स्वरूप को गुस्सा आ गया। वह बोले, "तुम पागल हो गई हो प्रेरणा ? मेरे इतना कहने के बाद भी तुम कुछ नहीं समझीं। आखिर तुम्हें हो क्या गया है ?"

प्रेरणा की आँखों में आँसू आ गये। बोली, "केवल यह पत्र पढ़ लीजिये, उसके बाद मैं कुछ नहीं बोलूँगी।"

"यह तुम्हारी हठ ही तो है।"

"हठ मेरी नहीं पिताजी, आप की है। पत्र पढ़ने में आप कौन-सा गिर जायेंगे।"

डा० स्वरूप ने ग़ौर से प्रेरणा को देखा और फिर पत्र को उलट-पुलट कर बोले, "यह बहुत लम्बा है, तुम्हीं सुना दो, क्या लिखा है इसमें।"

प्रेरणा को कुछ धीरज मिला, बोली, "जीवन निर्दोष होकर पीसा जा रहा है। पहले भी कभी वह दोषी नहीं रहा, केवल दुर्भाग्य उसके साथ खेल रहा है।"

डा० स्वरूप ने सुना तो ऐसी मुद्रा बना ली मानो यह सब व्यर्थ की बातें थीं और जैसे उनका इन बातों से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह चुप रहे। प्रेरणा ने उनकी इस मुख-मुद्रा को लक्ष्य किया और बोली, "बोलिए, आपका क्या निर्णय है ?"

डा० स्वरूप बोले, "तुम मुझ से क्या चाहती हो ?"

"आप हस्तक्षेप कीजिये, कोई शक्ति फिर ऐसी नहीं कि उसे बन्दी बना कर रख सके।"

डा० स्वरूप बोले, "तुम्हारे प्रति जो स्नेह मेरे अन्दर है, वह आज तक

मुझे तुम्हें निराश करने से रोकता रहा। तुम पर जो मेरा अटल विश्वास रहता आया है, उसने नित्य तुम्हें स्वच्छन्द रखने की प्रेरणा दी, पर आज मेरे उस विश्वास पर चोट मार कर तुम साथ में स्नेह को भी छीन रही हो। मेरी सारी तपस्या नष्ट कर तुम अपना और साथ में मेरा भी अहित कर रही हो। मैं इसे नहीं होने दूँगा। जीवन को मैं इतना समीप नहीं समझता कि तुम्हारी माँग को पूरा करूँ। यह मेरा अन्तिम निर्णय है, और यदि यह तुम्हें स्वीकार न हो, तो तुम जा सकती हो।"

प्रेरणा का शरीर बैठ-सा गया। गम्भीर स्वर में बोली, "आपकी आज्ञा मान कर मैं जा रही हूँ। मुझे आप से निराशा तो हुई है पर उससे अधिक दुःख हुआ, अपने विश्वास के हाथों छले जाने पर। मैं स्वयं भी कम शक्ति नहीं रखती। जीवन को उसी शक्ति से छुड़वा लूँगी, पर आज तक मैं अपनी शक्ति का मूल-स्रोत आपको समझती आई थी, भले-बुरे का निर्णायक आप को समझती थी। मेरे प्रति बिना कारण अविश्वास व्यक्त कर आपने अपनी ही हठ से वह स्वरूप मिटा डाला, मानो मैं बिल्कुल दूध पीती बच्ची हूँ। लेकिन ऐसा नहीं है पिताजी! इस समय आप भूल पर हैं और मैं आपकी भूल को सिद्ध करके रहूँगी, वरना समझूँगी कि मैंने आपको कलंकित किया है।"

डा० स्वरूप निर्निमेष नेत्रों से प्रेरणा को देखते रहे। प्रेरणा खड़ी हुई तो बोले, "तुम्हारा संकल्प कौन से आदर्श से अनुप्राणित हो रहा है, बताओगी?"

प्रेरणा थोड़ा रुकी और बोली, "आदर्श तो उस परिधि से बाहर क़दम रखते ही पूरे हो जाते हैं, जो परिधि आपने अपने चिन्तन के लिये निर्धारित कर रखी है। यह अनुदार सीमा-बन्धन स्वयं कोई आदर्श थोड़े ही है। पर इस समय आदर्श से परे मैं स्वयं अपनी आत्मा की पुकार पर जा रही हूँ।"

प्रेरणा के चले जाने पर डा० स्वरूप कुछ बेचैनी अनुभव करने लग गए। उन्होंने वह पत्र उठाया और उसे पढ़ने लगे। उनके मुख पर भावों का चढ़ाव और उतार स्पष्ट झलक रहा था। पत्र समाप्त कर वह कुछ देर चिन्तनशील मुद्रा में आरामकुर्सी का सहारा लेते हुए सोचते रहे। बाद में उन्होंने समाचार पत्र उठाया और उसके पन्ने उलटने लग गये। अचानक उनकी दृष्टि समाचार

पत्र पर टिक गई। आई० ए० एस० का परीक्षा-फल आया था और जीवन ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। वह कुछ क्षरण एकटक उसी समाचार को देखते रहे। फिर उन्होंने बटन दबाया और नौकर के उपस्थित होने पर बोले, "चन्द भरपूरिया को कहो कि गैरेज से गाड़ी निकाल ले।"

गाड़ी के आने पर डा० स्वरूप चल दिये। प्रेरणा पिता की क्लिनिक से निकल कर सीधी समीप के टैक्सी स्टैण्ड पर आई और एक टैक्सी कर संघर्ष के मकान पर जा पहुँची। टैक्सी ड्राइवर के हाथ में दस रुपये का नोट रखती हुई बोली, "किराये के पैसे बाद में दूँगी, तुम मेरे साथ-साथ चलो। ड्राइवर को पहले तो कुछ आश्चर्य हुआ पर बाद में कुछ सोचते हुए गाड़ी से एक लोहे का डण्डा निकाल कर वह प्रेरणा के पीछे चल दिया।

कमरे में संघर्ष, श्याम और कोहली वनिता से कुछ प्रश्न कर रहे थे कि अचानक प्रेरणा को सामने देख कर चौंक गये।

प्रेरणा ने सीधे संघर्ष से प्रश्न किया, "शान्ति जीजी कहाँ है? जल्दी बताओ।"

संघर्ष की हिचकी बँध गई। उसे आश्चर्य हो रहा था कि सुबह-सुबह प्रेरणा कहाँ आ टपक पड़ी? क्या उसे शान्ति और जीवन के सम्बन्ध में सब पता लग चुका था? वह उसके आने का उद्देश्य जानना चाहता था। बोला, "पहले यदि अपने आने का कारण बता सकें तो सम्भव है मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँ।"

प्रेरणा के होठों में कम्पन हुआ। वक्र दृष्टि से संघर्ष को घूरते हुए बोली, "इतना उदार न बन कर कि तुम मेरी सहायता कर सको, तुम मुझे केवल यही बता दो कि शान्ति को तुमने कहाँ छुपा रखा है?"

संघर्ष को जिस बात आशंका थी, प्रेरणा के शब्दों ने उसकी पुष्टि कर दी। उसकी दृष्टि मुड़ी और बारी-बारी से श्याम और कोहली के मुख पर टिक गई।

कोहली बोला, "आपका परिचय?"

संघर्ष कुछ बोलता कि प्रेरणा वनिता को सम्बोधित करते हुए बोली, "वनिता! तुम्हीं जल्दी से बताओ शान्ति कहाँ है? मुझे उसका पत्र मिला है।

एक कमरे में तुम बन्द थीं और एक कमरे में वह बन्द थी। बताओ उसको इन्होंने कहाँ छुपा दिया ?"

वनिता ने प्रेरणा की बातें सुनीं और अपनी ओर उसके शब्दों में सहानुभूति का संकेत पाया तो उसकी जान में जान आई, पर जब उसने अपनी ओर घूरते हुये संघर्ष, श्याम और कोहली की लाल-लाल आँखें देखीं तो वह डर के मारे पानी-पानी हो गई। कभी वह प्रेरणा को देखती और कभी उन तीनों को। वनिता के भय को लक्ष्य कर प्रेरणा बोली, "वनिता ! एक बार तुम्हारी कायरता पर थूक कर मैंने तुम्हारा अपमान किया था और तुम नाराज हो गई थीं। आज फिर यदि तुम कायर बन गईं तो मैं तुम्हारे मुँह पर कीचड़ पोत दूँगी। कौनसी तुम्हारी जिन्दगी इतनी अच्छी रही है कि उसके प्रति तुम इतना मोह बरत रही हो ? यदि आज तुम्हारी मौत भी आ जाती है तो उसे रोको मत। कम से कम मरते समय तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। बताओ शान्ति कहाँ है ?"

वनिता रुँधे कण्ठ से बोली, "रक्षा करो बहिन ! अपनी रक्षा करो। ये लोग तुम्हें भी समाप्त कर देंगे," कहते हुये उसने फिर उन तीनों की ओर देखा। तीनों के मुख पर कठोर संकल्प की मुद्रा उभर आई थी। प्रेरणा ने भी उधर नज़र उठाई तो संघर्ष ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया। बोला, "देख लिया प्रेरणा देवी ? कितना कठोर नियन्त्रण रखता हूँ मैं अपनी प्रजा पर। एक तुम हो कि मुझे हल्की-फुल्की बातों से ही टालती रहीं। अब तुम्हें शायद आभास हो गया होगा कि मेरा व्यक्तित्व भी लोहे के समान है। तुम्हारी यहाँ दाल नहीं गलने की। तुमने जो इतना कष्ट उठाया, सब व्यर्थ गया। लेकिन इसमें मैं मानता हूँ, तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुमने तो इसे भी अपने पिता जी का घर समझा होगा। सोचा होगा कि दो-चार जली-कटी सुना कर चली जाओगी, लेकिन यह डा० स्वरूप का घर नहीं है, स्वयं मेरा घर है और तुम तो केवल मेरी मेहमान हो। शान्ति का अता-पता पूछने की अपेक्षा मेहमानों जैसी बातें करो। बताओ क्या पीओगी, ठण्डा या गर्म ?"

प्रेरणा ने सुना तो आश्चर्य कर गई। बोली, "मैं गीदड़ नहीं हूँ संघर्ष, शेर की बच्ची हूँ। शेर को मेहमान बना कर रखने का परिणाम जानते हो, या ऐसे ही छोटे मुँह बड़ी बात कर रहे हो ?"

संघर्ष बोला, "यह तो मुझ पर छोड़ दो। इससे तो मेरी महिमा और भी गौरवान्वित हो उठेगी, यदि शेरनी को मेहमान बना दूँ। अब तो केवल एक ही बात सत्य रह गई है कि दुनिया गोल है। मुझ से शादी का प्रस्ताव ठुकरा कर तुम शान्ति की खोज में फिर किसी न किसी प्रकार मेरे पास पहुँच ही गयी हो। मुझे तुम्हारी इस लम्बी परिक्रमा से कोई आपत्ति नहीं है।"

प्रेरणा ने सुना तो आग-बबूला हो उठी। वह वनिता से बोली, "समय बहुत कम है वनिता। इस सियार को मैं देख लूँगी। तुम शान्ति का पता बताओ या फिर यह बताओ कि जीवन और तुम्हारे पति कौन से थाने में बन्दी हैं।"

वनिता ने दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया और उत्तर में फफक-फफक कर रो पड़ी। प्रेरणा को सारी परिस्थिति असह्य लगी। उसने दरवाजे की ओर देखा और चिल्लाई, "इन सब को पकड़ लो ड्राइवर—तुम्हारी बहादुरी पर इनाम मिलेगा।"

सब आश्चर्य में ठिठक गये, मानों कि कमरे में कोई बम फटा हो। संघर्ष और उसके साथी इधर-उधर कमरे में झाँकने लगे कि कोई छड़ी या दूसरी चीज उन्हें मिल जाय जिससे अचानक इस संकट का सामना कर सकें। पर इससे पूर्व ही टैक्सी ड्राइवर उन पर टूट पड़ा था।

प्रेरणा बोली, "तुम भागो वनिता और पुलिस को बुलाओ।"

वनिता के रोंगटे खड़े हो गये थे, उसे सारी दुनिया हुई घूमती नजर आई। एक के बाद दूसरी घटना इस तेजी से घटी थी कि उसे इसका स्वप्न में भी अनुमान नहीं था। उसे अपने को सँभालना मुश्किल हो गया। प्रेरणा ने उसकी निर्बलता को लक्ष्य किया तो तनिक सहारा देती हुई बोली, "खबरदार जो निर्बलता दिखाई। अपनी सारी शक्ति बटोर लो और दौड़ कर पुलिस बुलाओ।"

वनिता से कुछ बोला नहीं गया। टूटे शब्दों में बोली, "मैं अकेली नहीं जाऊँगी, तुम भी भाग चलो।"

"निकम्मी कहीं की," प्रेरणा चिल्लाई, "समय नष्ट कर रही हो। जानती हो, तुम्हारी ग़लतियों से सब गुड़गोबर हो जायेगा……।"

प्रेरणा अभी अपना वाक्य भी समाप्त नहीं कर पाई थी कि टैक्सी ड्राइवर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। वह चिल्लाया, "दरवाज़े पर डण्डा रखा है, उसे मेरे पास फेंक दो।"

प्रेरणा द्वार की ओर भागी पर श्याम ने उसे पकड़ लिया। प्रेरणा चिल्लाई, "वनिता ड्राइवर को डण्डा पकड़ा दो।"

पर पूर्व कि वनिता अपने स्थान से हिलती, वह भी कोहली की मजबूत भुजाओं में जकड़ी गई थी। ड्राइवर के साथ अब अकेला संघर्ष गुँथा हुआ था। ड्राइवर नीचे होने के कारण उसके मुक्कों की बौछार सह रहा था।

संघर्ष ने जोर से उसका गला पकड़ा और बोला, "अब कोई तुम्हारा सहायक न रहा। बिना बुलाये मौत के मुँह में आ गये। बोलो, अब कौन तुम्हें मौत से बचा सकता है ?"

प्रेरणा और वनिता ने ड्राइवर की हालत देखी तो आँखें मूँद लीं पर तभी दरवाज़े से उन्हें संघर्ष के पूछे हुए प्रश्न का उत्तर सुनाई दिया। दरवाज़े से डाक्टर स्वरूप पुलिस के एक उच्च अधिकारी तथा कुछ पुलिस के सिपाहियों के साथ कमरे में घुस आये थे।

"मारने वाले से बचाने वाले के हाथ अधिक हैं संघर्ष ! उस बचाने वाले की सत्ता को चुनौती न दो।"

प्रेरणा की आँखें खुल गईं—वह चिल्लाई, "पिता जी !"

डा० स्वरूप बोले, "मेरे कथन की सचाई देख ली आप ने एस० पी० साहब ! तुम्हारे थानेदार के बाक़ी साथी यह रहे, और यही लड़की शायद वनिता है, क्यों प्रेरणा ?"

प्रेरणा पिता से चिपट गई। गर्दन हिलाकर उसने हाँ कर दी और फफक-फफक कर रो पड़ी।

संघर्ष, श्याम और कोहली के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं। डा० स्वरूप ने प्यार से प्रेरणा के सिर पर हाथ फेरा और बोले, "देख तो पगली, जीवन बाबू खड़े हैं सामने, तुम इन्हें क्या मजिस्ट्रेट बनने पर बधाई नहीं दोगी ?" प्रेरणा ने थोड़ा सिर उठाकर जीवन को देखा, जो डाक्टर साहब की सहायता से मुक्ति-लाभ प्राप्त कर उनके ही साथ चले आये थे, और फिर पिता की छाती में मुँह छिपा लिया।"

डा० स्वरूप बोले, "एस० पी० साहब ! जीवन बाबू को आई० ए० एस० की प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है, कुछ दिनों में इनके ही पास आप अपने मुकदमे पेश करेंगे।" कहते हुए उन्होंने अखबार की प्रति पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के हाथ में दे दी। एस० पी० ने परीक्षा-फल देखा और जीवन की ओर हाथ बढ़ाते हुए बोला, "बधाई हो जीवन बाबू !" और फिर डा० स्वरूप की ओर मुड़कर बोले, "आपके ये शायद काफी निकट के हैं ?"

डा० स्वरूप हँसे और बोले, "क्या बताऊँ साहब ! कुछ समय पूर्व मैं अवश्य इनसे मकान का किराया वसूल करता था......"

प्रेरणा ने सुना और दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया। उसके अधरों पर एक लजीली मुस्कान नाच उठी।

"लेकिन" डा० स्वरूप बोले, "अब ये हमारे होने वाले दामाद हैं।" प्रेरणा और जीवन की ओर इशारा करते हुए बोले, "इन दोनों को देखकर ही मेरा बुढ़ापा गुजरेगा।"

प्रेरणा ने सुना तो चटक कर पिता के आलिंगन से मुक्त होकर, दूर जा पीठ कर खड़ी हो गई। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया था।

एस० पी० बोले, "बड़े भाग्यवान हो डा० स्वरूप !"

डा० स्वरूप फिर जीवन को सम्बोधित करते हुये बोले, "मैं गाड़ी छोड़े जा रहा हूँ, प्रेरणा को लेकर जल्दी चले आना। यदि देर करोगे तो मिसरानी चिन्तित हो उठेगी, उसे कुछ भी पता नहीं है।"

जीवन ने लजाकर गर्दन नीची कर ली।

डा० स्वरूप एस० पी० से हाथ मिलाते हुए बोले, "आपकी सहायता के

लिये धन्यवाद । अब क्या मैं आशा करूँ कि अपनी जीप पर चाँदनी चौक तक मुझे भी छोड़ आओगे ?"

एस० पी० हाथ मिलाते हुए जोर से हँसा और बोला, "विस्थापित बन कर जा रहे हो डा० स्वरूप ।"

डाक्टर स्वरूप भी खुल कर हँसे और उनकी हँसी में फिर सबने योग दिया । डा० स्वरूप ने फिर प्रेरणा की ओर देखा और बोले, "देर नहीं करोगे न ?"

प्रेरणा अचानक चौंकी और बोली, "पर पिताजी शान्ति का तो पता ही नहीं लगा ।"

डा० स्वरूप को भी मानो जोर का धक्का लगा । वे शान्ति को तो भूल ही गये थे और जैसे प्रेरणा ने उनको उसकी याद दिलाई, पर तभी वनिता बोली, "वह इरविन हस्पताल में है । कल रात को खिड़की से कूद पड़ी थी । मुझे सुबह पता लगा, जब गली में चर्चा चल रही थी ।"

"ओह !" डा० स्वरूप के मुँह से धीमी आवाज निकली ।"

प्रेरणा बोली, "आप जाइये पिताजी, मैं शान्ति को देख आऊँगी ।"

डा० स्वरूप बोले, "मैं क्यों, हम कहो ।"

प्रेरणा और जीवन लजा गये । उन्होंने आँख बचा कर एक-दूसरे को देखा और हल्की मुस्कान के साथ गर्दन नीची कर ली ।

प्रेरणा बोली, "पिताजी, टैक्सी ड्राइवर को इनाम देते जाइये ।"

डा० स्वरूप ने ड्राइवर की पीठ ठोकी और दस रुपये का नोट जेब से निकाल कर उसकी हथेली में रख दिया—बोले, "कब से टैक्सी चलाते हो ?"

ड्राइवर कृतज्ञ होकर बोला, "लगातार तो कभी नहीं चलाई, पर इस समय छः माह से गाड़ी चला रहा हूँ ।"

डा० स्वरूप बोले, "यदि कभी नौकर की आवश्यकता पड़ी तो हम तुम्हें अपना ड्राइवर नियत कर लेंगे । तुम जैसा दिलेर व्यक्ति भी पास होना चाहिये ।"

डा० स्वरूप के चले जाने पर जीवन कुलवन्त की ओर मुड़ा और बोला,

"सरदार ! अब गुरुद्वारे में जाकर शादी कर लो भैया ! नहीं तो फिर बन्दी बना लिये जाओगे ।"

प्रेरणा, कुलवन्त और वनिता ठहाका मार कर हँस पड़े ।

वनिता बोली, "गुरुद्वारे जाकर क्या करेंगे, अब तो तुम्हारी अदालत में आकर ही कोर्ट मैरेज कर लेंगे ।" एक और ठहाका गूँज पड़ा ।

कुलवन्त बोला, "अपनी तो तुम किन्नी काट गये न जीवन ! बोलो, कब मुँह मीठा करवाओगे ?"

वनिता ने प्रेरणा की ओर इशारा करते हुए कहा, "यह प्रश्न तो तुम्हें इस छुईमुई से करना चाहिए था ।" कह कर वह प्रेरणा से चिपट गई । प्रेरणा ने कृत्रिम क्रोध के साथ एक हल्की चपत उसके गाल पर मार दी ।

हर्ष के आँसू सब की आँखों से चू पड़े ।

जब चारों नीचे आ गए तो कुलवन्त बोला, "रात को सोने के लिये तो अपने ही डेरे पर आवोगे न जीवन या अभी से भाभी ने तुमको हम से छीन लिया है ?"

जीवन ने कुलवन्त के गले में हाथ डाला और फिर मुस्कराकर गाड़ी में बैठ गया । प्रेरणा ने गाड़ी स्टार्ट कर दी । कुलवन्त और वनिता ने अलग होने पर हाथ हिला दिये ।

पचकुइयाँ रोड पर जीवन ने गाड़ी रुकवा दी और आगे की सीट पर बैठ गया । प्रेरणा ने मुस्करा कर फिर गाड़ी दौड़ा दी ।

जीवन बोला, "दुर्घटना तो नहीं करोगी न ?"

प्रेरणा दाँतों से होंठ दबाती हुई बोली, "जरा परे हट के बैठो, क्या पता यदि स्टेयरिंग इधर-उधर मुड़ भी गया तो फिर जुर्माना मुझ पर होगा । मजिस्ट्रेट को थोड़े ही पुलिस कुछ कहेगी ।"

जीवन बोला, "मजिस्ट्रेट से मजिस्ट्रेटानी का पुलिस को अधिक लिहाज होता है ।"

प्रेरणा लजा कर रह गई और उसकी गर्दन झुक गई । जीवन घबरा कर बोला, "सामने देखो, तुम कहीं सचमुच ही दुर्घटना न कर बैठना ।"

जीवन और प्रेरणा जब 'इर्विन हस्पताल' में पहुँचे तो उनकी देह में

सिहरन सी दौड़ गई। भागे-भागे वह कैज्वल्टी डिपार्टमेण्ट में पहुँचे और पता लगाकर उस कमरे में दाखिल हुये जहाँ शान्ति लेटी हुई थी और उसके इर्द-गिर्द डाक्टर और नर्स खड़ी थीं।

जीवन हकलाते हुए बोला, "कैसी हालत है डाक्टर ?"

डाक्टर ने सफ़ेद चादर शान्ति पर डालते हुए कहा, "दुःख है—आप ने आने में विलम्ब कर दिया महाशय।"

जीवन पर बिजली-सी गिर गई। उसने प्रेरणा को देखा। प्रेरणा आँखें मूँद कर कटे हुए वृक्ष की तरह उसके कन्धों पर गर्दन डाल कर उस पर लुढ़क पड़ी। मृत्यु के सन्नाटे में मिनटों तक मौन रहने के बाद जीवन ने प्रेरणा की ठोड़ी पकड़ी और उसके अधरों के समीप अपने अधर ले जाकर वह बुदबुदाया, "शान्ति संघर्ष के पंजों से आहत होकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर बैठी। अब हम उसकी केवल चर्चा करेंगे। भूल न जाना कि जब मैं उस पर गीत लिखूँ, तो तुम भी मेरा साथ देना। तुम मेरे अन्दर मधुर भावों का सृजन करना और मैं उनको अपने गीतों में पिरोकर उस तक पहुँचाऊँगा। यही उसके प्रति हमारी श्रद्धाञ्जलि होगी। वह 'लक्ष्य' रहे और तुम 'साधन'।"

प्रेरणा ने सुना और फिर जीवन के वक्ष से लिपट गई।